महाकविराजशेखर कृत

कर्पूरमञ्जरी

मूल, संस्कृत-छाया, अन्वय, मनोरमा संस्कृत-हिन्दी व्याख्या तथा
विशेष टिप्पणी सहित

व्याख्याकार :
डॉ० सुदर्शनलाल जैन

भारतीय विद्या प्रकाशन
वाराणसी — दिल्ली

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महाकविराजशेखरकृत

कर्पूरमञ्जरी

[कप्पूरमंजरी]

(मूल, संस्कृत छाया, अन्वय, मनोरमा संस्कृत-हिन्दी व्याख्या, विशेष टिप्पणियाँ)

व्याख्याकार

डॉ० सुदर्शन लाल जैन

एम० ए०, पी-एच० डी० (साहित्य, प्राकृत जैनदर्शन)

संस्कृत विभाग, कला संकाय

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्राक्कथन

प्रो० विश्वनाथ भट्टाचार्य

भू० पू० संस्कृत विभागाध्यक्ष

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

भारतीय विद्या प्रकाशन

वाराणसी दिल्ली

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकाशक :

© भारतीय विद्या प्रकाशन

(१) कचौड़ी गली, वाराणसी—२२१००१

(२) १, यू० बी० जवाहर नगर, बंग्लो रोड, दिल्ली-११०००७

●

संस्करण : प्रथम

सन् : १९८३

मूल्य : २०-००

●

मुद्रक :

सुधीर कुमार चतुर्वेदी

सुदर्शन मुद्रक,

६३/४२, उत्तर बेनिया बाग,

वाराणसी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्राक्कथन

संस्कृत और प्राकृत भाषाओं का घनिष्ठ साहचर्य प्राचीन संस्कृत साहित्य का अनुपम वैशिष्ट्य रहा है उसका सर्वोत्तम निदर्शन कवि-समीक्षक राजशेखर की कृतियों में उपलब्ध होता है। अलङ्कार-शास्त्रियों ने, विशेषकर ध्वनिवादी आचार्यों ने संस्कृत के समान्तराल प्राकृत पद्यों के उद्धरण प्रस्तुत किये हैं। इससे यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि प्राकृत और संस्कृत एक दूसरे के परिपूरक हैं। कवि राजशेखर युगपत् संस्कृत और प्राकृत के अधिकारी विद्वान् तथा कुशल कवि के रूप में संस्कृत-साहित्य में विख्यात हैं।

यह सर्वविदित है कि राजशेखर साहित्य के पारंगत समीक्षक होने के साथ-साथ कुशल कवि भी हैं। कारयित्री और भावयित्री के रूप में प्रतिभा का जो विभाजन उन्हें इष्ट है, वे स्वयं इन दोनों प्रतिभाओं के यौगपद्य के उत्कृष्ट निदर्शन हैं। काव्यमीमांसा की विचारप्रौढ़ता और बालरामायण, कर्पूरमञ्जरी आदि नाटचकृतियों की कल्पनाकुशलता राजशेखर की अनुपम प्रतिभा की परिचायक हैं। इस कवि को प्राकृत विशेष प्रिय लगती थी, इसमें कोई सन्देह नहीं है। केवल प्राकृत की मधुरता का उल्लेख मात्र कर वह सन्तुष्ट नहीं होते अपितु प्राकृत में ही नाटचरचना के लिए सन्नद्ध हो जाते हैं। कर्पूरमञ्जरी नाम की उनकी नाटचकृति प्राकृत में उपलब्ध नाटचकृतियों में प्रथमतम और संस्कृत भाषा के निष्णात एक कवि के द्वारा लिखी गई प्राकृतमय रचना के रूप में अद्वितीय है।

सट्टक कोटि में ग्रथित यह नाटचकृति अत्यन्त जनप्रिय है। केवल प्राकृत में रचित होना भी इसकी जनप्रियता का अन्यतम कारण है। भारत के प्रायः सभी विश्वविद्यालयों में इसका पठन-पाठन होता है और प्राकृत के साथ-साथ संस्कृत के विशेषज्ञ विद्वान भी इसकी व्याख्या और समीक्षा करते आये हैं। सट्टक की कथावस्तु के मूल्यांकन के अतिरिक्त इसमें प्रयुक्त प्राकृत के जातिनिरूपण को लेकर भी व्यापक चर्चा हुई है। तान्त्रिकाचार का कविकालिक समाज में कितना बोलवाला था यह भी इस सट्टक में दृष्टिगोचर होता है। यह भी स्पष्ट है कि राजशेखर मूलतः संस्कृताश्रयी कवि हैं और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

केवल अनुरागवश ही उन्होंने प्राकृत का आश्रय लिया है। संभवतः यही कारण है कि इसमें उपलब्ध श्लोक प्रसिद्ध संस्कृत छन्दों में ग्रथित हैं।

वाल्मीकि, भर्तृमेण्ठ और भवभूति से अपना सीधा सबन्ध जोड़ने वाले राजशेखर को हम यद्यपि उत्तमोत्तम कोटि का कवि नहीं मान सकते हैं फिर भी इतना तो निश्चित है कि वे सिद्धहस्त कवि हैं और स्थान-स्थान पर भावों के सूक्ष्म चित्रण में वे उच्चकोटि का अनायास स्पर्श कर जाते हैं। संस्कृत तथा प्राकृत दोनों में ऐसे अनेक श्लोक हम पाते हैं जो कविदृष्टि की विलक्षण सूक्ष्मता और भावप्रकाशन की निपुणता के द्योतक हैं। समीक्षक प्रायः सफल कवि नहीं होते, कवि भी सार्थक समीक्षक नहीं, पर राजशेखर एक सफल कवि और सार्थक समीक्षक हैं—यह स्मरणीय तथ्य उनकी अद्वितीयता का सबसे बड़ा प्रमाण है।

हमारे सहयोगी प्राध्यापक डा० सुदर्शनलाल जैन ने कर्पूरमञ्जरी का नवीन संस्करण प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत संस्करण में विद्वान् संपादक ने अद्यावधि उपलब्ध सभी विद्वानों की विचारधारा का मन्थन कर नवनीत के रूप में अपने विचारों को प्रस्तुत किया है। प्राकृतभाषा का विशेष अध्ययन करने वाले डा० जैन ने इस सट्टक की जिस प्रकार छानवीन की है उसमें कवि और कविकृति के बारे में कोई भी प्रश्न अमीमांसित नहीं हैं। पाठक मात्र, चाहे वह अध्यापक हो या छात्र, इस संस्करण को पढ़ कर एतद्विषयक समस्त सामग्री एकत्र प्राप्त करेंगे और अन्य किसी संस्करण को देखने की आवश्यकता का अनुभव नहीं करेंगे, ऐसा हमारा अनुभव है।

डा० जैन ने श्लोकों का अन्वय प्राकृत में प्रथमतया जोड़ा है। यह स्तुत्य है। पर क्या प्राकृतभाषा में व्याख्या भी नहीं हो सकती थी ? मुझे तो लगता है कि प्राकृत को प्राकृत के माध्यम से पढ़ने-पढ़ाने की भावना रखने वाले विद्वान् संपादक को इस दिशा में भी सोचना उचित है।

डा० जैन का साधुवाद करते हुए हम इस सर्वोपयोगी संस्करण के सर्वत्र समादर की कामना करते हैं।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय/संस्कृत विभाग
१४–११–८३

विद्वानों के अनुगृहीत,
विश्वनाथ भट्टाचार्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रस्तावना

कथासार

प्रथम जवनिकान्तर :

[प्रमुख घटनाएँ—(१) वसन्तोत्सव, (२) विदूषक-विचक्षणा में झगड़ा, (३) योगीश्वर भैरवानन्द का आगमन, (४) कर्पूरमञ्जरी की उपस्थिति एवं उसका सौन्दर्य वर्णन, (५) राजा का पूर्वानुराग, (६) कर्पूरमञ्जरी का रानी विभ्रमलेखा के साथ जाना, (७) सन्ध्या वर्णन]

राजा चन्द्रपाल, देवी विभ्रमलेखा, विदूषक और परिजनवर्ग रंगमञ्च पर उपस्थित होते हैं। राजा और देवी वसन्त ऋतु की शोभा का वर्णन करते हुए एक दूसरे को बधाई देते हैं। इसी प्रसङ्ग में वैतालिक भी राजा और देवी को बधाई देते हैं। विदूषक भी अपने को विज्ञ (पण्डित) बतलाते हुए कहता है—'तुम सबमें मैं ही एक 'कालाक्षरिक' (मूर्ख या विद्वान्) हूँ।' इस पर विचक्षणा व्यङ्ग्य करती है और तब दोनों में काफी गाली-गलौज होती है। विदूषक के काव्य की अपेक्षा विचक्षणा के काव्य की जब तारीफ होती है तो विदूषक नाराज होकर चला जाता है परन्तु थोड़ी देर बाद योगीश्वर भैरवानन्द के साथ पुनः प्रवेश करता है। योगीश्वर अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हुए विदूषक के परामर्श से विदर्भ नगर की अद्भुत सुन्दरी राजकुमारी कर्पूरमञ्जरी को स्नानावस्था में सबके समक्ष योगबल से उपस्थित करता है। राजा उसके अनुपम सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है। कर्पूरमञ्जरी के परिचय से जब पता लगता है कि यह देवी विभ्रमलेखा की मौसी शशिप्रभा और मौसा वल्लभराज की पुत्री है तो देवी बहुत प्रसन्न होती है। देवी के अनुरोध पर योगीश्वर कर्पूरमञ्जरी को देवी के पास रहने के लिए कुछ दिनों को छोड़ देता है। साज-सज्जा करने हेतु देवी उसे अन्तःपुर में ले जाती है। तभी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वैतालिक-गण सन्ध्याकाल होने की सूचना देते हैं और सभी सन्ध्यावन्दना हेतु चले जाते हैं।

द्वितीय जवनिकान्तर :

[प्रमुख घटनाएँ—(१) राजा का विरह-सन्ताप, (२) विचक्षणा-विदूषक का मेल, (३) कर्पूरमञ्जरी की विरह वेदना का सूचक प्रेम-पत्र, (४) कर्पूर-मञ्जरी का शृङ्गार, (५) झूलोत्सव, (६) वृक्षों का दोहद कर्म, (७) कर्पूर-मंजरी द्वारा दोहद कर्म कराए जाने का रहस्योद्घाटन, (८) सन्ध्या वर्णन]

राजा और प्रतिहारी का प्रवेश होता है। राजा कर्पूरमञ्जरी की याद में विह्वल होकर निरन्तर उसके रूपसौन्दर्य का स्मरण करता है। प्रतिहारी राजा का ध्यान हटाना चाहता है परन्तु असफल रहता है। तभी विदूषक और विचक्षणा एक साथ उपस्थित होते हैं। उन दोनों में दोस्ती हो चुकी है। विचक्षणा केतकी दल पर लिखा कर्पूरमञ्जरी का प्रेम-पत्र राजा को देती है। स्वयं विचक्षणा भी राजा के वियोग से दीनहीना कर्पूरमञ्जरी की विरह-दशा का वर्णन करती है। इसी प्रसङ्ग में विदूषक भी राजा के विरह संताप का उद्घाटन करता है। पश्चात् राजा के द्वारा यह पूछने पर कि देवी ने कर्पूर-मञ्जरी को अन्तःपुर में ले जाकर किस प्रकार अलंकृत किया? विचक्षणा उसके प्रत्यङ्ग के शृङ्गार का वर्णन करती है। विदूषक भी सर्वालङ्कारों से अलंकृत उसके सर्वाङ्ग का वर्णन करता है परन्तु राजा उसके गीले सौन्दर्य के ध्यान में ही डूबा रहता है। विदूषक राजा का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करते हुए कहता है—'मैंने उसे सर्वालङ्कारों से अलंकृत बतलाया और तुम उसके गीले-सौन्दर्य में ही मस्त हो। अलङ्कारों से अलंकृत रूप की ओर ध्यान दो।' राजा इस बात पर कहता है कि स्वाभाविक सौन्दर्य ही वास्तविक सौन्दर्य है। साजसज्जा से वह सौन्दर्य ढक जाता है। क्या द्राक्षारस को शर्करा (चीनी) से मीठा बनाया जाता है? विचक्षणा राजा का पक्ष लेती है। विच-क्षणा कर्पूरमञ्जरी की विरहदशा की ओर पुनः संकेत करती है तथा विदू-षक से समझकर 'कार्यशेष' पूरा करने का आग्रह करती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदूषक राजा को कार्यशेष बतलाते हुए कहता है--'आज हिन्दोलन-चतुर्थी के दिन महारानी गौरीपूजा के बाद कर्पूरमंजरी को झूला में झुलायेंगी। उस समय आप मरकतकुंज में बैठकर कर्पूरमंजरी को झूलती हुई देखेंगे।' पश्चात् राजा और विदूषक दोनों कदलीगृह में स्थित मरकतकुंज से कर्पूरमंजरी को झूलते हुए देखते हैं। झूले का अद्भुत एवं सुन्दर वर्णन किया जाता है। जैसे ही कर्पूरमंजरी झूले से उतरती है राजा उसकी याद में पुनः विह्वल हो जाता है। विदूषक शिशिरोपचार-सामग्री लेने जाता है। रास्ते में शिशिरोपचार-सामग्री हाथ में लिए हुए विचक्षणा से मुलाकात होती है। वार्तालाप से दोनों को एक दूसरे के दर्शन तथा विरहसंताप का पता लगता है। राजा और कर्पूरमंजरी के विरह संताप के निवारण का कारण ज्ञात होने पर शिशिरोपचार सामग्री को फेंक दिया जाता है। योजनानुसार राजा मरकतकुंज से तमाल वृक्ष की आड़ से देवी के द्वारा आदिष्ट कर्पूरमंजरी को कुरवक, तिलक और अशोक वृक्षों का आलिङ्गनादि के द्वारा दोहद कर्म करते हुए सानुराग देखता है। पश्चात् सन्ध्याकाल हो जाने पर सभी लोग चले जाते हैं।

तृतीय जवनिकान्तर :

[प्रमुख घटनाएँ—(१) राजा का स्वप्नदर्शन एवं विदूषक का प्रतिस्वप्न वर्णन, (२) प्रेम आदि के स्वरूप की चर्चा, (३) कर्पूरमंजरी से राजा का मिलन, (४) चन्द्रोदय वर्णन, (५) देवी को राजा के प्रणय-व्यापार की खबर मिलना, (६) सुरङ्गद्वार से कर्पूरमंजरी का रक्षागृह में गमन]

राजा और विदूषक का प्रवेश होता है। राजा कर्पूरमंजरी के रूप का चिन्तन कर रहा है। विदूषक के पूछने पर राजा स्वप्न में कर्पूरमंजरी के मिलन का उद्घाटन करता है। इस पर विदूषक राजा का ध्यान वहाँ से हटाने के लिए कल्पित प्रतिस्वप्न का वर्णन करता है। विदूषक स्वप्न में देखता है कि वह गंगा जी की धारा में सो रहा है और मेघों ने उसे जल के साथ निगल लिया है; फिर मेघ के गर्भ में स्थित हुआ वह ताम्रपर्णी नदी के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संगम-स्थल समुद्र के ऊपर पहुँचता है। वहाँ तेज वर्षा होने पर विदूषक भी समुद्र की मुक्तासीपियों द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है। पश्चात् वह सुन्दर और बड़े-बड़े ६४ मोतियों के रूप में बाहर निकाला जाता है जिसे सागरदत्त सेठ मोल लेकर हार बनवाता है। पश्चात् पाञ्चाल देश के राजा श्री वज्रायुध को एक करोड़ मुद्राओं में वह हार बेच देता है। राजा उस हार को रानी के गले में पहिना देता हैं। चाँदनी रात को राजा ने जब रानी का आलिङ्गन किया तो स्तनों के मध्य में हार के दब जाने से विदूषक की निद्रा टूट जाती है। राजा विदूषक के स्वप्न का तात्पर्य समझ जाता है। पश्चात् दोनों में प्रेम, यौवन और सौन्दर्य में अलङ्कारों की स्थिति पर विस्तृत विचार होता है। इसी समय नेपथ्य से कुरङ्गिका कर्पूरमंजरी के विरहसंताप का वर्णन करती है। राजा और विदूषक आगे बढ़ते हैं और कर्पूरमंजरी के पास पहुँच जाते हैं। जब कर्पूरमंजरी स्वागतार्थ उठती है तो राजा उसका हाथ पकड़कर रोकता है। कर्पूरमञ्जरी को पसीने से भीगा देखकर विदूषक वस्त्राञ्चल से हवा करता है जिससे दीपक बुझ जाता हैं। अन्धकार में राजा कर्पूरमञ्जरी का हाथ पकड़े हुए स्पर्श सुख का अनुभव कर ही रहे थे कि नेपथ्य से वैतालिक चन्द्रोदय की सूचना देता है। सभी चन्द्रोदय का वर्णन करते हैं। इधर देवी को राजा और कर्पूरमंजरी के प्रणय-व्यापार की सूचना मिल जाती है परन्तु देवी के आने के पूर्व ही कर्पूरमञ्जरी सुरङ्गद्वार से रक्षागृह में चली जाती है। राजा और विदूषक भी चले जाते हैं।

चतुर्थ जवनिकान्तर :

[**प्रमुख घटनाएँ**—(१) ग्रीष्म वर्णन एवं विरह ताप की तीव्रता, (२) कर्पूरमंजरी का कारावास, (३) वटसावित्री के महोत्सव में चर्चरी आदि विविध नृत्यों का वर्णन, (४) राजा का घनसारमंजरी (कर्पूरमंजरी) से विवाह, (५) चक्रवर्ती पद की प्राप्ति, (६) भरत-वाक्य]

राजा और विदूषक का प्रवेश होता है। राजा ग्रीष्म ऋतु में विरह-संताप से व्याकुल है। विदूषक अपने को ग्रीष्म-संताप और विरहसंताप दोनों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से परे बतलाता है, इस पर नेपथ्य से एक शुक विदूषक की चोटी उखाड़ने को कहता है। विदूषक क्रोधित होकर उसे गालियाँ देता है जिससे शुक उड़ जाता है। राजा ग्रीष्म में विरह-संताप से पीड़ित होकर ब्रह्मा को ही क्षुरी के द्वारा खण्डित करने की बात करता है। प्रसङ्गतः ग्रीष्म ऋतु कब सुखद होती है और कब दुःखद होती है ? इसकी भी चर्चा राजा करता है।

राजा के द्वारा कर्पूरमंजरी का हाल पूछने पर विदूषक कहता है कि देवी ने उसे कड़े पहरे वाले कारागार में बन्द कर दिया है। सुरङ्गद्वार भी पत्थरों से बन्द कर दिया गया है। इसी बीच देवी की सखी सारङ्गिका राजा से देवी की ओर से निवेदन करती है—'आज चौथे दिन होने वाले वटसावित्री के महोत्सव को महाराज केलिविमान-प्रासाद पर चढ़कर देखें।' राजा वैसा ही करता है। महोत्सव में नृत्याङ्गनाएँ विविध प्रकार के नृत्य करती हैं। इसी बीच सारङ्गिका पुनः प्रवेश करके देवी का दूसरा निवेदन राजा को सुनाती है—'आज सायंकाल तुम्हारा विवाह करायेंगे।' राजा और विदूषक अचम्भे में पड़ जाते हैं। राजा के द्वारा विस्तार से पूछने पर सारङ्गिका कहती है—'देवी ने गोरी की प्रतिमा बनवाकर योगीराज भैरवानन्द से उसमें प्राण-प्रतिष्ठा कराई थी तथा उनसे स्वयं दीक्षा भी ली थी। देवी ने जब योगीराज से गुरुदक्षिणा लेने का बहुत आग्रह किया तो योगीराज ने गुरु-दक्षिणा में लाट देश के राजा चण्डसेन की पुत्री घनसारमंजरी के साथ राजा का विवाह करने को कहा। साथ ही यह भी कहा कि जो इसके साथ विवाह करेगा वह चक्रवर्ती राजा बनेगा। देवी ने इसे स्वीकार करके मुझे आपके पास सूचनार्थ भेजा है।' यथासमय राजा का विवाह होता है। विवाहोपरान्त देवी को पता चलता है कि कर्पूरमंजरी का ही दूसरा नाम घनसारमंजरी है। भैरवानन्द जब राजा से और प्रिय करने को कहता है तब राजा कहता है कि देवी प्रसन्न हैं, त्रिभुवन सुन्दरी कर्पूरमंजरी का समागम हो गया है और मैं चक्रवर्ती राजा बन गया हूँ; अब और क्या चाहिए ? इसके बाद भरतवाक्य के साथ सभी चले जाते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चरित्र-चित्रण

पात्र परिचय :

पुरुष पात्र	स्त्री पात्र
राजा (चन्द्रपाल, नायक)	देवी (विभ्रमलेखा, महिषी)
	कर्पूरमंजरी (विदर्भ राजकुमारी, कुंतलाधिप सुता, नायिका)
भैरवानन्द (योगीश्वर)	
विदूषक (कपिंजल ब्राह्मण राजा का मित्र)	
प्रतीहारी (सेवक)	घनसारमञ्जरी (कर्पूरमंजरी का दूसरा नाम, लाटदेश के राजा चण्डसेन की पुत्री)
	विचक्षणा (दासी, कर्पूरमंजरी की सखी)
वैतालिक (रत्नचण्ड और काञ्चनचंड स्तुतिपाठक)	कुरङ्गिका (दासी, कर्पूरमंजरी की सखी)
शुक (पक्षी)	सारङ्गिका (देवी की परिचारिका)
	सुलक्षणा (विचक्षणा की बहिन)

राजा चन्द्रपाल (नायक) :

राजा चन्द्रपाल इस सट्टक का 'धीरललित' नायक है। देवी विभ्रमलेखा के प्रति प्रेमभाव बनाए रहने के कारण इसे 'दक्षिण धीरललित' नायक कहा जा सकता है। धीरललित नायक होने के कारण इसे राज्य की कोई चिन्ता नहीं है और हमेशा ललित कलाओं में आसक्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रहता है।[१] सट्टक के प्रारम्भ में देवी विभ्रमलेखा को राजा वसन्त-वर्णन द्वारा वधाई देता है और अन्त में कर्पूरमंजरी के करस्पर्शजन्य सुख के समक्ष स्वर्गसुख को भी नगण्य मानता है। सट्टक के मध्य में भी वह बराबर प्रेम, सौन्दर्य, काव्य आदि विविध कलाओं में आसक्ति रखता है। नृत्य एवं संगीत कला में भी विशेष रुचि है।

प्रेमी हृदय—प्रेमी-हृदय का सच्चा पारखी तो है ही, स्वयं भी प्रेमी-हृदय है। प्रेम के विषय में उसका स्पष्ट विचार है कि स्त्री और पुरुष काम के वशीभूत होकर जब एक दूसरे के अत्यन्त निकट आकर बँध जाते हैं तो उसे 'प्रेम' कहते हैं। प्रेम होने पर छल-कपट नहीं रहता है, आनन्द का प्रवाह प्रवाहित होता रहता है तथा एक दूसरे में खोये-खोये से रहते हैं। प्रेम होने में बाह्य अलंकार कारण नहीं होते हैं, वह तो अनायास यों ही हो जाता है। इसीलिए चक्रवर्ती राजा और सामान्य पुरुष के प्रेम में तिलमात्र का भी अन्तर नहीं पड़ता है।

काव्यकला पारखी—ग्रन्थारम्भ में राजा वसन्त तथा मलयानिल का मधुर चित्रण करता है। मित्र विदूषक और दासी विचक्षणा के काव्य को सुनकर रसानुकूल विचक्षणा के काव्य की सराहना करता है। काव्य कला का सच्चा पारखी होने से वह मित्र विदूषक के नाराज होने की चिन्ता नहीं करता है। विदूषक जब नायक के इस स्वभाव को समझ जाता है तो फिर वह आगे विचक्षणा से प्रतिस्पर्धा नहीं करता है। नायक का कवि-हृदय इतना कलासक्त है कि जब विचक्षणा नायक की प्रेमिका कर्पूरमंजरी का प्रेमपत्र पढ़ती है तथा उसकी मरणासन्न विरहदशा का वर्णन करती है तब भी नायक विचक्षणा की बड़ी बहिन सुलक्षणा के काव्यकला की पहले प्रशंसा करता है—'किं भणीअदि सुकइत्तणे तुह जेट्ठबहिणिआ खुएसा।' इसी प्रकार तृतीय जवनिकान्तर में कर्पूरमंजरी के 'चन्द्रवर्णन' की तारीफ

---

१. निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः। दश० २.३.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करता है। पूरे सट्टक में उसका कवि-हृदय उल्लसित होता है। इस तरह वह कभी-कभी अपने इस स्वभाव के कारण अपनी प्रेमिका को ही भूल जाता है। रत्नावली के नायक राजा उदयन की तरह यह अपनी प्रेमिका के प्रति पूर्ण जागरूक नहीं दिखलाई पड़ता है।

प्राकृतिक सौन्दर्य प्रेमी—चाहे वह प्रकृति हो अथवा कुछ और वह हमेशा प्राकृतिक सौन्दर्य में अनुरक्ति रखता है। वसन्त की सुषमा, मलयानिल की बहार, चंद्रमा की चांदनी आदि प्राकृतिक वस्तुएँ उसे जितनी प्रिय हैं उतना ही रमणियों का प्राकृतिक सौन्दर्य भी चित्ताकर्षक है।

अपूर्व सुन्दर—इसकी सुन्दरता को देखकर कर्पूरमंजरी प्रथम दर्शन में ही यह जानते हुए कि यह मेरी बहिन का पति है दिल न्यौछावर कर देतीहै। वह इसकी सुन्दरता का वर्णन करते हुए कहती है—**'किं एसो सहसा गअणंगणादो अवइण्णो पुण्णिमाहरिणंको। किं वा तुट्ठेण णीलकंठेण णिअदेहं लंभिदो मणोहओ। किं वा हिअअस्स दुज्जणो णअणाण सज्जणो मं संभावेदि।'** पृ० १६१.

पराक्रमी होकर भी कहीं पराक्रम का प्रदर्शन नहीं करता है—वैतालिकों की स्तुतियों से ज्ञात होता है कि इसने पाण्ड्य, चोल, कुन्तल, कर्नाटक, राढ आदि देशों को जीता था। अन्त में वह कर्पूरमंजरी से सम्बन्ध होने पर चक्रवर्ती राजा भी हो जाता है परन्तु कहीं भी वह पराक्रम का प्रदर्शन करते नहीं पाया जाता है। उसके चक्रवर्तित्व होने का कार्य भैरवानन्द के अधीन दिखलाई पड़ता है। राजा स्वयं भी देवी के अधीन रहता है। देवी के आदेश से वह घनसारमंजरी से शादी करने के लिए तैयार हो जाता है। उसका अपना कहीं स्वतन्त्र अस्तित्व दिखलाई नहीं पड़ता है। विदूषक उसका नर्मसचिव है जिससे वह अपने दिल की बात बेखटक कह देता है। कर्पूरमंजरी से मिलाने में विदूषक का बहुत बड़ा हाथ है।

इस तरह प्रकृत सट्टक का नायक दक्षिण प्रकृति का धीरललित नायक है। अपनी प्रेयसी कर्पूरमंजरी के वियोग में वह सदा दुःखी रहता है और उसकी प्राप्ति हो जाने पर परमानन्द की अनुभूति करता है। कविप्रतिभा, सौन्दर्यप्रेम,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कलासक्ति आदि गुण उसमें विद्यमान हैं। विवाहोपरांत उसके उदारहृदय का भी परिचय मिलता है जब वह विदूषक को सौ गाँव दक्षिणा में दे देता है। देवी की आज्ञा उसे सर्वोपरि है। प्रेयसी को देवी द्वारा कारागार में बंद कर देने पर यह कुछ भी नहीं करता है। कोमल-प्रकृति तथा परिजनों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार वाला है। प्रभुता का मद नहीं है। कर्पूरमंजरी से प्रेम करते हुए भी वह देवी को बहुत प्रेम करता है।

कर्पूरमञ्जरी (नायिका) :

इस सट्टक की नायिका कर्पूरमंजरी है जो नायिका भेदों में 'मुग्धानायिका है।[१] यह कुन्तल देश के राजा वल्लभराज की पुत्री है। इसकी मां का नाम शशिप्रभा है जो देवी विभ्रमलेखा की मौसी है। भैरवानन्द इसे अपनी योगशक्ति से स्नानावस्था में ही राजा चन्द्रपाल के राजदरबार में उपस्थित करता है। यह अद्भुत सुंदरी है। झूलनोत्सव पर इसका अपूर्व सौन्दर्य वर्णित किया गया है। पूरे सट्टक में इसके लावण्य की ही चर्चा प्रमुख रूप से की गई है। इसके सौन्दर्य को राजा द्वितीय जवनिकान्तर में निम्न रूप में प्रकट करता है-

मंजिट्ठी ओट्ठमुद्दा णवघडणसुवण्णुज्जला अंगलट्ठी,
दिट्ठी बालेंदुलेहाधवलिमजइणी कुन्तला कज्जलाहा।
इत्थं वण्णाण रेहा विहरइ हरिणीचंचलच्छीअ एसा,
कंदप्पो जीअदप्पी जुअजणजअणे पुण्णलक्खो विभाई ॥२.४१॥

इसके अपूर्व सौन्दर्य पर राजा प्रथम दर्शन में ही मुग्ध हो जाता है। यह भी राजा को प्रथम दर्शन में ही प्रेम करने लगती है। राजा उसकी बहिन का पति है फिर भी वह राजा से प्रणय व्यापार बढ़ाती है तथा सखी विचक्षणा के हाथ एक प्रेमपत्र भी भेजती है। यह कवि हृदय है और सुन्दर कविता भी करती है। चंद्र वर्णन के प्रसङ्ग में राजा इसकी कविता की बड़ी तारीफ करता है। नायिका के नाम पर ही प्रकृत सट्टक का नामकरण किया

---

१. मुग्धा नववयः कामा रतौ वामा मृदुः क्रुधि। दश० २.१६.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गया है। यह बराबर भैरवानन्द की कठपुतली की तरह नाचती रहती है। स्वयं में कोई क्रियाशीलता नहीं है।

चरित्र-विकास की दृष्टि से इसका चरित्र विकसित नहीं हो सका है क्योंकि पूरे सट्टक में यह आठ-दस वाक्य ही बोलती है।[१] अभिनय पक्ष एकदम शून्य है। लज्जा स्वभाव वाली होकर भी प्रेम में आगे कदम बढ़ाने में हिचकती नहीं है। यह ढाई माह राजा के घर रह जाती है और विवाह कर लेती है परन्तु इसे अपने माता-पिता आदि परिजनों का कहीं ख्याल ही नहीं आता है। यह पूरे सट्टक में मूक पशु की तरह क्रियाशून्य एवं विचारशून्य सी रहती है। देवी इसे मौसी की लड़की होने से बेहद प्यार करती है और खूब शृङ्गार करती है। दोहदादि के कार्य में भी वह इसे नियुक्त करती है। परन्तु देवी को जब पता लगता है कि यह मेरे पति से छुपकर प्रेम करती है तो कड़े पहरे वाले कारागार में बन्द कर देती है। घनसारमंजरी को देखकर कर्पूरमंजरी का भ्रम होने पर वह दो बार कारागार में जाकर निरीक्षण करती है। राजा के साथ कर्पूरमंजरी का विवाह होने पर देवी प्रसन्न है अथवा नहीं यह तो स्पष्ट नहीं है परन्तु एक पाठ के अनुसार राजा के इस कथन 'देवी रोसकसाअमाणसवई णो होइ सावत्तए' से लगता है कि देवी अप्रसन्न नहीं है। पति के चक्रवर्तित्व-लाभ को दृष्टि में रखकर भी वह अप्रसन्न नहीं होगी अन्यथा स्वयं तदर्थं घनसारमंजरी से विवाह न कराती। विचक्षणा से इसकी तारामैत्री हो गई है और वह राजा से प्रणयव्यापार

---

१. प्रथम अङ्क (पृ० ६३, ७४-७६) में परिचयात्मक कुछ शब्द बोलती है। द्वितीय अंक में (पृ० १४६, १५६) दो छोटे-छोटे वाक्य बोलती है उसका प्रेमपत्र विचक्षणा पढ़ती है पृ० ६६,। तृतीय अंक में (पृ० १८८) नेपथ्य से एक वाक्य और एक पद्य कहती है। एक पद्य कुरंगिका पढ़ती है जिसमें चंद्रमा का वर्णन रहता है (पृ० २०६)। इसी अंक में नायिका राजा को देखकर उसके सौन्दर्य का वर्णन करती है (पृ० १६१)। चतुर्थ अंक में (पृ० २४५) कुल दो शब्द बोलती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बढ़ाने में सहयोग करती है। राजा से विरह उसे एकदम असह्य है। इसका चित्रण विचक्षणा ने इस प्रकार किया है—

तिस्सा तावपरिक्खणाअ णिहिओ हत्थो थणुत्थंगओ
दाहुड्डामरिओ सहीहिं वहुसो हेलाअ कड्ढिज्जइ।
किं तेणावि इमं णिसामअ गिरं संतोसिणि तासिणि
हत्थच्छत्तणिवारिदेंदु किरणा बोलेइ सा जामिणीं ॥२.२६॥

देवी (विभ्रमलेखा) :

विभ्रमलेखा राजा चंद्रपाल की प्रधान महिषी है। इसका उल्लेख पूरे सट्टक में 'देवी' के नाम से किया गया है, सिर्फ चतुर्थ जवनिकान्तर में विवाह प्रकरण में इसे 'राज्ञी' करके कहा गया है। यह दक्षिणाधिप नरेन्द्र की कन्या है। नायिका भेदों में स्वकीया मध्या नायिका इसे कहा जा सकता है। मध्या नायिका की कामपिपासा अधिक होती है जिससे वह प्रणयालाप में अधिक लज्जा का अनुभव नहीं करती है।[1] वसन्तवर्णन के सन्दर्भ में उसकी निम्न उक्ति से उसे कथंचित् मध्यानायिका सिद्ध किया जा सकता है—

माणं मुंचध देह वल्लहजणे दिट्ठि तरंगुत्तरं
तारुण्णं दिअहाइ पंच दह वा पीणत्थणुत्थंभणं।
इत्थं कोइलमंजुसिंजिअमिसा देवस्स पंचेसुणो
दिण्णा चेत्तमहूसवेण भुअणं आण व्व सव्वंकसा ॥१.१८॥

रानी होने पर भी अपने परिजनों से उसका प्रेम भाव है। वसन्तोत्सव के संदर्भ में वह विचक्षणा की कविता सुनने में अभिरुचि लेती है। विदूषक के नाराज होकर चले जाने पर दुःखी होती है। कर्पूरमंजरी जो उसकी मौसेरी बहिन है, बड़ा प्रेम करती है और उसे खूब अलंकृत करती है। झूलनोत्सव पर उसे झूला में बैठाकर झुलवाती है। यह अवश्य है कि कर्पूर-

---

१. मध्योद्यद्यौवनानङ्गा मोहान्तसुरतक्षमा। दश० २.१६.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मंजरी के अपराधी होने पर उसे कड़ी सजा देने में भी हिचकिचाती नहीं है। राजा के प्रति उसका प्रेम अगाध है। अतएव राजा के प्रणयव्यापार में अपराधी होने पर भी उसे वटसावित्री महोत्सव में आमन्त्रित करती है। चक्रवर्ती पद प्राप्ति हेतु घनसारमंजरी से विवाह रचाकर सपत्नी लाने में भी पीछे नहीं हटती है। सरल स्वभावी होने से अपराधी राजा पर क्रोधादि का प्रदर्शन कहीं नहीं करती है।

धार्मिक विश्वासों से युक्त होने के कारण गौरीपूजा आदि धार्मिक कृत्यों में बराबर भाग लेती है। गौरी की प्रतिमास्थापन कराने पर भैरवानन्द को दक्षिणा देने में सपत्नी लाना स्वीकार कर लेती है। विवाह के अवसर पर घनसारमंजरी और कर्पूरमंजरी में सादृश्य देखकर बारबार कर्पूरमंजरी को देखने के बहाने से स्वयं कारागार में जाती है। इस तरह भैरवानन्द पर विश्वास भी करती है और आशंका भी।

कविहृदय तथा संगीत प्रेम भी उसमें परिलक्षित होता है। श्री हर्ष की रत्नावली की वासवदत्ता की तरह इसका चरित्र अधिक उन्नत नहीं हो सका है।

भैरवानन्द (योगीश्वर) :

अद्भुत सिद्धियों वाला प्रसिद्ध योगीश्वर है। 'इसका नाम सुनते ही देवी कहती है 'किं सो, जो जणवअणादो अच्चब्भुदसिद्धी सुणीअदि' (पृ० ५३)। यह सामान्य योगियों से भिन्न आचार-विचार वाला है। इसके स्वयं के कथनानुसार यह मंत्र, तंत्र, वेद विद्या, यागादिकर्म, ध्यान आदि कुछ भी नहीं जानता है। मदिरा पान, मांस भक्षण और स्त्रीसंभोग जैसे कार्यों को करने में धर्म मानता है। अपने आपको शिव का उपासक और कौलधर्मानुयायी बतलाता है। अद्भुत सिद्धियों वाला होने से-इसकी प्रसिद्धि एवं सम्मान है। वह अपनी अद्भुत शक्ति से राजा के परिजनों के मध्य स्नानावस्था में सट्टक की नायिका कर्पूरमञ्जरी को लाकर उपस्थित कर देता है। रानी के अनुरोध से उसे वहीं कुछ दिनों के लिए छोड़ भी देता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रारम्भ में भैरवानन्द दम्भी और दुराचारी जैसे रूप में उपस्थित होता है। उसका दम्भ है कि—

दंसेमि तं पि ससिणं वसुहावइण्णं
थंभेमि तस्स वि रविस्स रहं णहद्धे।
आणेमि जक्खसुरसिद्धगणंगणाओ।
तं णत्थि भूमिज्वलए मह जं ण सद्धं ॥१.२५॥

वह राजा का अभीष्ट सिद्ध करने के लिए देवी से छल भी करता है और लाट देश की कन्या घनसारमंजरी के बहाने कर्पूरमञ्जरी से राजा का विवाह करा देता है। इस कार्य में वह देवी से बराबर छलपूर्ण व्यवहार करता है जबकि देवी उसकी अन्धभक्त है। संभवतः वह राजा को चक्रवर्ती बनाने के लिए देवी से थोड़ा छल करता है। यही कारण है कि देवी भैरवानन्द से नाराज नहीं होती है।

इस तरह भैरवानन्द का स्वयं का चरित्र जैसा भी हो वह प्रकृत सट्टक का प्राण है। बिना इसके सहयोग के राजा का कर्पूरमञ्जरी से अनुराग और विवाह संभव नहीं था। यह प्रणयबन्धन ही इस सट्टक का केन्द्र-बिन्दु है। इस सन्दर्भ में एक बात और चिन्तनीय है कि भैरवानन्द जैसा कि ऊपर से दिखलाई पड़ता है वैसा कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता है। देवी उससे गौरी की प्राणप्रतिष्ठा करवाती है, उससे दीक्षा लेती है तथा गुरुदक्षिणा लेने को बाध्य करती है। परन्तु भैरवानन्द अपने लिए दक्षिणा नहीं मांगता है, राजा और देवी के मंगल के लिए ही कर्पूरमञ्जरी का राजा से विवाह दक्षिणा के रूप में मांगता है। अतः अन्त में कहता है 'किं दे पुणो अ पिअं कुणोमि,.(पृ० २५८) आपका और क्या प्रिय करूँ। इससे लगता है कि वह योगीश्वर राजा को चक्रवर्ती बनाने की कामना से आया हुआ एक सिद्ध पुरुष है। दम्भादि का प्रदर्शन उसकी एक कलामात्र है। इसकी वेशभूषा आदि के बारे में कोई उल्लेख नहीं मिलता है। रत्नावली के यौगन्धरायण की धुंधली अनुकृति इसमें देखी जा सकती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदूषक (कपिञ्जल ब्राह्मण) :

इस सट्टक में विदूषक का चरित्र अन्य पात्रों की अपेक्षा अधिक उभर कर सामने आया है। यह राजा का प्रिय मित्र है। नायिका के प्रथम साक्षात्कार से लेकर विवाहपर्यन्त राजा के नर्मसचिव (कामतन्त्र-सलाहकार) का भी काम करता है। राजा का कोई भी काम इसके बिना नहीं होता है। इससे कोई भी बात राजा की गोपनीय नहीं है।

कविता करने में यद्यपि यह मूर्ख है फिर भी तीखे व्यङ्गयों को समझने में बड़ा चतुर है। प्रथम जवनिकान्तर में वसन्त वर्णन के प्रसङ्ग में विदूषक अपने को पण्डित बतलाते हुए कहता है 'तुम्हाणं सव्वाणं मज्झे अहं एक्को कालक्खरिओ, जस्स मे ससुरससुरो पंडिअघरेसु पोत्थअभारं वहन्तो आसि।, (पृ० ३७)। विचक्षणा इस मूर्खतापूर्ण पाण्डित्य को सुनकर व्यङ्गय करते हुए कहती है 'तदो आगदं दे अण्णएण पंडिच्चं' विदूषक इस व्यङ्गय को तुरन्त समझ जाता है और विचक्षणा को भद्दी-भद्दी गालियाँ देने लगता है। दोनों में परस्पर गाली-गलौज होती है। यह न केवल नौकर चाकरों को ही कटु शब्द कहता है, राजा और देवी को भी कटु शब्द कहने में नहीं हिचकता है 'ईरिसं राउलं दूरे वंदीअदि जहिं दासी बंभणेण समं पडिप्पद्धां करेदि (पृ० ४९)। इसके बिना राजा और देवी का समय नहीं कटता है।[१] वे उसे मनाना चाहते हैं, वह नाराज होकर चला जाता है परन्तु थोड़ी देर बाद भैरवानन्द के साथ सब बातें भुलाकर आ जाता है और तब ऐसा लगता है मानो कोई झगड़ा न हुआ हो। द्वितीय जवनिकान्तर में विचक्षणा से भी दोस्ती हो जाती है और फिर वह उससे पाण्डित्य में प्रतिस्पर्द्धा नहीं करता है।[२]

---

१. देवी—अज्जउत्त। कीदिसी अंज्ज कविंजलेण विणा गोट्ठी ?
कीदिसी उ णअणंजणेण विणा पसाहणलच्छी। (क० म०, पृ० ५०)

२. 'ता एदाहिं समं पडिप्पद्धां ण करिस्सं' (क० म०, पृ० १०१)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यह भोजन-प्रिय है। इसे विशेषकर कलमकूर चावल प्रिय है। सिन्धुवार के फूल और विचकिल के भी फूल प्रिय हैं। हसाने का काम करना इसका प्रमुख कार्य है; इसीलिए वह कहता है 'अहवा एसा दुट्ठदासी लंबकुचा टप्परकण्णी पडिसीसअं देइअ मह ट्ठाणे उवहसणत्थं करीअदु।' (पृ० ५०)। विचक्षणा इसे सन की गांठ के समान अनुनय-कर्कश कहती है। परन्तु ऐसी वात नहीं है। यह जाति से ब्राह्मण है और राजा के विवाह में पुरोहित का भी काम करता है। देवी इसे श्रोत्रिय ब्राह्मणों में श्रेष्ठ बतलाती है। दक्षिणा स्वीकार करता है तथा राजा आदि को आशीर्वाद भी देता है। इसकी वसुन्धरा नाम की गृहिणी है जिसकी चरणसेवा करने में अपने को सौभाग्यशाली मानता है 'ता अज्जप्पहुदि णिअगेहणीए वसुन्धराणामहेआए बंभणीए चलणसुस्सूसओ भविअ गेहे जेव्व चिट्ठिस्सं' (पृ० ४९)।

यद्यपि स्वयं अच्छी काव्यरचना करने में दक्ष नहीं है परन्तु काव्यकला में रुचि लेता है। द्वितीय जवनिकान्तर में (३३-४०) विदूषक झूलेपर बैठी हुई कर्पूरमञ्जरी के सौन्दर्य का अच्छा वर्णन करता है। इस तरह विदूषक एकत्र अच्छा कवि भी है। सङ्गीत कला की भी जानकारी है। अलङ्कारों से अलङ्कृत स्त्री में इसे सौन्दर्य अधिक परिलक्षित होता है। अतएव बाह्यसौन्दर्य इसे अधिक आकर्षक लगता है। ग्रीष्मवर्णन के प्रसङ्ग में इसका कहना है कि मुझे न तो सूर्यताप सताता है और न कामसंताप ही 'एक्के दाव मम्महबाहणिज्जा। अण्णे दाव सोसणिज्जा। अम्हारिसो उण जणो ण कामस्स बाहणिज्जो ण तावस्स सोसणिज्जो' (पृ० २१५)। राजा का मनोविनोद करने के लिए शीघ्र ही कल्पना पटु भी है। जब राजा कर्पूरमञ्जरी के ध्यान में डूबा रहता है तो कल्पित स्वप्न सुनाकर मनोरंजन करता है। इस तरह सट्टक में विदूषक राजा का नर्मसचिव है जिसकी बुद्धि का राजा भी लोहा मानता है। राजा का सच्चा मित्र भी है। शादी में पौरोहित्य कर्म भी करता है। कहीं मूर्खतापूर्ण और कहीं बुद्धिमत्ता की बातें करता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विचक्षणा (दासी) :

यह देवी की दासी है जो कर्पूरमञ्जरी की सेवा में नियुक्त की गई है। पश्चात् इसकी कर्पूरमञ्जरी से तारा-मैत्री हो जाती है। राजा के साथ कर्पूरमञ्जरी को अभिसार आदि के लिए प्रेरित करने में इसका प्रमुख हाथ है। यही कर्पूरमञ्जरी का प्रेमपत्र राजा के पास ले जाती है। स्वयं भी उसकी विरह दशा का सुन्दर चित्रण करती है। इसकी बड़ी बहिन भी है जिसका नाम सुलक्षणा है। दोनों बहिनें काव्य-निर्माण में बड़ी दक्ष हैं। राजा दोनों की काव्यरचना की बहुत तारीफ करता है।[1] विचक्षणा प्रथम दो जवनिकान्तर में ही दृष्टिगोचर होती है, बाद में उसका कार्य कुरङ्गिका सम्हालती है। चतुर्थ जवनिकान्तर में कर्पूरमञ्जरी के कारागार पहुँचने पर कोई सखी दिखलाई नहीं देती है। यह दम्भी भी है और ब्राह्मण विदूषक से झगड़ा होने पर काफी गाली-गलौज भी करती है परन्तु बाद में मैत्री कर लेती है।

अन्य पात्र :

कर्पूरमञ्जरी में कुछ अन्य गौण पात्रों के भी उल्लेख हैं। जैसे—(१) वैतालिक-रत्नचण्ड और काञ्चनचण्ड ये दोनों सन्ध्यावर्णन के प्रसङ्ग में राजा की स्तुति करते हैं और सन्ध्याकाल की सूचना देते हैं। किसी एक वैतालिक का माणिक्य चंद भी नाम है। इस तरह तीन वैतालिक हैं। (२) कुरङ्गिका—यह कर्पूरमञ्जरी की सखी है और यह तृतीय जवनिकान्तर में दिखलाई पड़ती है। (३) सारङ्गिका—यह राजा का सेवक है, थोड़ी देर के लिए। (४) प्रतिहारी—यह अन्तःपुर का दास है और इसका प्रवेश राजा के साथ द्वितीय जवनिकान्तर में थोड़ी देर के लिए होता है। (५) शुक—यह एक

१. सच्चं विअक्खणा विअक्खणा चदुरत्तणेण उत्तीणं। ता किमण्णं कईणं वि सुकई। (पृ० ४३-४४)। 'कइत्तणेण तुह जेट्ठवहिणिआ खु एसा' (पृ० १००)॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पक्षी है जो सहृदय है। विदूषक से नाराज होकर चला जाता है। (६) सुलक्षणा—यह रंगमंच पर नहीं आती है परन्तु इसका एक पद्य जो कर्पूरमञ्जरी की विरह दशा का निवेदक है, विचक्षणा पढ़ती है।(७) उल्लिखित व्यक्तिवाचक अन्य नाम—शशिप्रभा (देवी विभ्रमलेखा की मौसी, वल्लभराज की पत्नी), वल्लभराज (देवी विभ्रमलेखा के मौसा), सागरदत्त वणिक्, बज्रायुध (पाञ्चालाधिप), चण्डसेन (लाटदेश का राजा, घनसारमंजरी का पिता), राजशेखर (कवि), अवन्तिसुन्दरी (कविपत्नी), निर्भयराज (राजा जिस राज्याश्रय में कवि है), अपराजित (कथाकार)।

कर्पूरमञ्जरी में सौन्दर्य और प्रेम विषयक दृष्टिकोण

कर्पूरमञ्जरी में प्रमुख रूप से राजा के अन्तःपुर की प्रणयलीला का वर्णन है। प्रसङ्गतः सौन्दर्य और प्रेम की विस्तृत चर्चा इसमें आई है। इस संदर्भ में राजा का दृष्टिकोण है कि स्वाभाविक सौन्दर्य ही वास्तविक सौन्दर्य है, इसमें बाह्य अलङ्कारों की कोई आवश्यकता नहीं है। विदूषक का इससे विपरीत दृष्टिकोण है। विदूषक के मत में बाह्य अलङ्कारों से सौन्दर्य में चार चाँद लग जाते हैं अर्थात् वह बाह्य साज-सज्जा को एक आवश्यक सौन्दर्य-विधायक तत्त्व स्वीकार करता है। इस क्रम में विचक्षणा भी राजा के मत की पुष्टि करती है। प्रेम के विषय में राजा का मत है कि यह अनायास ही किसी से हो जाता है इसमें रूपादि कारण नहीं हैं। विदूषक इस सन्दर्भ में केवल प्रश्नकर्ता के रूप में प्रस्तुत किया गया है क्योंकि वह प्रेमरोग से अनभिज्ञ है। ग्रन्थानुसार दोनों विषयों की समीक्षा निम्न प्रकार है—

(क) सौन्दर्य समीक्षा—सौन्दर्य के विषय में सर्वप्रथम द्वितीय जवनिकान्तर में विदूषक राजा से क्रोधपूर्वक कहता है 'मैंने कर्पूरमञ्जरी को सर्वालङ्कार से अलंकृत बतलाया है फिर क्यों आप उसके अलंकारों से अलंकृत रूप का स्मरण न करके उसके अलंकारों से विलुप्त स्नानावस्था के रूप का ध्यान कर रहे हैं ? क्या आपने सुना नहीं है—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

णिसग्गचंगस्स वि माणुसस्स सोहा समुम्मीलदि भूसणेहिं ।
मणीणं जच्चाणं वि कंचणेण विहूसणे लब्भदि कावि लच्छी ।।२.२५।।

जैसे उत्कृष्ट रत्न सोने से जड़े जाने पर और अधिक शोभा को प्राप्त करता है वैसे ही प्रकृति से सुन्दर भी मनुष्य अलंकारों से अलंकृत होने पर अधिक आकर्षक लगते हैं। इस तरह विदूषक अलंकारों को सौन्दर्यवृद्धि में प्रवृत्तिनिमित्त मानता है तथा अलंकार विहीन प्राकृतिक सौन्दर्य को उतना अच्छा नहीं मानता हैं। इसके उत्तर में राजा का कथन है—

मुद्धाण णाम हिअआइं हरंति हंत
णेवच्छकप्पणगुणेण णिअंबिणीओ ।
छेआ पुणो पअइचंगिमभावणिज्जा
दक्खारसो ण महुरिज्जइ सक्कराए ।।२.२६।।

जैसे प्रकृति से मधुर द्राक्षारस में और अधिक मिठास उत्पन्न करने के लिए चीनी की आवश्यकता नहीं होती है वैसे ही प्रकृति से सुन्दर कामिनियों के सौन्दर्यवृद्धि के लिए अलङ्कारों की आवश्यकता नहीं होती है। बाह्य अलङ्कार तो केवल मूर्खों को आकर्षित करते हैं, विद्वानों को नहीं। इसी सन्दर्भ में राजा की यह भी उक्ति है कि वाह्य अलङ्करण केवल वेश्याओं का लोगों को आकर्षित करने का विलास मात्र है। कुलीनाङ्गनाओं का शृङ्गार तो उनके अपने सुन्दर अङ्ग ही हैं। वे सादी वेषभूषा में भी आकर्षक लगती हैं। युवावस्था में तो अङ्ग-प्रत्यङ्ग का सौष्ठव विना शृङ्गार के ही पर्याप्त है (२.२८)।

उठे हुए स्तन, विशाल आँखें, चन्द्रमा के समान मुख तथा कान्तिमान् शरीर के रहते हुए भी सभी लोग अलङ्कार क्यों धारण करते हैं? इसके उत्तर में विचक्षणा का यह कथन वहुत महत्त्वपूर्ण है कि रूढ़ी (परंपरा) के कारण लोग अलङ्कारों को धारण करते हैं—

को णेवच्छकलाअ कीरदि गुणो जं तं पि सव्वं पिअं ।
सुत्तव्वं सुणु तत्थ कारणमिमं रूढीअ का खण्डणा ।।२.२७।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तृतीय जवनिकान्तर में राजा प्रेम के कारणों का प्रतिपादन करते हुए कहता है कि बाह्य साज-सज्जा, नृत्य, गीत आदि आकर्षण के प्रति निमित्त कारण नहीं हैं अपितु वह कोई अन्य ही गुण है जिससे कामिनियाँ हृदय में बस जाती हैं (३·१३-१४)।

इस सन्दर्भ में कुछ शंकायें हैं जिनका विचार भी यहाँ अपेक्षित है। जैसे—

(१) द्वितीय जवनिकान्तर में (१२-२२) विचक्षणा जब कर्पूरमंजरी के अलंकरण की बात बतलाती है तो राजा उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करता है। इसी प्रकार चतुर्थ जवनिकान्तर में ग्रीष्म वर्णन के प्रसंग में (४.७, ८) रत्नजड़ित करधनी, चंदनविलेपन आदि से अलंकृत रमणी का कामदेव दास बतलाया है। इससे ज्ञात होता है कि राजा भी अलंकारों को सौन्दर्यजनक मानता है। इसका समाधान यह है कि राजा रूढि (परम्परा) को ध्यान में रखकर ऐसा कथन कर रहा है। वस्तुतः जिसमें प्राकृतिक सौन्दर्य नहीं है वह अलंकारों से थोड़ी देर के लिए मूर्खों को जरूर आकृष्ट कर ले परन्तु सुधीजनों के लिए नहीं। राजा जिस भीगे-सौन्दर्य की प्रशंसा करता है जिसमें अलंकार नहीं हैं, उसके समक्ष कोई दूसरा सौन्दर्य नहीं है। यह केवल अनुभव का विषय है।

(२) विदूषक और विचक्षणा में जब झगड़ा होता है तब विदूषक 'गोरंगीए विअ चांदणचच्चा ण चारुत्तणमवलंबेदी' (पृ० ४५) आदि कहता है। इसी प्रकार द्वितीय जवनिकान्तर (२३) में 'जिस्सा दिट्ठी सरल धवला कज्जलं तीअ जोग्गं' इत्यादि कहता है जिससे ज्ञात होता है कि विदूषक प्राकृतिक सुन्दरता के होने पर ही अलङ्कारों को उत्कर्षाधायक मानता है, अन्यथा नहीं। इसका समाधान यह है कि विदूषक ऐसा मानकर भी अलङ्कारों के मोह को बनाए हुए है, जबकि राजा नहीं। यही दोनों के मत में अन्तर है।

इस तरह राजा बाह्य अलङ्कारों में अभिरुचि न लेकर अलङ्कार-विहीन नैसर्गिक सौन्दर्य का पुजारी है, विशेषकर भीगे सौन्दर्य का। जबकि विदूषक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बाह्य अलंकारों को भी आवश्यक मानता है, उसकी नग्न-सौन्दर्य में अभिरुचि नहीं है। विचक्षणा राजा के मत की ही समर्थक है। वस्तुतः स्वाभाविक सौन्दर्य के अभाव में अलंकार निरर्थक हैं। यदि अलंकारों से स्वाभाविक सौन्दर्य को ढक दिया जायेगा तो सौन्दर्य ही समाप्त हो जायेगा। यही कारण है कि देश-भेद से बाह्य अलंकारों में भिन्नता पायी जाती है।

(ख) 'प्रेम समीक्षा'—तृतीय जवनिकान्तर में विदूषक प्रियतमा के वियोग से दुःखी राजा से पूछता है 'राज्यच्युत राजा, भूखा ब्राह्मण, दम्भी वेश्या युवति एवं विरही ये मनुष्य मन के लड्डुओं से अपने लिए क्यों बहलाते हैं ?' बतलाओ यह किसका प्रभाव है ? इसके उत्तर में राजा कहता है 'प्रेम के कारण'। अब प्रश्न है कि (१) 'प्रेम' का स्वरूप क्या है ?, (२) प्रेम की पहचान क्या है ?, (३) प्रेम होने में कारण क्या है ?, (४) सामान्य व्यक्ति के प्रेम में और सार्वभौम राजा के प्रेम में क्या अन्तर है ?, (५) प्रेम में बाह्य अलंकारों और रूपादि गुणों की क्या स्थिति है ? इत्यादि प्रश्नों के उत्तर निम्न प्रकार हैं—

(१) स्वरूप—एक दूसरे के सम्पर्क में आए हुए स्त्री-पुरुषों के हृदय जब कामदेव के वशीभूत होकर एक-दूसरे से बँध जाते हैं तब उसे विद्वान् लोग प्रेम कहते हैं अर्थात् कामवश नर एवं नारी के हृदयों में उत्पन्न हुआ आकर्षण (राग) ही प्रेम है। (३.१०) ऐसे प्रेम को कामदेव का विलासाडम्बर या इन्द्रजाल कहा गया है।

(२) पहचान—प्रेम होने पर प्रेमी और प्रेमिका के हृदय में छलकपट आदि से रहित सरलता का भाव उत्पन्न हो जाता है जो आलिङ्गन, चुम्बन आदि श्रृंगारिक चेष्टाओं के द्वारा उत्कर्ष को प्राप्त होता रहता है। उसमें बराबर आनन्द का प्रवाह प्रवाहित होता रहता है तथा अन्य सभी भाव तिरोहित हो जाते हैं। इसके प्रभाव से लोग गोपनीय बातों को भी प्रकाशित कर देते हैं (३·१२)। यद्यपि प्रेम दुर्लक्ष्य है फिर भी प्रेमी व्यक्तियों की बाह्य-चेष्टाओं के द्वारा यह सहजरूप से प्रकाशित हो जाता है क्योंकि प्रेमी व्यक्ति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की चञ्चल दृष्टियाँ स्वभावतः एक दूसरे को खोजती रहती हैं, मन एक-दूसरे में खोया-खोया सा रहता है तथा एक अनिर्वचनीय आनन्द के रस का प्रवाह प्रवाहित होता रहता है (३·११)। इन्हीं चेष्टाओं से प्रेम को पहचाना जाता है।

(३) प्रेम होने में कारण—विदूषक राजा से पूछता है कि जब आपका देवी के साथ प्रगाढ़ दाम्पत्य प्रेम है तो फिर क्यों आप कर्पूरमंजरी को आँखों में समाये रखना चाहते हैं ? क्या देवी में कर्पूरमंजरी से कम गुण हैं ? इसके उत्तर में राजा का कथन है—

कीए वि संघडइ कस्स वि प्रेम्मगंठी
एमेअ तत्थ ण हु कारणमत्थि रूवं।
चंगत्तणं पुणु महिज्जइ जं तहिं पि
तं दिज्जए पिसुणलोअमुहेसु मुद्दा ॥३.६॥

किसी प्रेमी का किसी युवती से अनायास ही प्रेम हो जाता है। इसमें सौन्दर्य आदि कारण नहीं होते हैं। दुष्टों का मुख बन्द करने के लिए ही सौन्दर्य आदि को कारण बतलाया जाता है। अतः देवी के सर्वगुण-सम्पन्न होने पर भी मेरी दृष्टि कर्पूरमंजरी में समाई हुई है।

विदूषक पुनः पूछता है कि जब सौन्दर्यादि प्रेम के प्रति कारण नहीं हैं तो फिर बाह्य अलंकारों से अलंकरण क्यों किया जाता है ? इस सन्दर्भ में राजा ने दो बातें कही हैं (३.१३-१६)—(क) बाह्य अलंकरण, नृत्य-गीतादि आकर्षण के प्रति कारण नहीं हैं। (ख) स्वाभाविक सौन्दर्य (जैसे तरल नेत्र, चन्द्रवत् मुख, उन्नत स्तन आदि) भी प्रेम के प्रति कारण नहीं है अपितु संसार में प्रेम के प्रति वह कोई अन्य ही कारण है जिससे कामिनियाँ हृदय में बस जाती हैं। वह कारण है 'मनुष्य की अपनी रुचि'। अतः कहा है—

'मिट्ठत्तणे महिअलंमि ण किं पि अण्णं
रुच्चिस्स अत्थि सरिसं पुणु माणुसस्स ॥३.१४॥

इस तरह कामना ही कामनीयता का कारण है। अतः किसी का किसी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के भी प्रति प्रेम हो सकता है। मनुष्य की रुचि के समक्ष संसार में अन्य कोई भी वस्तु मधुर और आकर्षक नहीं है। इस सन्दर्भ में राजा आगे एक बात और कहता है कि हृदय को हरण करने वाला कामिनियों का यौवन जो कामदेव के छठे बाण के समान है, कामियों की रुचि को जागृत करता है (३. १८-१९) लावण्य से पूर्ण अङ्ग, आकर्ण कांतिमान् नेत्र, पीन-पयोधरों से सुशोभित वक्ष:स्थल, त्रिवलि से अलंकृत मुष्टिग्राह्य कटिभाग और चक्राकार नितम्ब ये यौवनकाल की कामदेव की विजयपताकाएं हैं। अतः कर्पूरमंजरी के यौवन का उत्कट उभार ही मेरी रुचि के प्रति कारण है। इस तरह राजा ने यहाँ दो बातें कहीं हैं—(क) मनुष्य की रुचि और (ख) यौवन का उभार। इनमें मनुष्य की रुचि ही प्रधान है।

(४)**सामान्य व्यक्ति और चक्रवर्ती राजा के प्रेम में अन्तर**—इस सन्दर्भ में राजा का स्पष्ट मत है कि दोनों के प्रेम में तिलमात्र का भी अन्तर नहीं है। यदि दोनों में कुछ भी अन्तर है तो वह है एक की प्रेमिका बाह्य अलंकारों से अलंकृत है और दूसरे की अनलंकृत (३·१५)।

(५) **बाह्य अलङ्कार और रूपादि गुणों की स्थिति**—इसका उत्तर सौन्दर्य-समीक्षा तथा प्रेम के प्रति कारणों का विचार करते समय दिया जा चुका है।

इस तरह यह सिद्ध है कि जवानी में प्रत्यङ्ग में कामदेव रूप प्रजापति सौन्दर्य की सृष्टि करता है जिससे वे आकर्षक लगती हैं, इसमें बाह्य अलंकार गौण हैं। यद्यपि युवावस्था में सभी युवतियों के प्रत्यङ्ग में आकर्षण रहता है परन्तु प्रेम किसी का किसी विशेष के साथ ही होता है; इसमें कारण है—मनुष्य की अपनी रुचि। यदि मनुष्य की अपनी रुचि न हो तो कितनी भी सुन्दर युवती क्यों न हो उससे प्रेम नहीं हो सकता है। अतः राजा और रंक की प्रेमिकाओं के प्रेम में अन्तर नहीं होता है। यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि वासना से प्रेम पृथक् है तथा पत्नी और प्रेमिका दोनों एक नहीं हैं।

सट्टक का स्वरूप, उद्भव और विकास

कवि ने सट्टक के अभिनव-प्रयोग के सन्दर्भ में प्रस्तावना में कहा है—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सो सट्टओ त्ति भण्णइ दूरं जो णाडिआइं अणुहरइ।
किं पुण पवेसअ-विक्कंभकाइं इह केवलं णत्थि ॥१.६॥

उस दृश्य काव्य-विशेष का नाम सट्टक है जो नाटिका नामक दृश्य-काव्य से मिलता-जुलता है। नाटिका से सट्टक में केवल यह अन्तर होता है कि सट्टक में प्रवेशक और विष्कम्भक नामक दो अर्थोपक्षेप नहीं होते हैं। सट्टक की इस परिभाषा को स्पष्ट रूप से जानने के लिए नाटिका का स्वरूप जानना आवश्यक है। नाटिका के स्वरूप के सम्बन्ध में नाट्यशास्त्रियों ने निम्न विशेषताएँ बतलाई हैं—(१) काल्पनिक कथावस्तु, (२) प्रख्यात धीरललित नायक, (३) प्रगल्भा, राजकुलोत्पन्ना, गम्भीरा तथा मानिनी ज्येष्ठा महिषी देवी, (४) मुग्धा, अद्भुत सुन्दरी, दिव्या या राजकलोत्पन्ना प्राप्या नायिका, (५) शृङ्गार रस का प्राधान्य, (६) कैशिकी वृत्ति के चारों अंग, (७) चार अंक, (८) अन्तःपुर के चतुर्दिक कथावस्तु का विस्तार जिससे नायक और नायिका के परस्पर दर्शन आदि होने से उनमें उत्तरोत्तर प्रेम में वृद्धि; (९) महारानी (देवी) के भय के साथ नूतन (प्राप्या) नायिका की ओर प्रवृत्ति, (१०) महारानी की अनुमति से अन्त में नूतन (प्राप्या) नायिका से समागम।

इन्हीं विशेषताओं को ध्यान मे रखते हुए सट्टक को नाटिका के सदृश बतलाया गया है। साहित्यदर्पणकार श्री विश्वनाथ ने सट्टक का स्वरूप बतलाते हुए कहा है—

सट्टकं प्राकृताशेषपाठ्यं स्यादप्रवेशकम्।
न च विष्कम्भकोप्यत्र प्रचुरश्चाद्भुतो रसः॥ २७६॥
अंका जवनिकाख्याः स्युः स्यादन्यन्नाटिका समम्।

यहाँ सट्टक की तीन अन्य विशेषतायें बतलाई हैं (१) सम्पूर्ण दृव्यकाव्य का प्राकृत भाषा में उपनिबन्धन, (२) अद्भुत रस का प्रचुर प्रयोग तथा (३) अंकों का नाम जवनिका होना।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सट्टक के ये सभी लक्षण कर्पूरमंजरी में पाये जाते हैं। वस्तुतः सट्टक का स्वरूप कर्पूरमंजरी को दृष्टि में रखकर ही लिखा गया है क्योंकि इसके पूर्व ऐसी लिखित रचना नहीं थी, केवल नाटिका थी। कवि राजशेखर का यह अभिनव प्रयोग है। कर्पूरमंजरी की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि इसके स्वरूप का निर्धारण इससे पूर्व ही हो चुका था परन्तु आज उपलब्ध सट्टकों में यही प्रथम है। कालान्तर में लिखे गये सट्टकों में कुछ इस प्रकार हैं—(१) रंभामंजरी (नयचंद्र सूरि १७वीं शताब्दी), (२) चन्द्रलेखा (रुद्रदास १७वीं शताब्दी), विलासवती (मार्कण्डेय १७वीं शताब्दी), शृंगारमंजरी (विश्वेश्वर १८वीं शताब्दी), आनन्दसुन्दरी (घनश्याम १८वीं शताब्दी)।

उद्भव और विकास—सट्टक के स्वरूप को और अधिक स्पष्ट जानने के लिए इसके ऐतिहासिक रूप को जानना आवश्यक है। नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरत मुनि ने यद्यपि सट्टक के बारे में कोई उल्लेख नहीं किया है परन्तु नाटिका का संकीर्ण रूपक के रूप में अवश्य उल्लेख किया है। नाटिका के स्वरूप-विवेचन के सन्दर्भ से ज्ञात होता है कि नाटिका के समान अन्य संकीर्ण रूपकों को समझ लेना चाहिए। धनञ्जय ने अपने दशरूपक में तथा धनिक ने दशरूपकवृत्ति में भरत मुनि का अनुकरण करते हुए संकर्ण रूपकों में केवल नाटिका को स्वीकार किया है। आचार्य हेमचन्द्र (१२वीं शताब्दी) ने सर्वप्रथम नाटिका से पृथक् सट्टक का उल्लेख किया है तथा मुख्य रूपक प्रकारों में सट्टक को गिनाया है—**नाटकप्रकरणनाटिकासमवकारेहामृगडिमव्यायोगोत्सृष्टिकाङ्कप्रहसनभाणवीथिसट्टकादि**। रामचंद्र-गुणचंद्र (१३वीं शता०) ने नाटिका के साथ प्रकरणिका को मुख्य रूपक प्रकारों में गिनाया है, सट्टक को नहीं। आचार्य विश्वनाथ (१४वीं शता०) ने साहित्यदर्पण में नाटिका और सट्टक को उपरूपकों की श्रेणी में रक्खा है। शारदातनय (११७५-१२५० ई०) ने भी भावरासक में बीस उपरूपकों की श्रेणी में सट्टक को रक्खा है। उन्होंने सट्टक को नृत्यभेदात्मक, कैशिकी एवं भारती वृत्यात्मक, रौद्र रस से हींन, सन्धियों से रहित, अंक के स्थान पर जवनिका या

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जवनिकान्तर के प्रयोग से युक्त, छादन-स्खलन-भ्रांति-निह्नव से रहित बतलाया है।

इस इतिहास-क्रम को देखने से ज्ञात होता है कि पहले सट्टक का दृश्य-काव्यों में परिगणन नहीं था। कालान्तर में उसे रूपक एवं उपरूपक की कोटि में स्थान दिया गया। संभवतः राजशेखर ने सर्वप्रथम सट्टक को साहित्यिक रूप प्रदान किया है, इनके पूर्व सट्टक थे तो अवश्य परन्तु उनका साहित्यिक रूप स्पष्ट नहीं था। इस बात की पुष्टि कर्पूरमंजरी की भूमिका एवं आगे प्रतिपादित सट्टक शब्द की निष्पत्ति से होती है। श्रीगदित, डोम्ब्री आदि पहले नृत्य के प्रकार थे। सट्टक भी इसी कोटि का रहा होगा। कालान्तर में जिनके साहित्यिक रूप स्पष्ट हो गये उन्हें रूपक या उपरूपक की श्रेणी में सम्मिलित कर लिया गया।

डॉ० ए० एन० उपाध्ये ने द्रविण शब्द 'आट्ट' से सट्टक की उत्पत्ति मानी है। आट्ट का अर्थ है—'नाच' (Dance or Play)। जैसे हल्लीसक आदि का पूर्वरूप लोकनृत्यात्मक था उसी तरह सट्टक का भी पूर्वरूप लोकनृत्यात्मक या हावभावप्रदर्शनात्मक या तमाशा (Folk Dance) रूप था। प्रो० एन० जी० सुरु ने सट् या सट्ट (To show or Display) से सट्टक (सट्—साटक—सट्टक) की उत्पत्ति मानी है। सट्ट में ण्वुल् प्रत्यय जोड़ने पर सट्टक बनता है।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि सट्टक का प्रारम्भिक रूप तमाशा था जिसमें नृत्यादि का प्राधान्य था। कर्पूरमंजरी में अब भी नृत्य का समावेश है। ग्रन्थ की प्रस्तावना में भी 'सट्टअं णच्चिदव्वं (सट्टकं नर्तितव्यं नाटयितव्यं वा)' का प्रयोग किया गया है। इस तरह नृत्ययुक्त नाटकीय प्रदर्शन ही सट्टक का प्रारम्भिक रूप रहा होगा। बाद में नाटिका से सम्बन्ध जुड़ने पर इसका साहित्यिक महत्त्व बढ़ गया होगा। यदि हम सट्टक को नाटिका का ग्राम्य रूप कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। पूर्ण नाट्यविधा न होने से इसमें चरित्र-चित्रण का पूर्णतया विकास नहीं होता है। शृङ्गारिक चेष्टाओं का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खुलकर प्रयोग होता है, स्त्रीपात्रों का प्राधान्य होता है, नायिका के नाम पर सट्टक का नामकरण होता है, अन्त में आश्चर्यजनक दृश्यों की योजना की जाती है, इसी तरह कुछ अन्य विशेषतायें भी पाई जाती हैं। 'भाषा प्राकृत होना चाहिए अथवा नहीं' इसका परवर्ती नाट्यग्रंथों में तो उल्लेख मिलता है परन्तु राजशेखर के द्वारा भाषा के सम्बन्ध में दिये गये वक्तव्यों (१.७,८) से स्पष्ट है कि ऐसा कोई नियम नहीं था। रंभामंजरी सट्टक में प्राकृत-संस्कृत दोनों का प्रयोग है। नाटिका का ग्राम्यरूप होने से सट्टक का लोकभाषा में रचित होना स्वाभाविक है। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि इसके अभिनय में प्रेरक कोई राजा न होकर स्वयं कविपत्नी हैं।

समीक्षाः

शृाङ्गारिक चेष्टाओं के प्राधान्य, नाटकीय संविधान और कथानक की शिथिलता को लेकर प्रायः कर्पूरमञ्जरी की आलोचना की जाती है। जैसे—

(१) चरित्र-चित्रण की दृष्टि से देवी में वासवदत्ता जैसी महानुभावता एवं ईर्ष्याभाव का विकास नहीं है। नायिका के चरित्रविकास का नामोनिशान नहीं है। वह पांच सात वाक्यों से अधिक नहीं बोलती है। वह भैरवानन्द की कठपुतली जैसी है। भैरवानन्द में मंत्री यौगन्धरायण का अस्पष्ट प्रतिविम्ब है। राजा में उदयन जैसा प्रेमी-हृदय नहीं है; वह एक प्रेमी की अपेक्षा कविता-प्रेमी अधिक है। विचक्षणा जब कर्पूरमंजरी की मरणासन्न विरह-दशा का वर्णन करती है तो राजा का हृदय राजा उदयन की तरह व्यग्र नहीं होता है अपितु कविता की प्रशंसा करता है।

(२) कथानक कई स्थानों में अपर्याप्त है। जैसे—स्नानगृह से नायिका के अचानक गायब हो जाने पर भी उसके माता पिता को कोई चिंता नहीं होती है। शादी के समय में भी न तो उनकी उपस्थिति और न स्वीकृति है। नायिका को भी कुछ होश नहीं है और वह एक सपत्नीक राजा को दिल दे देती है। वह अपनी बहिन से विश्वासघात करती है। नायिका के कठोर बन्धन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का हेतु नहीं बतलाया गया है, जबकि देवी ने राजा के साथ उसे एक बार भी नहीं देखा है। इस तरह अनेक स्थानों पर कथानक उखड़ा-उखड़ा सा है जिससे उसमें गप्पप्रधानता लगती है। विश्वसनीयता का अभाव होने से औत्सुक्य भी तिरोहित हो जाता है। अन्तिम फलप्राप्ति प्रभावोत्पादक नहीं है। अनावश्यक विस्तार से कहीं-कहीं रसाभिव्यक्ति व्यवधानपूर्वक होती है। अनावश्यक विस्तृत कवित्व के प्रदर्शन से ऐसा लगता है जैसे कोई काव्य-पाठ या काव्य-प्रतियोगिता हो रही हो।

(३) कथोपकथन में भी कहीं-कहीं असंगति है। जैसे—विदूषक जो कान्तारंजनयोग्य साधारण कविता करता है वह द्वितीय जवनिकान्तर में दोलावर्णन के प्रसङ्ग में विस्तारपूर्वक सुन्दर वर्णन करता है जो विदूषक जैसे व्यक्ति से संभव नहीं है। तृतीय जवनिकान्तर में कुछ प्रतियों में प्रेम की परिभाषा के संदर्भ में 'अंतोनिविट्ठ' (३ १२) आदि श्लोक विदूषक नहीं कह सकता है क्योंकि वह प्रेम के रहस्य से अनभिज्ञ है। द्वितीय जवनिकान्तर में राजा कर्पूरमञ्जरी के अलंकृत रूप के वर्णन में 'कंचणमअवालिआरूवं' कहता है जो अनुचित है क्योंकि जिस युवा कर्पूरमंजरी में राजा की राग-दृष्टि है, उसे बालिका कहना अनुचित है। प्र० ज० में विदूषक और विचक्षणा की लड़ाई में नाटकीय अभिनय का अभाव है। उसमें चातुर्यपूर्ण उक्तियों का ही प्राधान्य है। विदूषक के स्वप्नवर्णन में 'ततस्ततः' का लम्बा प्रदर्शन है। दूसरे जवनिकान्तर के बाद विचक्षणा एकदम अदृश्य हो जाती है जिसका कोई कारण नहीं है। उसके स्थान पर कुरङ्गिका को क्यों लाया गया है, अस्पष्ट है।

(४) शृङ्गार के भद्दे प्रदर्शन से उसकी व्यङ्ग्यता समाप्त हो गई है।

इस तरह कुछ दोष प्रकृत सट्टक के फिल्मीकथानक पर लगाये जाते हैं। इन आलोचनाओं का प्रमुख आधार है—रत्नावली नाटिका। 'A Lily is not to be condemned because it is not a Rose' लिली फूल को इसलिए बेकार नहीं माना जा सकता है कि वह गुलाब नहीं है। कर्पूरमञ्जरी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक सट्टक है, नाटिका नहीं । अतः नाटिका से तुलना करके इसकी समालोचना उचित नहीं है । यह नाटिका का अनुकरण मात्र है । सट्टक का उद्देश्य प्रचलित लोकनृत्यादि के माध्यम से प्रेम का प्रदर्शन करना है । इसमें जनसामान्य का मनोरंजन प्रधान होता है । इस दृष्टि से प्रकृत सट्टक में प्रचुर सामग्री वर्तमान है । जैसे—विचक्षणा-विदूषक की गाली-गलौज, स्वप्न वर्णन, झूला वर्णन, नृत्य, भैरवानन्द का चमत्कार आदि । प्रो० सुरु ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है । उनका कहना है कि १०वीं शताब्दी के सट्टक में लोगों का जादू-टोने आदि में विश्वास था, अतः उस काल की दृष्टि से कथानक पर्याप्त मनोरंजन का जनक हैं । यद्यपि कुछ असंगतियाँ हैं फिर भी हंसी के नाटक में उच्च समालोचना को स्थान नहीं दिया जा सकता है । अभिनव नाट्यविधा की दृष्टि से कर्पूरमञ्जरी का महत्त्व सर्वविदित तो है ही, धार्मिक, ऐतिहासिक, सामाजिक आदि कई दृष्टियों से भी यह महत्त्वपूर्ण है ।

प्रकृति-चित्रण :

कर्पूरमंजरी में मुख्यरूप से अन्तःपुर की प्रणयलीला का चित्रण होने से यद्यपि प्रकृतिवर्णन का उन्मुक्त वातावरण नहीं है फिर भी प्रेम-व्यापार में उद्दीपन विभाव के रूप में उसका पर्याप्त चित्रण हुआ है । प्रकृत सट्टक में वसन्त ऋतु, ग्रीष्म ऋतु, चन्द्रोदय, सूर्यास्त, सन्ध्या तथा उपवन के वृक्षों के विकास का चित्रण हुआ है । महाकवि राजशेखर एक प्रकृतिप्रेमी कवि हैं जिससे इन्होंने अपनी कल्पना शक्ति से इस दृश्य काव्य को कहीं-कहीं प्रकृति-चित्रण काव्य सा वना दिया है । ऋतुओं में वसन्त और ग्रीष्म ऋतु का वर्णन है । जैसे—

वसन्त वर्णन—उद्दीपन विभाव के रूप में सट्टक का प्रारम्भ वसन्त वर्णन से ही होता है । राजा और देवी वसन्त वर्णन द्वारा ही एक दूसरे को वधाई देते हैं । वैतालिकद्वय, विचक्षणा, विदूषक सभी वसन्त वर्णन में कुछ न कुछ अवश्य कहते हैं । विचक्षणा वसन्त के आरम्भिक दिनों में ही मलयपवन की प्रौढ़ता का हेतु वतलाते हुए कहती है कि विरहिणियों के निःश्वासों के मलय-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पवन में मिल जाने से दरिद्रता को प्राप्त भी मलयपवन में जवानी आ गई है—

> जे लंकागिरिमेहलाहिं खलिदा संभोअखिण्णोरई-
> फारुप्फुल्लफणावलीकवलणे पत्ता दरिद्दत्तणं।
> ते एण्हि मलआणिला विरहिणीणीसाससंपक्किणो
> जाआ झत्ति सिसुत्तणे वि वहला तारुण्णपुण्णा इव ॥१.२०॥

वसन्त-मलयपवन का किन-किन देश की रमणियों पर क्या प्रभाव पड़ता है इसका सजीव चित्रण प्रथम वैतालिक की गाथा 'पंडीणं० (१.१५)' में दर्शनीय है। इसी प्रकार द्वितीय वैतालिक कहता है कि महाराष्ट्र की कुङ्कुम से अनुरक्त रमणियों के कपोलों के सदृश चम्पा का फूल खिल गया है। थोड़े मथे गए दूध की तरह सुन्दर मल्लिका लता विकसित हो गई है। मूल भाग में काला और अग्रभाग में भौरे के रसपानार्थ बैठने से पलाश का फूल ऐसा मालूम पड़ रहा है मानो दोनों भागों से भौरों द्वारा रसपान किया जा रहा है। जैसे—जादं कुंकुमपंकलीढ० (१.१६)।

कवि वसन्त-शोभा से इतना आकृष्ट है कि राजा के मुख से देवी को आँखें फाड़-फाड़कर देखने के लिए उत्साहित करता है—ता विब्भमपअट्टावअं तरट्टीणं, णट्टावअं मलअमारुदंदोलिदलदाणच्चणीणं, चारुप्पवंचिदपंचसं कलकंठिकंठेसु, कंदलिदकंदप्पकोअंडदंडखंडिदकंडचंडिमं, सिणिद्धबंधवं वसुन्धरापुरंधीए, पसारिदप्पसदिप्पमाणेहिं अच्छीहिं महूसवं जधिच्छं पेक्खदु देवी' (पृ० ३२-३३)।

चैत्रमास के वसन्त को सर्वाधिक कामोद्दीपक बतलाते हुए कवि ने देवी के मुख से स्पष्टरूप से सुरत का आमन्त्रण कहलवाया है—माणं मुंचध० (१.१८)। वसन्त में दिन बड़े क्यों होने लगे हैं? इस विषय में देवी की ही निम्न युक्ति कितनी सटीक मालूम पड़ती है—

> गाअंतगोवअवहूपअपेंखिआसु
> दोलासु विब्भमवईसु णिविट्ठदिट्ठी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जं जाइ खंजिअतुरंगरहो दिणेसो
तेण व्व होंति दिअहा अइदीहदीहा ॥१.२१॥

इस तरह वसन्त वर्णन प्रकृत सट्टक में बड़ा ही सजीव, दूरगामी और उद्दीपन विभाव के रूप में चित्रित हुआ है।

ग्रीष्म वर्णन—ग्रीष्म ऋतु स्वयं दाहजनक तो होती ही है, यदि प्रियजन का वियोग हो तो वह कामियों को और भी अधिक संतापदायिनी हो जाती है। इस सन्दर्भ में राजा का कथन है—

इह कुसुमसरेक्कगोअराणं इदमुहअं पि हु दूसहं ति मण्णे।
जरढरइकरालिओ अ कालो सह अ जणेण पियेण विप्पलंभो ॥४.२॥

यही ग्रीष्म ऋतु जब प्रियजन से संयुक्त होती है तो कामीजनों के लिए सहजशीतल हो जाती है (४.६) तथा ग्रीष्म के बड़े भी दिन सहज ही गुजर जाते हैं। प्रियजन का वियोग होने पर दिन मासोपम हो जाते हैं—पच्चंगं णवरूव ...... मासोवमा वासरो (४.९)। प्रचण्डताप से युक्त दिनों के लम्बे और रात्रियों के अल्पस्थायी होने से कामिजन बहुत दुःखी होते हैं। अगर उनका वश चले तो इस नियम के बनाने वाले को छुरा की धार से ही काट दें। राजा कहता है—'णिसा तलिणवित्थरा......खुरसिहाहिं खंडिज्जइ (४.३)। परन्तु विदूषक जैसे सामान्य व्यक्तियों के लिए गर्मी के दिन सन्तापदायक नहीं होते हैं—'अम्हारिसो उण जणो ण कामस्स बाहणिज्जो ण तावस्स सोसणिज्जो।' (पृ० २१५)। ऐसे व्यक्तियों के लिए ये दिन कल्याण-कारी भी होते हैं क्योंकि इन दिनों आम, पान, सुपाड़ी, चन्दन आदि की बहार रहती है—पाण्डुच्छवि ......भद्दं णिदाहदिअहाण वअस्स होउ (४.५)।

राजा की दृष्टि में इन गर्मी के दिनों में त्राण तभी है जब पास में प्रिय-जन हो, सुरा हो तथा स्नान विलेपन आदि हों (४.४,५)। इस तरह गर्मी की सन्तापदायकता तथा सुख-प्रदायकता का वर्णन व्यक्तिभेद तथा स्थितिभेद से किया गया है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चन्द्रोदय—समस्त संस्कृत साहित्य में प्रायः चन्द्रोदय को कामोद्दीपक के रूप में चित्रित किया गया है। मानिनियों का मान चन्द्रोदय होने पर चक्की में पीसे जाने की तरह चूर्ण-विचूर्ण हो जाता है, जिससे मदन का गर्व बढ़ जाता है। कुरङ्गिका कहती है—

> **ससहररईअमरट्टो माणिणिमाणघरट्टो।**
> **णवचंपअकोअंडो मअणो जअइ पअंडो ॥३.३०॥**

यह चन्द्रमा दिशारूपी वधुओं का आभूषण है, आकाशरूपी सरोवर का हंस है और सुरतक्रीडारूपी लता का मूल है (३.२९)। चन्द्रमा के मण्डल में विद्यमान कलंक वस्तुतः कलंक नहीं है वह तो हाथी दांत के बने पिंजड़े में स्थित केलि-कोकिल है (३.३१)। जब आकाश में चन्द्रकिरणें पुंजीभूत हो जाती हैं तो वे बिना कुंकुम और चन्दन के सभी दिशारूपी वधुओं का मण्डन हो जाती हैं, कंगन और कुंडल के बिना ही भुवनमण्डली का आभूषण बन जाती हैं, सोसण और मोहण के अभाव में भी कामदेव का आयुध लगती हैं (३.२६)। इसी प्रकार जब चारों ओर घनीभूत अन्धकार छाया हुआ हो और पूर्वदिशा से चन्द्रमा का उदय हो रहा हो तो मुचकुन्द फूल के समान सुन्दर किरणों को बरसाता हुआ चन्द्रमा कैसे सम्पूर्ण बिम्बत्व को प्रात हो जाता है? वैतालिक के शब्दों में—**भूगोले तिमिराणुबंधमलिणे……संपुण्ण-बिंबत्तणं ॥३.२५॥**

चन्दन-सदृश संसार को आह्लादित करने वाली ये चन्द्रमा की किरणें जब जलधारा का अनुकरण करती हुई नभस्तल से पृथ्वीतल पर उतरती हैं तो ऐसा लगता है मानों दिशारूपी सुन्दरियों के मुख को कपूर से लीप दिया गया हो। कन्दर्परूपी जीर्णकन्द मानो अंकुरित होकर त्रिभुवनव्यापी हो गया हो। जैसे—

> **देंता कप्पूरपूरच्छुरणमिव दिसासुंदरीणं मुहेसुं**
> **लण्हं जोण्हं किरंता भुवणजणमणाणंदणं चंदणं व।**

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जुण्णं कंदप्पकंदं तिहुअणकलणाकंदलिल्लं कुणंता
जाआ एणंकपादा सरअजलहरुम्मुक्कधाराणुकारा ॥३.२८॥

इस तरह चन्द्रमा की किरणों को त्रिभुवन के कामीजनों का उद्दीपक बतलाया गया है।

सूर्यास्त एवं संध्या वर्णन—सूर्यास्त का स्वाभाविक चित्रण निम्न वैतालिक की उक्ति में सहोक्तिमूलक अलंकार के साथ दर्शनीय है—

लोआणं लोअणेंहिं सह कमलवणं अद्धणिद्दं कुणंतो
मुंचंतो तिव्वभावं सह अ सरहसं माणिणीमाणसेंहिं।
मंजिट्ठारत्तच्छविकिरणचओ चक्कवाएक्कमित्तो
जाओ अत्थाचलत्थो उवह दिणमणी पिक्कणारिंगपिंगो ॥२.५०॥

मञ्जिष्ठ राग से रंजित सूत्रों की तरह कान्तीवाली किरणों को धारण करने वाला, चक्रवाक पक्षियों का एकमात्र मित्र, पकी हुई नारंगी के सदृश ईषत् लाल और पीला सूर्य लोगों की आँखों के साथ-साथ कमलवन का निमीलन करता हुआ तथा कामिनियों के मान के साथ-साथ अपने तेज को घटाता हुआ अस्ताचल की ओर चला गया है।

इसी भाव को कवि ने प्रकृति का मानवीयकरण करते हुए वैतालिक के मुख से कितने सुन्दर ढङ्ग से प्रस्तुत किया है—

एदं वासरजीवपिण्डसरिसं चंडसुणो मंडलं
को जाणइ कहिं पि संपइ गअं पत्तंमि कालंतरे।
जाआ किं च इअं वि दीहविरहं सोऊण णाहे गए
मुच्छामुद्दिअलोअण व्व णलिणी मीलंतपंकेरुहा ॥ १.३५ ॥

दिन के लिए प्राणों के सदृश सूर्यमण्डल के कहीं चले जाने पर यह नलिनी विरहिणी हो गई है और शोक से मानो आँखों को बन्द करके मूर्च्छित हो गई है। यहाँ उत्प्रेक्षा, समासोक्ति और समाधि अलंकारों का सुन्दर प्रयोग है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उपवन-शोभा—मूलतः उपवन-शोभा का वर्णन इस सट्टक में नहीं है परन्तु कर्पूरमंजरी द्वारा किये गये कुरबक, तिलक और अशोक वृक्षों के दोहद-दान का वर्णन मिलता है (२.४४-४७)। इसके अतिरिक्त तमालवृक्षनिकुंज, मरकतकुंज आदि का उल्लेख मात्र मिलता है (ज० २ पृ० १२३, १४३, १४५, १४७)। बालरामायण में वन-प्रदेश (१.६३) का वर्णन मिलता है।

इस तरह कवि ने प्रकृतिवर्णन को प्रणयलीला के उद्दीपन विभाव के रूप में चित्रित किया है। कवि का प्रकृतिप्रेम इतना अधिक है कि कई पात्रों से अनावश्यक प्रकृति वर्णन करवाता है। प्रकृति वर्णन कल्पनाप्रसूत एवं सूक्ष्मनिरीक्षण से पूर्ण है। उसमें रागात्मकता, रमणीयता एवं चित्रात्मकता है। सजीव यथार्थ दूरगामी भी है।

काव्य-सौन्दर्य—कवि का काव्य प्रेम इतना अधिक है कि वह अपनी विरहिणी प्रियतमा का प्रेमपत्र पाकर भी उसके प्रति उद्विग्न न होकर कविता की प्रशंसा करता है। पदे-पदे काव्य रचना में अधिक रुझान है। काव्य में मनोरम वर्णयोजना और शब्दों के उत्कृष्ट चयन के साथ गेयरूपता, पद-लालित्य एवं अनुप्रास की छटा दर्शनीय है। जैसे झूला झूलती हुई कर्पूरमंजरी के वर्णन प्रसङ्ग में (२.३२) **रणंतमणिणेउरं, झणझणंत, कलक्कणिर्दाकिकणी, विलोलवलआवली, मंजुसिजा, मणमोहणं** आदि। इसी तरह प्रथम जवनिकान्तर (१.२१) में गाती हुई गोपवधुओं के झूले पर सूर्य की दृष्टि लग जाने से उसकी गति मन्थर हो गई है और दिन बड़े हो गए हैं। यहाँ 'गाअंतगोवअ' आदि पदों में ताल और लय के अनुरूप शब्दचित्र मालूम पड़ता है। इस तरह काव्य संगीतमय बन गया है। वर्णन चाहे प्रकृति चित्रण का हो या दोला लीला (२.३०-४०) का या **नायिका-सौन्दर्य चित्रण** (१.२३-२६, २.१,६, १२-२२, ४१) का या वृक्षों का **दोहद-वर्णन** (२.४३-४७) या **चर्चरी नृत्य** (४.९-१७) सर्वत्र कवि के काव्य में मनोरमता है।

भाषा :

राजशेखर ने सम्पूर्ण नाट्य को संस्कृत में न लिखकर सर्वप्रथम प्राकृत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में निवद्धकर अभिनव-प्रयोग किया है। इस संदर्भ में उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि संस्कृत-प्रबन्ध कठोर (क्लिष्ट) होते हैं और प्राकृत-प्रबन्ध सकुमार (सरल)। इन दोनों में उतना ही अन्तर है जितना कि पुरुष और महिला में (१.८)। इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी कहा है कि भाषा चाहे जो भी हो काव्य में उक्ति-वैचित्र्य का होना आवश्यक है और वह उक्ति-वैचित्र्य संस्कृत के समान प्राकृत में भी पाया जाता है (१.७)।

अव देखना यह है कि कर्पूरमंजरी में महाराष्ट्री आदि किस प्राकृत का प्रयोग किया गया है ? यह तो निश्चित है कि कर्पूरमंजरी में प्राकृत का पूर्ण विकसित रूप मिलता है तथा सामान्यरूप से इसे शौरसेनी प्राकृत में लिखा गया नाट्य माना जाता है। इतना विशेष है कि पद्य भाग में महाराष्ट्री प्राकृत का प्रयोग अधिक हुआ है। कुछ प्रतियों में इसे शौरसेनी का रूप दिया गया है तो कुछ में महाराष्ट्री का। पद्य में महाराष्ट्री का और गद्य में शौरसेनी का प्रयोग दिखाकर आपने स्वयं को 'सर्वभाषाविद्' कहलाने का उपक्रम किया है। शौरसेनी प्राकृत की प्रकति संस्कृत मानी जाती है। तथा अपनी कुछ विशेषताओं के साथ महाराष्ट्री प्राकृत पर ही आश्रित है। शौरसेनी और महाराष्ट्री के उन संस्कृतमूलक शब्दों का भी प्रयोग बहुतायत से किया गया है जिनके रूप दोनों में समान पाये जाते हैं। इनके सट्टक में देशज शब्दों का भी प्रयोग बहुतायत से हुआ है। संस्कृत के तत्सम शब्द प्रचुरता से मिलते हैं। प्रयुक्त सभी शब्द व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध हैं। भाषा को भाव के अनुरूप नवीनता देने की उनमें अद्भुत क्षमता थी। सुभाषित एवं सूक्तियों के प्रयोग से भाषा में प्राञ्जलता है। इसके साथ ही भाषा सरस एवं सरल है। पदलालित्य पदे-पदे विद्यमान है। वैदर्भी, मागधी एवं पाञ्चाली तीनों रीतियों का सम्मिश्रण है।

शौरसेनी प्राकृत की कुछ विशेषताएँ जो इसे महाराष्ट्री प्राकृत से पृथक् करती हैं। जैसे—

(१) त>द (लता>लदा, मारुतिना>मारुदिणा)।

(२) थ>ध विकल्प से 'ह' (तथा>तधा, तहा। कथं>कधं, कहं)।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(३) ह>ध विकल्प से (इह>इध, इह। भवथ>होध, होह)।

(४) भू>भ विकल्प से (भवति>भोदि, होदि, भवदि, हवदि)।

(५) र्य>य्य विकल्प से (कार्यम्>कय्यं, कज्जं। आर्यपुत्र>अय्यउत्तो, अज्जउत्तो)।

(६) स्त्री>इत्थी।

(७) ही ही, णं (ननु), हञ्जे (चेटी के आह्वान में)।

(८) क्रियारूपों में 'ति' को दि, दे (गच्छति = गच्छदि, गच्छदे)।

कर्पूरमंजरी में उपलब्ध निम्न उदाहरणों से उसकी भाषा के विषय में आसानी से निर्णय किया जा सकता है—

(क) तद्भव (शौरसेनी और महाराष्ट्री में समान) शब्द—

शौरसेनी तथा महाराष्ट्री—मुणाल (मृणाल), वेण्ट (वृन्त), मअलांछण (मृगलांछन), जुण्ण (जीर्ण), मुत्ताहल (मुक्ताफल), सिविणअ (स्वप्नक), महूसव (महोत्सव) आदि।

(ख) तद्भव (शौरसेनी और महाराष्ट्री के पृथक्-पृथक्) शब्द—

संस्कृत	शौरसेनी	महाराष्ट्री
अथ	अध	अह
इह	इध	इह
इति	इदि	इह
तथा	तधा	तहा
कथम्	कधं	कहं
ततः	तदो	तओ
भवति-तु	भोदि, भोदु	होइ, होउ
भविष्यति	भविस्सदि	होहिइ
वर्तते	वट्टदि	वट्टइ
तिष्ठति	चिट्ठदि	ठाइ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कथ्यताम्	कधिअदु	कहिज्जउ
दृश्यते	दीसदि	दीसइ
कृतम्	किदं	कअं
भूषिता	भूसिदा	विहूसिआ
प्राकृत	पाउद	पाउअ
संस्कृत	सक्कद	सक्कअ
रति	रदि	रइ
रीति	रीदि	रीइ
दिवस	दिवस	दिअह
लभते	लहदि	लहइ
क्रियताम्	करिअदु	किज्जउ

(ग) देशज शब्द—वच्छोमी, छइल्लं, ढिल्ला, ठक्कुर, भुल्ला, टेंटा-कराले, भमरटेंटा, टप्परकण्णा, छोल्लइ, हलबोली, तसर, रिंछोली, कंदोट्ठ, बक्कर, सिप्पी, कडिल्ल, चंगत्तण, ओलग्गाविअ, हक्कारइ, बोल्लइ, खिडिक्किआ णिप्पट्ट, सिहिण, तरट्टी, सहिंजण, पालित्तिआ, पाडिसिद्धी, वरिल्ल, पक्खाउज्ज, कंडारिऊण आदि।

(घ) तत्सम शब्द—धारा, पंक, दोला, देह, तरु, उत्तंस, उमा, एण, कंकण, कज्जल, कण्ठ, कंद, किरण, कुंकुम, कुण्डल, गण्ड, गंध, चण्ड, दंत, देवी, पंजर, भूगोल, भूमि, माला, मसि, मणि, वसुन्धरा, विवाह, सलिल, हर, हरि, सुर, सुरंग, हुंकार, हार, बाण, बिम्ब, पंचम, कलंक, तुला, तोरण, महिला, कर आदि।

इस तरह कर्पूरमंजरी में प्रयुक्त भाषा में शौरसेनी प्राकृत, महाराष्ट्री प्राकृत तथा देशी शब्दों के प्रचुर प्रयोग मिलते हैं। सर्वभाषा चतुर राजशेखर ने सम्भवतः इसीलिए इस सट्टक को किसी एक प्राकृत में नहीं लिखा है। शौरसेनी के विशेष प्रयोग मिलने से कुछ विद्वान् इसे शौरसेनी प्राकृत में लिखित मानते हैं। वस्तुतः इसमें मिश्रण है शौरसेनी और महाराष्ट्री का।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विभिन्न संस्करणों में अनेक पाठ-भेद मिलते हैं जो सम्भवतः इसे शौरसेनी या महाराष्ट्री रूप देने के प्रयत्न है। जैसे प्रथम पद्य में ही भोदु (शोरसेनी), और होउ (महाराष्ट्री)।

राजशेखर :

राजशेखर में वाल्मीकि, कालिदास आदि की तरह काव्य-प्रतिभा और और भरत, भामह आदि की तरह शास्त्रीय-प्रतिभा का मञ्जुल सामञ्जस्य होने से वे एक कवि और समीक्षक दोनों हैं। संस्कृत साहित्य में उभयमुखी प्रतिभासम्पन्न साहित्यकारों में राजशेखर, हेमचन्द्र, पण्डितराज जगन्नाथ आदि के नाम प्रसिद्ध हैं। राजशेखर ने प्रारम्भिक रचनाओं से अपना कवि-जीवन प्रारम्भ किया और धीरे-धीरे आचार्यत्व के पद को प्राप्त किया, पश्चात् तीनों लोकों में ख्याति अर्जित की थी—

बालकई कइराओ णिब्भअराअस्स तह उवज्झाओ।
इअ जस्स पाएँहि परंपराइ माहप्पमारूढं॥
सो अस्स कई सिरिराअसेहरो तिहुअणं पि धवलेंति।
हरिणंकपाडिसिद्धीअ णिक्कलंका गुणा जस्स ॥क० १.६-१०॥

'बालभारतम्' में कवि ने लिखा है—

आपन्नार्तिहरः पराक्रमधनः सौजन्यवारांनिधि-
स्त्यागी सत्यसुधाप्रवाहशशभृत्कान्तः कवीनां मतः।
वर्ण्यं वा गुणरत्नरोहणगिरेः किं तस्य साक्षादसौ
देवो यस्य महेन्द्रपालनृपतिः शिष्यो रघुग्रामणीः ॥१.११॥

वहीं राजशेखर ने अपने आपको भवभूति का अवतार भी बतलाया है—

बभूव वाल्मीकभव पुरा कविस्ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम्।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया स वर्तते संम्प्रति राजशेखरः ॥१.१२॥

अन्यत्र कहा है कि यदि कानों का रसायन पान करने का, सज्जनों से सम्मत वाणी की रचना करने का, व्युत्पत्ति की चरम सीमा प्राप्त करने का,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रसस्रोत की गहराई जानने का, जीवित वृक्ष का सुस्वादु फल खाने का यदि कौतुक है तो हे भाई ! राजशेखर कवि की सुधास्यन्दिनी सूक्तियों को सुनो—

पातुं श्रोतरसायनं रचयितुं वाचः सतां सम्मता
व्युत्पत्तिं परमामवाप्तुमवधिं लब्धुं रसस्रोतसः
भोक्तुं स्वादुफलं च जीविततरोर्यद्यस्ति ते कौतुकं
तद् भ्रातः शृणु राजशेखरकवेः सूक्तीः सुधास्यन्दिनीः ।।

महान् साहित्यकार, भूगोलज्ञ और भारतीय संस्कृति के व्याख्याता राजशेखर के काल और जन्मस्थान को लेकर विद्वानों में मतैक्य नहीं है । यद्यपि इन्होंने अपने बारे में बहुत कुछ कहा है परन्तु काल और जन्मस्थान के विषय में निश्चित तथ्य नहीं दिए हैं । उपलब्ध सामग्रियों के आधार पर इनके जीवनकाल आदि की रूपरेखा निम्न प्रकार है[1]—

---

१. राजशेखर नाम के ५ अन्य व्यक्ति भी संस्कृत साहित्य में मिलते हैं—

(१) राजशेखर सूरि नामक जैनाचार्य जिन्होंने प्रबन्धकोष की रचना की है । मैक्समूलर ने यायावरीय राजशेखर से इन्हें भ्रमवशात् अभिन्न माना है । इनका समय १३४८ ई० है । (२) गोदावरी के किनारे पेरूर में कोल्लूरिवंशज राजशेखर । इनका दूसरा नाम सोमशेखर था । इनकी ३ रचनायें हैं । साहित्यकल्पद्रुम, शिवशतक और अलङ्कारमकरन्द । समय १८४०ई० है । (३) केरल प्रदेश के राजा राजशेखर (सन् ३२२) । इन्होंने 'मुकुन्दमाला' ग्रन्थ रचा । कुञ्जर कवि ने 'राजशेखरचरित' लिखकर इन्हें 'कुलशेखर' और 'रसिकशेखर' नाम से सम्बोधित किया है । (४) केरल के दूसरे राजा राजशेखर जो माधवाचार्य विरचित 'शंकरदिग्विजय' में उल्लिखित हैं । (५) दक्षिण में जंगेजशेरि के पास तलइन्नगांव में ७५० ई० से ८५० ई० के मध्य; जनश्रुति से प्राप्त कोई राजशेखर राजा ।

हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिट्रेचर—एन० कृष्णमाचारी, पृ० ४३२, ५०८, ६२५, ६२६.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काल

राजशेखर को ७ वीं शताब्दी से लेकर १४ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के मध्य मानने वाले विभिन्न विद्वानों के मत निम्न प्रकार हैं—

(१) ७ वीं शताब्दी—श्री ए० बोरो[1]।

(२) ८ वीं शताब्दी—श्री पीटर्सन एवं पं० दुर्गाप्रसाद[2]।

(३) ८ वीं शताब्दी उत्तरार्ध—श्री वी० एस० आप्टे[3]।

(४) ९-१० वीं शताब्दी—डा० स्टेनकोनो, लायमैन, सी० डी० दयाल, आर० ए० शास्त्री, कीलहार्न, एन० जी० सुरु, पी० वी० काणे, मिराशी।

---

१. भवभूति एण्ड हिज प्लेस इन संस्कृत लिट्रेचर, पृ० १७ में 'बभूव वल्मीकभवः कविः पुरा०' (बालरामायण १.१६; बालभारत १.१२) के आधार पर इन्हें भवभूति की मृत्यु के कुछ समय बाद माना है।

२. इन्ट्रोडक्शन टु वल्लभदेवाज सुभाषितावली, पृ० १०१ में पीटर्सन और पं० दुर्गाप्रसाद जी क्षीरस्वामी द्वारा लिखित अमरकोष टीका जिसमें प्रसङ्गतः राजशेखर की विद्धशालभञ्जिका के चार पद्य (१.३, ११, १७, ३.१७) उद्धृत हैं, के आधार पर क्षीरस्वामी के समकालीन मानते हैं। क्षीरस्वामी काश्मीर के राजा जयापीड़ (७५० ई०) के गुरु थे। वस्तुतः इन क्षीरस्वामी ने अमरकोष पर टीका नहीं लिखी थी। अतः यह मत भ्रान्त है।

३. राजशेखर हिज लाइफ एण्ड राइटिंग्स, पृ० १४ में भवभूति के मालती-माधव के 'ये नाम केचिदिह' (१.४४) के आधार पर मानते हैं कि भवभूति ने अपने जीवन काल में प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त की थी। उन्हें प्रतिष्ठा प्राप्त करने में १०० वर्ष अवश्य लगा होगा तभी राजशेखर ने अपने लिए उनके साथ जोड़ा है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(५) ११-१२ वीं शताब्दी—डा० विल्सन[1]।

(६) १४ वीं शताब्दी—डा० मैक्समूलर[2]।

इस तरह ७०० वर्षों के मध्य राजशेखर का काल मानने वाले विभिन्न विद्वानों के मतों की अन्तःसाक्ष्य और बहिःसाक्ष्य के आधार पर समीक्षा करने पर निम्न तथ्य प्रस्तुत होते हैं—

(१) धनपाल[3] (१० वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध) से लेकर सोमदेव[4] सोड्ढल, अभिनवगुप्त, क्षेमेन्द्र, कुन्तक, मम्मट, वाग्भट, हेमचन्द्र, अरिसिंह, अमरचन्द्र, केशवमिश्र, विश्वनाथ आदि ने किसी न किसी रूप में राजशेखर को उद्धृत किया है।

इससे स्पष्ट है कि राजशेखर का समय धनपाल से परवर्ती नहीं होना

---

१. हिन्दू थियेटर, जिल्द २, पृ० ३६२ में विल्सन ने कर्पूरमञ्जरी के 'चाहुआण कुल०' (1.11) के आधार पर चौहानवंश (राजपूत वंश) के राजा का मन्त्री माना है। पत्नी के आधार पर मन्त्री मानना ठीक नहीं है क्योंकि उन्होंने स्पष्ट शब्दों में अपने को महेन्द्रपाल का गुरु माना है। दूसरी बात यह है कि ये महामन्त्री के पुत्र थे, स्वयं मन्त्री नहीं। बालरामायण—'सूक्तमिदं तेनैव हि महामन्त्रिपुत्रेण' (१.८)। बालभारत (१.६) 'उक्तं हि तेनैव महासुमन्त्रिपुत्रेण'।

२. इण्डिया : ह्वाट कैन इट टीच अस ? पृ० ३२८ में राजशेखर को प्रबन्धकोषकार जैन राजशेखर सूरि से अभिन्न मानकर १३४७ ई० माना है। यह मत भ्रान्त है।

३. धनञ्जय (ई० ९७४-९९४) ने दशरूपक में वीथी के प्रपञ्च नामक अंग के उदाहरण में कर्पूरमञ्जरी के 'रंडा चंडा (1.23) पद्य को उद्धृत किया है तथा अयोग-शृङ्गार की १० अवस्थाओं में से आनन्द अवस्था के उदाहरण में विद्धशालभञ्जिका का 'सुधावद्ध०' पद्य उद्धृत किया है (दश० ४.५४)।

४. सोमदेव ने पूर्ववर्ती कवियों की सूची में लिखा है—'यथा पूर्वभारविभव-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चाहिए। राजशेखर ने भी अपने ग्रन्थों में वाल्मीकि से लेकर कवि उद्भट, आनन्दवर्धन तथा रत्नाकर तक का उल्लेख किया है। रत्नाकर, आनन्दवर्धन के समकालीन (ई० ८५५-८८३) थे।

अतः साहित्यिक अन्तः साक्ष्य के आधार पर राजशेखर का समय ८८३ ई० से ९७५ के मध्य होना चाहिए।

(२) राजशेखर ने अपने ग्रन्थों में स्वयं को अपने आश्रयदाता निर्भयराज (गुर्जर प्रतिहार वंशी) महेन्द्रपाल का गुरु कई बार बतलाया है।[1] झांसी जिले के सियदोनी ग्राम के अन्तिम अभिलेख के अनुसार महेन्द्रपाल का शासनकाल ९०३ ई० से ९०७ ई० था[2]। काठियावाड़ में स्थित जूना के अभिलेख में भी इस राजा की प्रशस्ति है। यह प्रशस्ति ८९३ ई० की है[3]। किञ्च, महेन्द्रपाल के पिता मिहिरभोज की मृत्यु ८८५ ई० में हो चुकी थी। सम्भवतः इसी समय महेन्द्रपाल (ई०८८५) राज्यासीन हुए होंगे और राजशेखर ने साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश किया होगा।

(३) 'बालभारत' की प्रस्तावना में राजशेखर ने महेन्द्रपाल के पुत्र

भूति-भर्तृहरि-भर्तृमेण्ठ-गुणाढ्य-व्यास-भासबाण-कालिदास-मयूर-नारायण-कुमार-माघ-राजशेखरादिमहाकविकाव्येषु।' यशस्तिलकचम्पू, ४.२.११३.

१. 'बालकई कइराओ णिब्भअराअस्स तह उवज्झाओ' क० म० १.९; 'रघुकुलतिलको महेन्द्रपालः। सकलकलानिलयः स यस्य शिष्यः'-विद्धशालभञ्जिका' १.६; 'देवो यस्य महेन्द्रपालनृपतिः शिष्यो रघुग्रामणीः, बालभारत १.११ तथा बालरामायण १.१८.

२. एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द १ पृ० १७३.

३. वही, जिल्द ९, पृ० ६ पादटिप्पणी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महीपाल के शौर्य का वर्णन किया है।[1] महीपाल के शासनकाल सम्बन्धी दो अभिलेख मिलते हैं—हड्ल ग्राम के भिलेख में ९१४ ई० तथा प्रतापगढ़ के अभिलेख में ९४८ ई० उत्कीर्ण है।[2]

(४) राजशेखर की 'विद्धशालभञ्जिका' त्रिपुरी नरेश युधराजदेव प्रथम के प्रीत्यर्थं लिखी गई थी। युवराजदेव का समय विलहरी ग्राम में प्राप्त शिलालेखानुसार ९१० ई० से ९४८ ई० है।[3]

इस प्रकार ऐतिहासिक तथा साहित्यिक अन्तः तथा बाह्य साक्ष्यों से स्पष्ट है कि राजशेखर का समय ८८५ ई० से ९७५ ई० के मध्य रहा होगा। डा० स्टीनकोनो आदि अधिकांश विद्वान् भी करीब-करीब इसी समय को स्वीकार करते हैं।

जन्मस्थान :

राजशेखर का जन्मस्थान भी अभी विवादास्पद है। इतना तो निश्चित है कि राजशेखर गुर्जर प्रतिहार महेन्द्रपाल और महीपाल के शासन में कान्यकुब्ज ('महोदय' नामान्तर) में रहे तथा कुछ समय तक कलचुरी नरेश युवराजदेव की राजधानी त्रिपुरी में रहे। राजशेखर के पूर्वज महाराष्ट्र के रहने वाले थे जैसाकि उन्होंने स्वयं बालरामायण (१.१३-१४) में कहा है—'तदामुष्यायनस्य महाराष्ट्रचूडामणेरकालजलदस्य चतुर्थोदौर्दुकिः शीलवतो सूनुरुपाध्यायश्रीराजशेखर-इत्यपर्याप्तं बहुमानेन' इससे इतना स्पष्ट है कि इनके

---

१. नमितमुरलमौलिः पाकलो मेकलानां
रणकलितकलिङ्गः केलितट्केरलेन्दोः।
अजनि जितकुलूतः कुन्तलानां कुठारो
हठहृतरमठश्रीः श्रीमहीपालदेवः ॥ बालभारतम् १.७ ॥

२. इंडियन एण्टीक्वेरी, जिल्द १२, पृ० १९३ तथा जिल्द १४ पृ० १२२ पादटिप्पणी।

३. एपिग्राफिका इण्डिका जिल्द १, पृ० २५२, पादटिप्पणी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रपितामह महाराष्ट्र के प्रतिष्ठित विद्वान् 'अकालजलद' थे।[1] सुरानन्द पितामह थे। दुर्दुक पिता थे तथा शीलवती माता थी। इनके पिता किसी राजा के महामन्त्री थे।[2] पत्नी का नाम अवन्तिसुन्दरी था जो 'चौहान' कुल की शिरोमणि थी। इसी की प्रेरणा से कर्पूरमंजरी का अभिनय किया गया था।[3] संभव है, यह अवन्ति जनपद की हो। यह भी संभव है कि अवन्तिसुन्दरी से राजशेखर ने अनुलोम विवाह किया हो क्योंकि राजशेखर के क्षत्रिय होने का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। ये प्रसिद्ध यायावर वंश के थे। यायावर वंश[4] ब्राह्मणों का होता है तथा ये अपने आपको बारम्बार उपाध्याय पद का प्रयोग करते हैं। यायावर वंश कवियों के प्रसव के लिए कल्पतरु के समान था।

जहाँ तक इनके जन्मस्थान का प्रश्न है इस विषय में प्रमुख रूप से दो मत हैं—

(१) मध्यप्रदेश—इस मत के समर्थक हैं—डा० मनमोहन घोष[5] इन्होंने इस सम्बन्ध में दो तर्क दिए हैं—[क] राजशेखर ने काव्यमीमांसा [अध्याय १०] में कहा है कि मध्यदेशीय कविगण सभी भाषाओं में निपुण होते हैं (यो मध्यदेशं निवसति स कविः सर्वभाषानिषण्णाः)। इससे राजशेखर

---

१. सूक्तिमुक्तावली (४.८४) में अकालजलद के विषय में कहा है—'जब सूखे तालाब में मेंढक विलों में मृतप्राय पड़े थे तब अकालजलद ने आकर ऐसी वर्षा की कि वहाँ जंगली हाथियों के झुण्ड गले तक डूबकर जल पी रहे हैं।'

२. 'उक्तं हि तेनैव महासुमन्त्रिपुत्रेण' बालभारत, अंक १ पृ० ३ तथा बालरामायण प्रस्तावना।

३. क० म० १.११.

४. देखें, वैखानस गृह्यसूत्र १.८; बौधायन धर्मसूत्र ३.१.१; याज्ञवल्क्य स्मृति १.१२८.

५. घोष : इन्ट्रोडक्शन टु कर्पूरमंजरी, पृ० ६५-६८.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का 'सर्वभाषाचतुर' होने का सहज अनुमान होता है। [ख] कन्नौज (महोदय; यह मध्यदेश की राजधानी थी) और पाञ्चाल के प्रति पक्षपात होना[1] मातृभूमि के प्रति स्नेह प्रकट करता है। श्रीरामकुमार आचार्य भी यही मत मानते हैं।[2] इस पक्ष में एक और कारण हो सकता है कि दण्डी-प्रोक्त श्रेष्ठ प्राकृत महाराष्ट्री को क्यों नहीं महत्त्व दिया ?

(२) **महाराष्ट्र या दक्षिण**—इस मत के समर्थक हैं— आप्टे[3], मिराशी[4], स्टेनकोनो[5], लायमैन[6], एस० के० दे[7], कृष्णमाचारी[8], पी० वी० काणे[9] आदि विद्वान्। इस मत के समर्थकों के मुख्य तर्क निम्न हैं—

(क) पूर्वज महाराष्ट्र के थे। (ख) विद्धशालभंजिका की टीका में श्री नारायण दीक्षित ने लिखा है—'बालरामायणे स्वस्य महाराष्ट्रवर्णनात् महाराष्ट्रः कविः। सोऽयं देशी-प्रायस्वदेशजान् प्रयुक्तवान्। योऽस्माकं सुबोधो बहुधास्ति सः।' (ग) काव्यमीमांसा में 'तद्धितप्रिया हि दाक्षिणात्याः' इस महाभाष्य के वाक्य का मात्र स्मरण नहीं कराया है अपितु अपनी रचनाओं में तद्धित रूपों का बहुलता से प्रयोग किया है। (घ) आप्टे महोदय ने कहा

---

१. वेषं नमस्यत महोदयसुन्दरीणाम्' काव्यमीमांसा, अध्याय ३. 'पाञ्चाल-मण्डलभुवां सुभगः कवीनां श्रोत्रे मधु क्षरति किञ्च काव्यपाठः।' देखें बालरामायण १०. ८६-९०.

२. कर्पूरमंजरी, टीका रामकुमार, प्रस्तावना पृ० ११.

३. राजशेखर हिज लाइफ एण्ड राईटिंग्स, पृ० २२.

४. एनल्स आफ द भंडारकार ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, पृ० ३६६.

५. कर्पूरमंजरी (हारवर्ड ओरियण्टल सीरीज) पृ० १८०-१८१.

६. वही।

७. दे : हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिट्रेचर, जिल्द १, पृ० ४२५.

८. कृष्णमाचारी : हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिट्रेचर पृ० ६२५.

९. काणे : इन्ट्रोडक्शन टु साहित्यदर्पण, पृ० २०७.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है कि दक्षिण के (रीति-रिवाजों), स्थानों और नदियों (कावेरी, ताम्रपर्णी आदि) से कवि परिचित था। (ङ) क्षेमेन्द्र की औचित्यविचारचर्चा (२७) में एक पद्य राजशेखर का उद्धृत है जो उनके उपलब्ध ग्रन्थों में नहीं मिलता है—

कर्णाटीदसनांकितः सितमहाराष्ट्रीकटाक्षाहतः
प्रोढान्ध्रीस्तनपीडिता प्रणयिनी भ्रूभङ्गवित्रासितः ।
लाटीबाहुभिवेष्टितश्च मलयस्त्रीतर्जनीतर्जितः
सोऽयं सम्प्रति राजशेखरकविर्वाराणसीं वाञ्छति ॥

इससे लगता है कि कवि ने विल्हण की तरह अपना दक्षिण देश छोड़कर उत्तर में कन्नौज का आश्रय लिया हो।

इन सभी प्रमाणों से स्पष्ट है कि राजशेखर का जन्मस्थल दक्षिण रहा होगा परन्तु दक्षिण का कौन सा भूभाग था, कहना कठिन है। डा० श्यामा वर्मा ने अपने 'आचार्य राजशेखर' प्रवन्ध में (पृ० १५) विदर्भ जनपद को जन्मस्थान मानने की युक्तियाँ दी हैं—(१) काव्यमीमांसा में काव्य-पुरुष को विदर्भ देशोत्पन्न माना है, (२) कर्पूरमंजरी सट्टक की नायिका यहीं की थी, (३) भवभूति भी यहीं के थे।

कृतियाँ :

राजशेखर के नाम से आज पाँच कृतियाँ उपलब्ध हैं—(१) बालरामायण (नाटक), (२) बालभारत (नाटक), (३) कर्पूरमंजरी (सट्टक), (४) विद्धशालभजिका (नाटिका) और (५) काव्यमीमांसा (काव्यशास्त्र)। इनके अतिरिक्त आचार्य हेमचन्द्र (१४वीं शताब्दी) ने अपने काव्यानुशासन में इन्हें 'हरविलास' ग्रन्थ का कर्त्ता बतलाया है 'स्वनामांकता यथा राजशेखरस्य हरविलासे।' उन्होंने हरविलास से दो श्लोक भी उद्धृत किए हैं।[1] वृत्तिकार

---

१. आशीर्यथा हरविलासे—
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्मश्रुतीनां मुखमक्षरं
प्रसीदतु सतां स्वान्तेष्वेकं त्रिपुरुषीमयम् ।
दुर्जन-सुजन-स्वरूपं यथा—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उज्ज्वलदत्त (१३ श०) ने उणादिसूत्रवृत्ति (२.२८) में भी 'हरविलास' का उल्लेख किया है परन्तु राजशेखर का नाम नहीं दिया है।

बालरामायण (१.१२) की प्रस्तावना में लिखा है 'विद्धि नः षट् प्रबन्धान्।' इससे ज्ञात होता है कि इसके पूर्व इन्होंने छः प्रबन्ध लिखे थे। परन्तु वे कौन हैं, ? अज्ञात हैं। डा० झाम्बरे ने षट् प्रबन्धों को छः स्वतन्त्र ग्रन्थ माना है।

काव्यमीमांसा में देश-विभाग का विवेचन करने के बाद लिखा है 'यस्तु जिगीषत्यधिकं पश्यतु मद्भुवनकोषमसौ'। इससे ज्ञात होता है कि उनका 'भुवनकोप' भी एक ग्रन्थ था। इसके सम्बन्ध में डा० मिराशी, डा० एस० के० डे० तथा प्रो० रैनो का कथन है कि यह स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं था अपितु कविरहस्य अधिकरण का अन्तिम अध्याय है। डा० झाम्बरे इसे स्वतन्त्र ग्रन्थ मानते हैं।[1]

श्री एन० कृष्णमाचारी ने राजशेखर को 'अष्टपत्रदलकमल' ग्रन्थ का तथा प्रो० रैनो ने 'रत्नमंजरी' नाटिका का भी कर्ता बतलया है।[2]

इस तरह राजशेखर के नाम से कुल मिलाकर १४ रचनाओं का उल्लेख मिलता है परन्तु सर्वमान्य एवं उपलब्ध पाँच रचनाएँ हैं।

जहाँ तक इनकी इन रचनाओं के रचनाक्रम का प्रश्न है विद्वानों में मतभेद है। मुख्यतः इस विषय में दो पक्ष हैं---(१) कर्पूरमंजरी प्रथम रचना है और बालभारत अन्तिम। इस पक्ष को मानने वाले हैं—वी० एस० आप्टे, डा० स्टेनकोनो, प्रो० रैनो और कीथ। (२) बालरामायण प्रथम रचना है और काव्यमीमांसा अन्तिम। इस पक्ष के मानने वाले हैं—श्री सी० डी० दलाल, डा० मिराशी, डा० श्यामा वर्मा।

इतस्ततो भषन् भूरि न पतेत् पिशुनः शुनः।
अवदाततया किं च न भेदो हंसतः सतः॥
काव्यानुशासन, अ० ८ सू० ६, पृ० ४५६, ४५७।

१. आचार्य राजशेखर, डा० श्यामा वर्मा, पृ० २२, २३.
२. यही।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

डा० श्यामा वर्मा का यह कहना है कि राजशेखर ने बालरामायण और बालभारत में अपने पिता का नामोल्लेख किया है; अतएव पिताजी के जीवन-काल में ये लिखे गये थे।[1] यह तर्क शिथिल प्रतीत होता है। कर्पूरमंजरी की प्रस्तावना में उन्होंने अपने को 'बालकवि से कविराज और फिर निर्भयराज का उपाध्याय बतलाया है' जिससे इनकी प्रौढ़ता प्रतीत होती है। अतएव यह बाद की रचना है। काव्यमीमांसा उसके भी बाद की रचना हो सकती है।

बालरामायण, बालभारत तथा कर्पूरमंजरी की रचना कान्यकुब्ज में तथा विद्धशालभंजिका की रचना त्रिपुरी में की थी। काव्यमीमांसा की रचना डा० मिराशी के अनुसार त्रिपुरी में और डा० दशरथ शर्मा के अनुसार कन्नौज में हुई थी।

ग्रन्थ-योजना एवं आभार-प्रदर्शन

कर्पूरमंजरी विभिन्न विश्वविद्यालयों में प्राकृत के पाठ्यक्रम के रूप में स्वीकृत है। यद्यपि इसके कई संस्करण प्रकाशित हैं परन्तु संस्कृत एवं हिन्दी के माध्यम से पढ़ने वाले अध्येताओं के लिए एक ऐसे संस्करण की आवश्यकता थी जिसमें संस्कृत एवं हिन्दी व्याख्या के साथ विभिन्न संस्करणों का समन्वय भी हो। अध्येताओं के सुबोधार्थ प्रस्तुत संस्करण के प्रत्येक पेज को पाँच भागों में विभक्त किया गया है—(१) मूल प्राकृत, (२) संस्कृत छाया, (३) गाथाओं का प्राकृत अन्वय एवं संस्कृत व्याख्या, (४) हिन्दी अनुवाद, (५) टिप्पणी। इसके अतिरिक्त विस्तृत प्रस्तावना एवं दो परिशिष्ट हैं। प्रस्तावना में कवि एवं ग्रन्थ से सम्बन्धित विभिन्न विषयों की समीक्षात्मक विवेचना की गई है। सुबोधार्थ संस्कृत-व्याख्या में प्रायः सन्धियाँ नहीं की गई हैं।

पाठ-निर्धारण की दृष्टि से प्रो० कोनो, प्रो० एन० जी० सुरु, डा० मनमोहन घोष तथा निर्णयसागर के संस्करणों को ध्यान में रक्खा गया है। यद्यपि कर्पूरमंजरी के अनेक पाठ मिलते हैं परन्तु इस संस्करण में वे ही पाठ दिए हैं जिनका अर्थ की दृष्टि से महत्त्व है। शौरसेनी एवं महाराष्ट्री प्राकृत

---

१. आचार्य राजशेखर, डा० श्यामा वर्मा, पृ० २४.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के भेद पर आश्रित ध्वनि-परिवर्तन वाले पाठों को छोड़ दिया गया है। जो इसमें विशेष रुचि रखते हैं वे प्रो० कोनो एवं डॉ० घोष के संस्करणों को देखें। प्रो० कोनो ने ग्यारह हस्तलिखित (तीन दक्षिण भारतीय, पाँच जैन तथा तीन अन्य) ग्रन्थों के आधार पर तथा डा० घोष ने आठ अन्य हस्तलिखित ग्रन्थों के आधार पर अपने संस्करण तैयार किए हैं। डॉ० घोष के अनुसार [w] से संकेतित (जैन ग्रूप) हस्तलेख सबसे प्राचीन एवं प्रामाणिक है (भूमिका पृ० २६, ४८)। यदि पाठकों के विचार होंगे तो अगले संस्करण में हस्तलिखित ग्रन्थों के आधार पर नवीन संस्करण तैयार करूंगा।

विस्तारभय के कारण मुझे कुछ अंशों को संक्षिप्त करना पड़ा है तथा कुछ को रोक देना पड़ा है। प्राकृत भाषा की जानकारी के लिए मेरी पुस्तक 'प्राकृत-दीपिका' द्रष्टव्य है।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखन में मुझे जिन ग्रन्थों एवं विद्वानों का प्रत्यक्ष या परोक्ष सहयोग मिला है, उसके लिए उनका ऋणी हूँ। प्रो० (भू० पू० अध्यक्ष) डॉ० विश्वनाथ भट्टाचार्य, संस्कृत विभाग, बी० एच० यू०, वाराणसी का बहुत आभारी हूँ जिन्होंने महत्त्वपूर्ण प्राक्कथन लिखकर मुझे अनुगृहीत किया। प्रो० एवं साहित्य-विभागाध्यक्ष डॉ० रेवाप्रसाद द्विवेदी प्राच्य विद्या संकाय, बी० एच० यू० का भी विशेष आभारी हूँ जिन्होंने समयाभाव के रहते हुए भी संशोधन में बहुमूल्य योगदान किया, जिसे भुलाया नहीं जा सकता है। डॉ० श्रीनारायण मिश्र, रीडर, संस्कृत विभाग का भी बहुत आभारी हूँ जिन्होंने इसके संशोधन में सहयोग किया है। गुरुवर्य डॉ० वीरेन्द्र कुमार वर्मा, प्रो० एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग के आशीर्वाद का सदैव ऋणी रहूँगा। अपने शोध छात्र श्री धर्मचन्द जैन एवं शोध छात्रा कु० कुमुद श्रीवास्तव के सहयोग के लिए धन्यवाद। अपनी धर्मपत्नी के सहयोग एवं त्याग को इस सन्दर्भ में भुलाया नहीं जा सकता है जिसके नाम पर यह व्याख्या लिखी गई है। अन्त में प्रकाशक श्री कुलदीप जैन एवं मुद्रक-द्वय का भी आभारी हूँ जिन्होंने क्रमशः इसका प्रकाशन एवं मुद्रण किया।

६. २. १९८४ —सुदर्शन लाल जैन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर्पूरमञ्जरी

('मनोरमा' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेता)

प्रथमं जवनिकान्तरम्

[कर्पूरमञ्जर्याख्यसट्टकारम्भे सूत्रधार आशीरूपां नान्दीं पठति]

भद्दं होउ (भोदु) सरस्सईअ कइणो णंदंतु वासाइणो
अण्णाणं पि परं पअट्टउ वरा वाणी छइल्लप्पिआ ।

संस्कृत छाया

भद्रं भवतु सरस्वत्याः कवयो नन्दन्तु व्यासादयो–
ऽन्येषामपि परं प्रवर्ततां वरा वाणी विदग्धप्रिया ।

अन्वयः—सरस्सईअ भद्दं होउ । वासाइणो कइणो णंदन्तु । अण्णाणं पि छइल्लच्छिपआ वरा वाणी परं पअट्टउ । वच्छोमी तह माअही किं च सा पंचालिआ रीईओ णो (काव्ये) फुरउ । कव्वकुसला चओरा जोण्हं विअ विलिहंतु ॥ १ ॥

संस्कृत व्याख्या—सरस्वत्याः = वाग्देवतायाः 'ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाग्वाणी सरस्वती' (अमरकोषः १।६।१), भद्रम्=शुभं कल्याणं वा भवतु 'वाग्देवता सर्वोत्कर्षेण वर्ततामित्यर्थः । व्यासः आदिर्येषां ते व्यासादयः = कृष्णद्वैपायनवाल्मीकिप्रभृतयः कवयः=काव्यप्रणेतारः, नन्दन्तु = आनन्दिताः भवन्तु ।

हिन्दी अनुवाद—सरस्वती देवी का उत्कर्ष हो । व्यास आदि [वाल्मीकि] कवि आनन्दित हों । अन्य कवियों (भास, कालिदास, भवभूति आदि) की भी विद्वज्जनप्रिय श्रेष्ठ वाणी उत्कर्ष को प्राप्त करे (सदा काव्यरूप में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वच्छोमी तह माअही फुरउ णो सा किं च पंचालिआ
रीईओ (रीदीआ) विलिहंतु कव्वकुसला जोण्हं चओरा विअ ॥ १ ॥

वैदर्भी तथा मागधी स्फुरतु नः सा किञ्च पाञ्चालिका
रीतिका विलिहन्तु काव्यकुशला ज्योत्स्नां चकोरा इव ॥ १ ॥

अन्येषामपि = व्यासवाल्मीकिभिन्नानां भासकालिदासप्रभृतीनां कवीनामपि, विदग्धानां प्रिया विदग्धप्रिया = विबुधानां हृदयहारिणी, वरा = उत्तमा श्रेष्ठा वा, वाणी = भारती, परम् = अतिशयेन उत्कर्षेण वा, प्रवर्तताम् = प्रसरतु । वैदर्भी = विदर्भजनपदे प्रयुक्ता, तथा मागधी = मगधजनपदे प्रयुक्ता, किञ्च = अन्यच्च, सा = प्रसिद्धा, पाञ्चालिका = पञ्चालजनपदे प्रयुक्ता, रीतिका = प्रसादादिगुणान्विता रीतिः, नः = अस्माकं काव्ये सहृदयानां मनस्सु च, स्फुरतु = प्रकटीभवतु । काव्येषु कुशलाः काव्यकुशलाः = काव्यार्थपर्यालोचने चतुराः सहृदया वा, चकोराः = चातकपक्षिणः, ज्योत्स्नामिव = चन्द्रिकामिव रीतित्रयविशिष्टामिमां कर्पूरमञ्जरीम्, विलिहन्तु = आस्वादयन्तु । यथा चातकाः चन्द्रोद्भवां चन्द्रिकाम् आस्वाद्य प्रसन्ना भवन्ति तथैव सहृदया अपि कर्पूरमञ्जरी-नामकसट्टकप्रेक्षणेन अध्ययनेन वा प्रसूतं प्रभूतं रसम् आस्वाद्य आनन्दमग्ना भवन्त्वित्यर्थः । शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्, अनुप्रासोपमालङ्कारौ ॥ १ ॥

प्रवृत्त होती रहे)। वैदर्भी मागधी तथा पाञ्चाली रीतियाँ हमारे [काव्य] में स्फुरित हों। काव्य-कुशलजन (काव्यार्थ के पर्यालोचन में निपुण सहृदय) उसी प्रकार [तीनों रीतियों से समन्वित इस रचना का] आस्वादन करें जिस प्रकार चकोर पक्षी चाँदनी का आस्वादन करता है[१] ॥ १ ॥

टिप्पणी—१. डॉ० मनमोहन घोष ने 'कइणो सरस्सईए भद्दं भोदु' ऐसा अन्वय करके अर्थ किया है—'कवि की वांणी का उत्कर्ष हो'। 'सरस्वती' वाणी की अधिष्ठात्री देवी है जो हमेशा भद्ररूपा (मङ्गलरूपा) है, अतः उसकी भद्रता की कामना अनुपयुक्त है। ऐसी स्थिति में 'भद्दं होउ' का अर्थ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होगा—'जय हो' या उत्कर्ष हो। वस्तुतः यहाँ सरस्वती की स्तुति से सबके मङ्गल की कामना की गई है। किञ्च, सरस्वती शब्द 'स्त्री रत्न' का भी वाचक होने से प्रकृत सट्टक की नायिका 'कर्पूरमञ्जरी' का भी बोधक है।

मङ्गल—ग्रन्थ की निर्विघ्न परिसमाप्ति के लिए ग्रन्थारम्भ में मङ्गल की परम्परा सज्जनों के द्वारा स्वीकृत है। नाटकादि के प्रयोग में यद्यपि विघ्नों की शान्ति के लिए कुशीलवों के द्वारा पूर्वरङ्ग ('प्रथमं पूर्वरङ्गश्च ततः प्रस्तावनेति च। आरम्भे सर्वनाट्यानामेतत्सामान्यमिष्यते। यन्नाट्यवस्तुनः पूर्वं रङ्गविघ्नोपशान्तये, कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरङ्गः स उच्यते') किया जाता है फिर भी भरत-वाक्यानुसार ग्रन्थारम्भ में सूत्रधार के मुख से नान्दी-पाठ (सूत्रधारः पठेन्नान्दीं मध्यमं स्वरमाश्रितः') कराया जाता है। यह नान्दी-पाठ मङ्गलार्थ किया जाता है और इससे काव्यार्थ की भी सूचना दी जाती है। नान्दी का लक्षण है—'आशीर्नमस्क्रियारूपः श्लोकः काव्यार्थसूचकः। नान्दी पदैः द्वादशभिरष्टाभिर्वाप्यलङ्कृता'। डॉ० मनमोहन घोष प्रथम दो गाथायें नान्दी के अन्तर्गत मानते हैं, अन्य विद्वान् चार गाथाओं को। गाथा के प्रारम्भ में 'मगण' आया है जो श्रीसमृद्धिरूप फल का जनक माना गया है—'मो भूमिः श्रियमातनोति'। यहाँ काव्यार्थ की भी सूचना हो रही है। जैसे—'सरस्वती' से स्त्रीरत्न कर्पूरमञ्जरी की ('सरस्वती स्यात्स्त्रीरत्ने नद्यां नद्यन्तरे गवि'); 'व्यास' (विविधं वस्त्वभिनवमासमन्तादस्यति क्षिपति दर्शयितुमिति व्यासः) से भैरवानन्द की; 'वरा वाणी' से कर्पूरमञ्जरी नायिका की; 'माअही' आदि रीतियों से विविध प्रकार के विलासों की; 'चओरा' से नायक की तथा 'विलिहंतु' से रसास्वादन की अभिव्यक्ति हो रही है। 'जोण्हं' पद से शिवजी के मस्तक पर स्थित चन्द्रकला का भी स्मरण होता है। 'सरस्सईअ' और 'भद्दं' पद मङ्गलवाचक हैं। इस तरह यहाँ आशीर्वाद रूप नान्दी है। तुलना कीजिए—'भद्दं होउ सरस्सईअ' (क० म० १.१;) 'भारती कवेर्जयति' (काव्यप्रकाश १.१); 'गुम्फो वाणीनां विजयते' (बाल-रामायण १.१)।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ध्वनि—(क) वस्तु से वस्तु-ध्वनि—वैदर्भी, मागधी (गौडी) और पाञ्चाली ये तीन काव्य की रीतियाँ ('पदसंघटना रीतिरङ्गसंस्थानविशेषवत् । उपकर्त्री रसादीनाम्') हैं। इन तीनों का यहाँ प्रतिनाम उल्लेख करने से ध्वनित होता है कि इस सट्टक में इन तीनों रीतियों का मञ्जुल समावेश है। 'विदग्धप्रिया' इस पद के प्रयोग से ध्वनित होता है कि प्रकृत रचना में विविध प्रकार के गुण, अलङ्कार आदि भरे पड़े हैं। अतः यहाँ वस्तु से वस्तु-ध्वनि है। (ख) अलङ्कार से वस्तु-ध्वनि—चकोर उपमान के द्वारा विवेचन-कर्तृत्व की प्रार्थना व्यङ्ग्य है। अतः यहाँ अलङ्कार से वस्तु-ध्वनि है। (ग) वस्तु से अलङ्कार-ध्वनि—'विदग्धप्रिया' में षष्ठी तत्पुरुष समास करके वाणी का विशेषण बनाने पर अथवा कर्मधारय समास करके वैदर्भी आदि का विशेषण बनाने पर 'कामिनीरूपत्व' व्यञ्जित होता है। अतः यहाँ वस्तु से अलङ्कार-ध्वनि है। (घ) भावध्वनि—सरस्वती विषयक देवरति होने से यहाँ भावध्वनि है। (ङ) शृङ्गार रस—'विदग्धप्रिया' पद से विदर्भदेशोत्पन्न नायिका का बोध तथा वैदर्भी आदि शब्दों से समासोक्ति के द्वारा रीति पर नायिकात्व का आरोप; काव्यकुशल पद के द्वारा नायकत्व का बोध होने से यहाँ शृङ्गार रस भी ध्वनित होता है। (च) 'जोण्हां' में प्रयुक्त एकवचन से लोकोत्तरत्व तथा तृप्तिजनकत्व भी व्यङ्ग्य है।

अलङ्कार—'चओरा विअ' यहाँ उपमा अलङ्कार है—'साधर्म्यमुपमा भेदे' (का० प्र० १०।८७)। 'भद्दं भोदु' आदि में छेकानुप्रास तथा वृत्यनुप्रास भी है—'वर्णसाम्यमनुप्रासः। छेकवृत्तिगतो द्विधा। सोऽनेकस्य सकृत्पूर्वः एकस्याप्यसकृत्परः' (का० प्र० ९।७९)।

छन्द—शार्दूलविक्रीडित छन्द है—'सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्'।

रीति—यहाँ वैदर्भी रीति है। पदों की संघटना को रीति कहते हैं। रीतियों के लक्षण हैं—(१) वैदर्भी—इसमें प्रायः समासरहित रचना होती है तथा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

माधुर्य के व्यञ्जक सरस एवं सरल पदों का प्रयोग होता है। (२) मागधी—इसमें समास का बाहुल्य रहता है तथा ओज गुण के व्यञ्जक पदों का प्रयोग होता है। इसे गौडी रीति भी कहा जाता है। (३) पाञ्चाली—इसमें पाँच-छः पदों का समास होता है तथा माधुर्य और ओज गुण के व्यञ्जक वर्णों को छोड़कर अवशिष्ट वर्णों से युक्त(प्रसादगुण से युक्त) पदरचना होती है। (४) लाटी—इसमें वैदर्भी और पाञ्चाली रीतियों का मिश्रण रहता है। राजशेखर ने लाटी को पृथक् न मानकर रीतियों के तीन ही भेद गिनाये हैं—'वैदर्भी-गौडीया-पाञ्चाली चेति रीतयस्तिस्रः' (काव्यमीमांसा, ७)। विशेष के लिए देखिए, साहित्यदर्पण का नवम परिच्छेद।

व्याकरण—भद्दं > भद्रम्। यहाँ 'सर्वत्र लवराम्' सूत्र से 'र्' का लोप, 'शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ' से 'द्' का द्वित्व, 'नपुंसके सोर्बिन्दुः' से अनुस्वार होकर भद्रम् से 'भद्दं' रूप बना। 'छइल्ल' और 'वच्छोमी' ये दोनों देशी शब्द हैं। इनकी सिद्धि 'दाढादयो वहुलम्' सूत्र से होती है। 'वच्छोम' (वत्सगुल्म) विदर्भ की राजधानी थी (तत्रास्ति मनोजन्मनो देवस्य क्रीडावासो विदर्भेषु वत्सगुल्मं नाम नगरम्। काव्यमीमांसा, ३)। जोण्हं > ज्योत्स्नाम्। यहाँ ज्योत्स्ना शब्द से 'न्हस्नष्णक्ष्णश्नां ण्ह' सूत्र से 'स्न' को 'ण्ह' आदेश, 'उपरि लोपः' से 'त्' का लोप तथा अधो मनयाम्' से 'य' का लोप हुआ। होदु > भवतु। यह 'भू' धातु लोट् लकार प्रथम पुरुष एक-वचन का रूप है। सामान्य प्राकृत में 'भू' को 'हो' होता है परन्तु शौरसेनी प्राकृत में विकल्प से 'भू' को 'भो' हो जाता है। अतः 'भोदु' पद शौरसेनी प्राकृत का और 'होउ' पद महाराष्ट्री या सामान्य प्राकृत का है। पि > अपि, यह स्वरलोप होकर बना है। चओरा > चकोराः। यहाँ 'कगचजतदपयवां प्रायो लुक्' इस सूत्र के नियमानुसार 'क' का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ है। 'विलिहंतु' यह आस्वादनार्थक 'लिह्' धातु के लोट् लकार का रूप है। फुरदु (फुरउ) और पअट्टदु (पअट्टउ) ये रूप शौरसेनी प्राकृत के हैं क्योंकि वहाँ 'त' को 'द' हो जाता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपि अ—

अकलिअ-परिरंभ-विब्भमाइं अजणिअ-चुंबण-डंबराइं दूरं।
अघडिअ-घण (थण)-ताडणाइं णिच्चं णमह अणंगरईण मोहणाइं ॥२॥

अपि च—

अकलितपरिरम्भविभ्रमाण्यजनितचुम्बनडम्बराणि दूरम्।
अघटितघन (स्तन)-ताडनानि नित्यं नमतानङ्गरत्योर्मोहनानि ॥२॥

अन्वयः—[यूयम्] अकलिअ-परिरंभ-विब्भमाइं अजणिअ-चुंबण-डंबराइं अघडिअ-घण-ताडणाइं अणंगरईण मोहणाइं दूरं [यथास्यात्तथा] णिच्चं णमह ॥२॥

सं० व्याख्या—यूयं = दर्शकाः, न कलितः परिरम्भविभ्रमः = आलिङ्गन-विलासः येषु तानि अकलितपरिरम्भविभ्रमाणि = आलिङ्गनविलासशून्यानि, न जनितः चुम्बने डम्बरः येषु तानि अजनितचुम्बनडम्बराणि = चुम्बनक्रिया-रहितानि, न गणितं घनं ताडनं येषु तानि अगणितघनताडनानि = नखक्षतादि-

---

और भी, [हे सहृदय दर्शकगण ! आप लोग] आलिङ्गन की चेष्टाओं से रहित, चुम्बन के आडम्बर (विस्तार) से रहित तथा [स्तन आदि अङ्गविशेषों के] कठोर ताड़न से रहित (अथवा स्तन-

---

दोष-समीक्षा—'सरस्सईअ = सरस्वत्याः' यहाँ षष्ठ्यन्त प्रयोग करके कवि ने आगे व्यासादि पदों में षष्ठ्यन्त प्रयोग नहीं किया है, अतः 'प्रक्रमभङ्ग' दोष कहा जा सकता है, परन्तु होउ, णंदंतु आदि प्रधान क्रियापदों में सर्वत्र लोट् लकार का प्रयोग होने से यहाँ दोष नहीं है। उपमेय (रीदीओ) और उपमान (जोण्हं) में वचनभेद होने से भिन्न-वचनता दोष होगा, परन्तु उद्वेगजनक न होने से दोष नहीं है। कहा भी है—'न लिङ्गवचने भिन्ने न हीनाधिकतापि वा। उपमादूषणायालं यत्रोद्वेगो न धीमताम्' (काव्यादर्श २।५१)। अपि तु यहाँ ज्योत्स्ना में प्रयुक्त एकवचन से लोकोत्तरत्व तथा तृप्तिजनकत्व व्यङ्ग्य है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(नान्द्यन्ते) स्थापकः—

(नान्द्यन्ते) स्थापकः—

घनप्रहारविवर्जितानि, अनङ्गरत्योः = कामरत्योः, मोहनानि = सुरतानि, दूरम् = अत्यर्थं यथास्यात्तथा, नित्यम् = सततम्, नमत = प्रणमत इत्यर्थः। अत्र सर्वत्र बहुव्रीहि समासः। पुष्पिताग्रावृत्तम्। संभोगश्रृङ्गारः। विभावनालङ्कारः ॥२॥

पीडन की क्रियाओं से रहित) कमदेव और रति की सुरतक्रीड़ाओं को अतिशयरूप से नित्य नमस्कार करें।[1]

(नान्दी[2] पाठ के पश्चात्) स्थापक[3]—

टि०—१. कामदेव अशरीरी है, अतएव उसके साथ रति की आलिङ्गन आदि क्रियायें संभव नहीं हैं। यहाँ काम और रति की सुरत-क्रीड़ाओं से नायक चन्द्रपाल और नायिका कर्पूंरमञ्जरी की सुरत-क्रीड़ाओं की प्रतीति हो रही है। चन्द्रपाल और कर्पूरमञ्जरी के सशरीरी होने से उनमें आलिङ्गन आदि क्रियायें संभव हैं, अतः उस पक्ष में 'अकलिअ' आदि पदों से विपरीत लक्षणा से अतिशयार्थ की प्रतीति होगी। इस तरह यहाँ संभोग श्रृंगार की ध्वनि है। 'णमह' इस पद के प्रयोग से सहृदय दर्शकों का अतिरसिकत्व व्यङ्ग्य है। 'मोहणाइं' इस पद में बहुवचन का प्रयोग होने से उत्तानकरणादि सुरत-क्रियाओं का अतिशय व्यङ्ग्य है। इस पद्य से यह भी सूचित हो रहा है कि प्रकृत सट्टक संभोग श्रृङ्गार रस से आप्लावित है। यहाँ 'विभावना' अलंकार है क्योंकि आलिङ्गन आदि कारणों के अभाव में मोहन-क्रिया को बतलाया गया है—'विभावना विनापि स्यात् कारणं कार्यजन्म चेत्।' पं० वासुदेव टीकाकार ने यहाँ विशेषोक्ति अलङ्कार माना है—'सत्स्वपि परिरम्भादिषु तज्ज्ञानानुत्पत्तेर्विशेषोक्तिः।

२. नान्दी—देवताओं के लिए नमस्कार अथवा सामाजिकों के लिए आशीर्वाद स्वरूप काव्यार्थ की सूचना देते वाले पद्य नान्दी कहलाते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ससिहंडमंडणाणं छम्मुह (समोह)-णासाणं सुरअण-पिआणं।
गिरिस-गिरिंद-सुआणं संघाडो वो सुहं देउ ॥३॥

शशिखण्डमण्डनयोः षण्मुखन्यासयोः (समोहनाशयोः) सुरगणप्रिययोः।
गिरिशगिरीन्द्रसुतयोः संघटना वः सुखं ददातु ॥३॥

अन्वयः—स्पष्टम् ॥३॥

व्याख्या—शशिनः खण्डः मण्डनं ययोस्तयोः शशिखण्डमण्डनयोः = चन्द्रकलालङ्कृतयोः, षण्मुखस्य न्यासः तयोः षण्मुखन्यासयोः = कार्तिकेय-निक्षेपयोः (समोहनाशयोः इति पाठे सति अस्य पदस्य व्याख्या चतुर्विधा— मोहस्य नाशः मोहनाशः तेन सहितौ तयोः समोहनाशयोः = मोहविनाशकयोः, यद्वा मोहनस्य आशा मोहनाशा तया सहितयोः = अनङ्गाभिलाषव्याप्तयोः, यद्वा मोहने सुरते आशया सहितयोः = संभोगेच्छासहितयोः, यद्वा मोहनस्यासेन क्षेपेण सहितयोः (शिवेन तस्य जितत्वात्), सुरगणानां प्रियौ तयोः सुरगण-प्रिययोः = देवसमुदायप्रिययोः, गिरिशश्च गिरीन्द्रसुता च तयोः गिरिश-गिरीन्द्रसुतयोः = शिवपार्वत्योः, संघटना - समागमः, वः = युष्मभ्यं, सुखम् = आनन्दं, ददातु = वितरतु। आर्यावृत्तम्। व्यतिरेकालङ्कारो व्यङ्ग्यः ॥३॥

चन्द्रकला से सुशोभित, कार्तिकेय का न्यास करने वाले (अथवा—मोह विजयी या संभोगेच्छा से युक्त) तथा देवगणों के प्रिय भगवान् शिव और

इससे देवता लोग प्रसन्न होते हैं, सामाजिकगण आनन्दित होते हैं तथा नाटक की निर्विघ्न परिसमाप्ति होती है—'नन्दयति देवान् इति नान्दी'। नान्दी एक प्रकार का मङ्गलाचरण है—'यन्नाटचवस्तुनः पूर्वं रङ्गविघ्नो-पशान्तये कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरङ्गः स उच्यते। प्रत्याहारादिकान्यङ्गान्यस्य भूयांसि यद्यपि। तथाप्यवश्यं कर्तव्यं नान्दी विघ्नोपशान्तये॥ आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते। देवद्विजनृपादीनां तस्मात् नान्दीति संज्ञिता॥ (सा० द०, ६)। यहाँ आठपद की नान्दी है जो मध्यम स्वर में की गई है।

टि०—३. स्थापक—कथावस्तु की स्थापना करने वाला या सूचना देने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पर्वतराज पुत्री पार्वती का समागम आप लोगों (सहृदयों या दर्शकों) को सुखद हो ॥ ३ ॥[1]

वाला स्थापक कहलाता है—'स च काव्यार्थस्थापनात् सूचनात् स्थापकः' (दशरूपक ३.२ धनिकवृत्ति, पृ० २०६)। यहाँ इतना विशेष है कि कर्पूरमञ्जरी की कुछ प्रतियों में 'स्थापक' के स्थान पर 'सूत्रधार' का भी प्रयोग मिलता है। 'सूत्रधार' रङ्गमञ्च का व्यवस्थापक या नाटकीय कथासूत्र को धारण करने वाला होता है—'नर्तनीयकथासूत्रं प्रथमं येन सूच्यते, रङ्गभूमिं समाक्रम्य सूत्रधारः स उच्यते'। स्थापक और सूत्रधार भिन्न-भिन्न व्यक्ति हैं या एक ही व्यक्ति? दशरूपक (३.२), भा० प्र० (पृ० २२८) तथा सा० द० (६.२६) से ज्ञात होता है कि प्राचीनकाल में ये दो पृथक्-पृथक् व्यक्ति थे। दोनों की आकृति एक समान होती थी। सूत्रधार का काम सबसे पहले रङ्गमञ्च पर आकर केवल पूर्वरङ्ग (अभिनय के पूर्व किया गया मङ्गल आदि) करना होता था पश्चात् उसी वेशभूषा वाला दूसरा नट आकर काव्यार्थ की सूचना करता था जो स्थापक कहलाता था—'पूर्वरङ्गं विधायादौ सूत्रधारे विनिर्गते। प्रविश्य तद्वदपरः काव्यमास्थापयेन्नटः' (दश० ३.२)। कालान्तर में दोनों कामों को एक ही व्यक्ति करने लगा और वेशभूषा आदि के समान होने से दोनों का भेद समाप्त सा हो गया।

१. डॉ० मनमोहन घोष, एन० जी० सुरु आदि विद्वानों ने 'छम्मुहणासाणं' के स्थान पर 'समोहणासाणं' (समोहनाशयोः) पाठ प्रामाणिक माना है। 'समोहनाशयोः' की चार प्रकार से व्याख्या की जा सकती है—(१) मोहने सुरते आशया सहितयोः (संभोगेच्छा से युक्त), (२) मोहस्य नाशेन सहितयोर्वा (मोह-विजयी), (३) जगन्मोहयतीति मोहनोऽनङ्गस्तस्याशेन व्याप्त्या ('असूङ्व्याप्तौ से घञ्) सहितयोर्वा (अनङ्ग से व्याप्त), (४) मोहनस्यासेन क्षेपेण सहितयोर्वा (कामजयी = शिवजी ने काम को भस्म कर दिया था, यह कथा प्रसिद्ध है)। द्वितीय और चतुर्थ व्याख्या से व्यतिरेक अलङ्कार व्यङ्ग्य है क्योंकि स्त्री-समागम होने पर भी कामजयी शिव का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अवि अ—

ईसारोस-प्पसाअ-प्पणइसु बहुसो सग्गगंगा-जलेहिं
आमूलं पूरिआए तुहिणकरकलारुप्पसिप्पीअ रुद्दो।

अपि च—

ईर्ष्यारोषप्रसादप्रणतिषु बहुशः स्वर्गगङ्गाजलै—
रामूलं पूरितया तुहिनकरकलारूप्यशुक्त्या रुद्रः।

अन्वयः—बहुसो ईसारोसप्पसाअप्पणइसु सग्गगंगाजलेहिं आमूलं पूरिआए तुहिणकरकलारुप्पसिप्पीअ जोण्हामुत्ताहलिल्लं दोहिं णअमउलिणिहित्तग्गहत्थेहिं गिरिसुआपाअपंकेरुहाणं अग्घं सिग्घं देंतो व रुद्दो जअइ ।। ४ ।।

सं० व्या०—शिवशिरसि गङ्गारूपां सपत्नीं स्थितां विलोक्य पार्वती ईर्ष्यया रुष्टा जाता। अतः तां प्रसादयितुं शिवः यतते—बहुशः=पुनः-

और भी, [शिवजी के मस्तक पर स्थित गङ्गा को सौत समझकर] ईर्ष्या के कारण क्रोधयुक्त [पार्वती को] प्रसन्न करने के लिए

अन्यों से अतिशय व्यङ्ग्य है। 'ससिहंडमंडणाणं' से भी व्यतिरेक अलङ्कार व्यङ्ग्य है क्योंकि चन्द्रकला को आभूषण बनाने से यहाँ सामान्य आभूषणों से भिन्नता बतलाई गई है। छम्मुह=कार्तिकेय (कृत्तिकानामपत्यं ढक्)। कार्तिकेय के सम्बन्ध में पुराणों में कथा आती है कि ये शिवजी के पुत्र हैं परन्तु उनके जन्म में किसी स्त्री का प्रत्यक्ष संसर्ग नहीं है। एक बार शिवजी ने अपना वीर्य अग्नि में फेंका जिसे धारण कर सकने में असमर्थ होकर अग्नि ने उस वीर्य को गंगा में छोड़ दिया। इसके बाद वह वीर्य गंगा में स्नान करने गई छः कृत्तिकाओं में संक्रान्त कर दिया गया। परिणामस्वरूप वे सभी गर्भवती हुईं और प्रत्येक ने एक-एक पुत्र को जन्म दिया जिन्हें बाद में जोडकर एक कर दिया गया। फलस्वरूप कार्तिकेय छः सिरों और बारह हाथों वाले हो गये। अतः उन्हें 'षण्मुख' या 'षडानन' कहा जाने लगा। छः मातायें होने से 'षाण्मातुरः' भी हुए। स्कन्द, अग्निभू, गंगापुत्र आदि भी इनके अन्य नाम हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जोण्हामुत्ताहलिल्लं णअमउलि-णिहित्तग्ग-हत्थेहिं दोहिं
अग्घं सिग्घं व देंतो जअइ गिरिसुआ-पाअ-पंकेरुहाणं ॥ ४ ॥

ज्योत्स्नामुक्ताफलवन्नतमौलिनिहिताग्रहस्ताभ्यां द्वाभ्या—
मर्घ्यं शीघ्रमिव ददज्जयति गिरिसुतापादपङ्केरुहयोः ॥ ४ ॥

पुनः, ईर्ष्याजन्यरोषस्य प्रसादार्थं यद्वा असूयाक्रोधयोः प्रसादार्थं क्रियमाणासु प्रणतिषु=चरणतलपतनेषु, स्वर्गे या गङ्गा तस्या जलैः स्वर्गगङ्गाजलैः=आकाशगङ्गातोयैः, मूलात् आ इति आमूलम्=उपरिभागं यावत्, पूरितया=वर्तमानत्वात्, तुहिनकरस्य=चन्द्रस्य या कला सा एव रूप्यशुक्तिः=रजतशुक्तिः तया तुहिनकरकलारूप्यशुक्त्या, ज्योत्स्ना=चन्द्रिका एव मुक्ताफलं तेन आढ्यं=युक्तम्, अर्घ्यं=पूजाद्रव्यं, नतमौलौ=नम्रीभूतशिरसि, द्वाभ्यां निहिताग्रहस्ताभ्यां निक्षिप्ताग्रकराभ्यां, गिरिसुतायाः=पार्वत्याः, पादपङ्केरुहयोः=चरणकमलयोः, शीघ्रं=त्वरितं, ददत्=वितरत् इव, रुद्रः=शिवः, जयति=सर्वोत्कर्षेण वर्तते। स्रग्धरावृत्तम्। रूपकोत्प्रेक्षालङ्कारौ अर्थश्लेषश्च ॥ ४ ॥

वारम्वार प्रणत होते हुए तथा स्वर्गगङ्गा (आकाश गङ्गा) के जल से लबालब भरी चन्द्रकलारूपी सीप से, जिसमें ज्योत्स्नारूपी मोती चमक रहे हैं, नम्रीभूत हुए अपने मस्तक पर दोनों हाथों की बनाई गई अञ्जलि के द्वारा पार्वती के चरणकमलों में जल्दी-जल्दी अर्घ्य को देते हुए के समान शिवजी (रुद्र) जयवन्त हों ॥ ४ ॥[1]

१. जैसे कोई व्यक्ति अपने अभीष्ट देवता को प्रसन्न करने के लिए अर्घ्यं प्रदान करता है उसी प्रकार शिवजी पार्वती को प्रसन्न करने के लिए अर्घ्य प्रदान कर रहे हैं। इस गाथा में रूपक, उत्प्रेक्षा और आर्थश्लेष अलंकार हैं। 'बहुसो' पद के प्रयोग से पार्वती के अत्यन्त मानिनीस्वभाव की व्यंजना हो रही है। 'सिग्घं' पद से मानवृद्धि का भय व्यङ्ग्य है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(परिक्रम्य नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) किं उण णट्टपउत्तो विओ दीसदि अम्हाणं कुसीलवाणं जणो। जदो एक्का पत्तोइदाइं (पत्तोच्चिआइं) सिअआइं उच्चिणेवि। इअरा कुसुमावलीओ गुंफेदि। अण्णा पडिसीसआइं पडिसारेदि। कावि हु वण्णिआओ पट्टए घट्टेदि (वट्टेदि)। एसो

(परिक्रम्य नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) किं पुनर्नाट्यप्रवृत्त इव दृश्यतेऽस्माकं कुशीलवानां जनः। यत एका पात्रोचितानि सिचयान्युच्चिनोति। इतरा कुसुमावलीर्गुम्फति। अन्या प्रतिशीर्षकाणि प्रतिसारयति। काऽपि खलु वर्णिकाः पट्टके घट्टयति (वर्तयति)। एष वंशः स्थापितः स्थाने।

(घूमकर और नेपथ्य[1] की ओर देखकर) हमारा नटों (कुशीलवों) का परिजन नाट्य में लगा हुआ सा दिखलाई पड़ रहा है क्योंकि कोई एक नटी पात्रों के लिए उचित वस्त्रों का चयन कर रही है। दूसरी फूलों की माला गूंथ रही है। कोई प्रतिशीर्षकों[2] (पगड़ियों या मुखौटों) को फैला रही है। कोई सिल पर वर्णिका घिस रही है (अथवा चित्रफलक चित्रित

चन्द्रकला का देवी पार्वती के चरणों से सम्बन्ध कराने का उद्देश्य है—'कामोद्दीप्त होकर पार्वती शीघ्र मान का परित्याग कर दे'। शिवकर्तृक प्रणतादि क्रियाओं से नायिका में 'स्वाधीनपतिका' की प्रतीति हो रही है। सिप्पीए > शुक्त्या—'दाढादयो वहुलम्' सूत्र से 'शुक्ति' का 'सिप्पी' आदेश होकर तृतीया एकवचन का रूप बना है। 'मुत्ताहलिल्लं' > मुक्ताफलाढ्यं या मुक्ताफलवत्—यहाँ 'आल्विल्लोल्लालवतेंता मतुपः' से 'मतुप्' अर्थ में 'इल्ल' प्रत्यय हुआ है, पश्चात् 'क' लोप, 'त्' को द्वित्व' तथा 'फ' को 'ह' होकर रूप सिद्ध होगा।

१. नेपथ्य—जहाँ वेशभूषा आदि धारण करने का काम होता है—'नेपथ्यं स्याज्जवनिका रङ्गभूमिप्रसाधनम्'।

२. प्रतिशीर्षक—'अमात्यकञ्चुकिश्रेष्ठिविदूषकपुरोधसाम्। वेष्टनावद्धपट्टानि प्रतिशीर्षकाणि कारयेत' (नाट्यालोचन)।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बंसो ठाविदो ठाणे। इअं वीणा पडिसारीअदि। इमे तिण्णि वि मिअंगा सज्जीअंति। एस पक्खाउज्जाणं (कंसतालाणं पक्खालणुज्जलाणं) हलवोलो सुणीअदि। एदं घुवागीदं आलवीअदि। ता किं पि कुडुंबं हक्कारिअ पुच्छिस्सं। (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य संज्ञापयति)

(प्रविश्य ततः प्रविशति पारिपार्श्विकः)

इयं वीणा प्रतिसार्यते। इमे त्रयोऽपि मृदङ्गाः सज्जयन्ते। एष पक्षातोद्यानां (कांस्यतालानां प्रक्षालनोज्ज्वलानाम्) निनादः (हलवोलः) श्रूयते। एतद् ध्रुवागीतमालप्यते। तत्किमपि कुटुम्बमाकार्य प्रक्ष्यामि। (नेपथ्याभिमुख-मवलोक्य संज्ञापयति)

(प्रविश्य। ततः प्रविशति पारिपार्श्विकः)

किए जा रहे हैं)। यह वेणू (वाँसुरी) वजाई जा रही है। यह वीणा ठीक की जा रही है। ये तीनों मृदङ्ग[1] ठीक किए जा रहे हैं। यह पक्षातोद्यों (खंजड़ी = Timbreal) का शब्द (हलवोल)[2] सुनाई पड़ रहा है (अथवा साफ करने से उज्ज्वल कांस्यतालों – कांसे के बने हुए तालों या झांझों का यह शब्द सुनाई पड़ रहा है)। यह ध्रुवागीत[3] गाया जा रहा है। अतः किसी कुटुम्वी को बुलाकर पूछता हूँ। (नेपथ्य की ओर मुख करके बुलाने का संकेत करता है ;।

(इसके वाद पारिपार्श्विक[4] का प्रवेश होता है)

---

१. मृदङ्ग— ये तीन प्रकार के होते हैं—(१) मायूरी (२) अर्धमायूरी और (३) कर्मरथी।

२. हलवोल—यह देशी शब्द है।

३. ध्रुवागीत—यह ५ प्रकार का होता है—(१) प्रावेशिकी, (२) आक्षेपणी, (३) क्रामिकी, (४) उत्थापिनी और (५) प्रसादिकी।

४. पारिपार्श्विक—स्थापक का अनुचर।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पारिपार्श्विकः—भाणवेदु भावो ।
स्थापकः—(विचिन्त्य) किं उण णट्टपउत्ता विअ दीसध ?
पारिपार्श्विकः—अध इं । सट्टअं णच्चिदव्वं ।
स्थापकः—को उण तस्स कई ?
पारिपार्श्विकः—

भाव कहिज्जउ एअं को भणइ रअणिवल्लहसिहंडो ।
रहुउलचूडामणिणो महिंदवालस्स को अ गुरू ॥ ५ ॥

पारिपार्श्विकः—आज्ञापयतु भावः ।
स्थापकः—(विचिन्त्य) किं पुनर्नाट्यप्रवृत्ता इव दृश्यध्वे ?
पारिपार्श्विकः—अथ किम् । सट्टकं नाटयितव्यम् ।
स्थापकः—कः पुनस्तस्य कविः ?
पारिपार्श्विकः—

भाव कथ्यतामेतत् को भण्यते रजनीवल्लभशिखण्डः ।
रघुकुलचूडामणेर्महेन्द्रपालस्य कश्च गुरुः ॥ ५ ॥

अन्वयः—भाव ! एअं कहिज्जउ—रअणिवल्लहसिहडो को ? अ रहुउल-चूडामणिणो महिंदवालस्य गुरू को ? [स एव अस्य सट्टकस्य कविः] ॥ ५ ॥

व्याख्या—भाव = हे विद्वन् ! भाव शब्दो विद्वत्पर्यायः 'भावो विद्वान्' इत्यमरः, एतत् कथ्यताम् = भण्यताम्—रजन्याः = तमसायाः

पारिपार्श्विक—महाशय जी ! आज्ञा दें ।
स्थापक—क्या तुम लोग नाट्य की तैयारी में लगे हुए हो ?
पारिपार्श्विक—तब क्या । सट्टक का[१] अभिनय करना है ।
स्थापक—उसका (सट्टक का) कवि कौन है ?
पारिपार्श्विक—हे विद्वन् ! आप ही बतलायें—रजनीवल्लभशिखण्ड (रजन्याः वल्लभः चन्द्रः अस्ति शिखण्डः शिरोभूषणं यस्य सः = चन्द्रमा

---

१. देखिए—भूमिका तथा आगे गाथा नं० ६.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थापकः—(विचिन्त्य) अए, पण्होत्तरं खु एदं । (प्रकाशम्) राअसेहरो ।

पारिपार्श्विकः—सो एदस्स कई ।

स्थापकः—(विचिन्त्य) अये ! प्रश्नोत्तरं खल्वेतत् । (प्रकाशम्) राजशेखरः ।

पारिपार्श्विकः—स एतस्य कविः ।

वल्लभः = पतिः चन्द्रः स एव अस्ति शिखण्डः = शिरोभूषणं यस्य स रजनीवल्लभशिखण्डः, कः भण्यते जनैरितिशेषः । अत्र रजनीवल्लभशिखण्डशब्दः राजशेखरस्य द्योतकः, यथा—राजा = चन्द्रमा सः अस्ति शिखण्डः यस्य इति व्युत्पत्तेः । एवमेव रघुकुलस्य = रघुवंशस्य सूर्यवंशस्य वा चूडामणिः = शिरोभूषणं तस्य रघुकुलचूडामणेः, महेन्द्रपालस्य=एतन्नामधेयस्य राज्ञः, कः गुरुः = उपाध्यायः कः ? योऽस्य गुरुः सोऽस्य सट्टकस्य रचयिता अस्तीति । अनेन कवेरुत्कर्षो व्यज्यते । आर्यावृत्तम् ॥ ५ ॥

जिसका शिरोभूषण है) किसे कहा जाता है ? किञ्च, रघुकुलचूडामणि [राजा] महेन्द्रपाल का गुरु कौन हैं ? [वही इस सट्टक का कवि है] ॥ ५ ॥[1]

स्थापक—(विचार करके)[2] यह तो प्रश्न का उत्तर है । (प्रकाश में) राजशेखर ।[3]

पारिपार्श्विक—वही इस [सट्टक] के कवि हैं ।

---

१. 'भाव' शब्द महाशय, श्रीमान् तथा विद्वान् के अर्थ में प्रयुक्त होता है । यहाँ 'विद्वान्' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है क्योंकि इस गाथा में पाण्डित्यपूर्णशैली में उत्तर दिया गया है, जिसे सम्बोध्य व्यक्ति स्थापक समझ लेता है । 'रजनीवल्लभशिखण्डः (चन्द्रमा है शिरोभूषण जिसका ऐसे शिवजी)—यह पद यहाँ राजशेखर का बोधक है क्योंकि रजनीवल्लभ=चन्द्रमा । राज = चन्द्रमा ।

२. यहाँ 'विचिन्त्य' का प्रयोग 'स्वगत' के अर्थ में हुआ है ।

३. प्रश्न का उत्तर प्रश्न के रूप में देना उक्ति-वैचित्र्य है जो काव्य है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थापकः—किं सट्टअं ?

पारिपार्श्विकः—(स्मृत्वा) कधिदं जेव्व छइल्लेहिं—

सो सट्टओ त्ति भण्णइ दूरं जो णाडिआएँ अणुहरइ ।

किं उण पवेसअविक्कंभकाइं केवलं ण दीसंति (इह केवलं णत्थि)।।६।।

स्थापकः—किं सट्टकम् ?

पारिपार्श्विकः—(स्मृत्वा) कथितमेव विदग्धैः—

तत् सट्टकमिति भण्यते दूरं यन्नाटिकाया अनुहरति ।
किं पुनः प्रवेशकविष्कम्भकौ केवलं न दृश्यतः (इह केवलं न स्तः)।।६।।

अन्वयः—सो सट्टओ त्ति भण्णइ जो णाडिआएँ दूरं अणुहरइ । किं उण [इह] केवलं पवेसअविक्कंभकाइं ण दीसंति ।। ६ ।।

व्याख्या—तत् सट्टकमिति = एतन्नामकमुपरूपकप्रकारमिति, भण्यते = कथ्यते, यन्नाटिकायाः = एतन्नामकस्योपरूपकप्रकारस्य, दूरम् = अत्यर्थम्, अनुहरति = अनुसरति तद्वदितिभावः । किं पुनः अत्र सट्टके केवलं प्रवेशकः विष्कम्भकश्च प्रवेशकविष्कम्भकौ = एतन्नामधेयौ अर्थोपक्षेपकौ, न दृश्यतः = स्तः । प्रवेशकविष्कम्भकरहिता नाटिका सट्टकमिति । गीतिवृत्तम् ।। ६ ।।

स्थापक—सट्टक क्या होता है ?[1]

पारिपार्श्विक—(स्मरण करके) विद्वानों ने कहा ही है—

सट्टक उसे कहते हैं जो नाटिका के अनुरूप होता है । इसमें केवल प्रवेशक और विष्कम्भक [ये दो अर्थोपक्षेपक] नहीं होते हैं ।। ६ ।।[2]

१. म० मो० घोष तथा एन० जी० सुरु के संस्करण में यह अंश नहीं है । वहाँ 'सव्वभासाचउरेण' तक के अंश को पारिपार्श्विक से न कहलाकर स्थापक या सूत्रधार के मुख से कहलवाया गया है ।

२. देखिए, भूमिका 'सट्टक की परिभाषा' ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थापकः—(विचिन्त्य) ता किं ति सक्कदं (सक्कअं) परिहरिअ पाउदबंधे (पाइअबंधे) पउत्तो कई ?

पारिपार्श्विकः—सव्वभासाचउरेण तेण भणिदं ज्जेव । जधा—

अत्थविसेसा ते चिअ (ज्जेव) सद्दा ते चेअ (ज्जेव) परिणमंतावि ।
उत्तिविसेसो कव्वं भासा जा होइ सा होउ ॥७॥

स्थापकः—(विचिन्त्य) तत् किमिति संस्कृतं परिहृत्य प्राकृतबन्धे प्रवृत्तः कविः ?

पारिपार्श्विकः—सर्वभाषाचतुरेण तेन भणितमेव । यथा—

अर्थविशेषास्त एव शब्दास्त एव परिणमन्तोऽपि ।
उक्तिविशेषः काव्यं भाषा या भवति सा भवतु ॥ ७ ॥

अन्वयः—परिणमंतावि सद्दा ते चिअ अत्थविसेसा ते चेअ । कव्वो उत्तिविसेसो, भासा जा होइ सा होउ ॥ ७ ॥

व्याख्या—परिणमन्तः = परिवर्तमानाः (संस्कृतात् प्राकृतरूपेण विकृता वा) अपि शब्दाः, त एव = यथा संस्कृतभाषायां तथैव प्राकृतभाषायाम्, तस्मात् अर्थनिवेशाः = अभिधेयलक्ष्यव्यङ्ग्यार्थनिवेशाः त एव, यथा संस्कृतभाषायाम् अभिधेयलक्ष्यव्यङ्ग्यार्थाः सन्निविष्टा भवन्ति तथैव प्राकृतभाषायामपि । इत्थं संस्कृतप्राकृतयोः शब्दार्थरूपेण साम्यं व्यङ्ग्यम् । काव्यम् = काव्यस्य लक्षणं तु उक्तिविशेषः = उक्तिवैचित्र्यम् । वचनभङ्गिः उक्तिः । भाषा या भवति सा भवतु = संस्कृतप्राकृतादिषु कापि भाषा स्यात् । भाषायां न विशेषादरः, उक्तिवैचित्र्ये एवाग्रहः । अनेन व्याख्यानेन इदं ज्ञायते यत् प्राकृतभाषायाः उत्पत्तिः संस्कृताज्जाता । किञ्च, काव्यस्य स्वरूपम्—'उक्तिवैचित्र्यम्' अस्ति राजशेखरमते । आर्यावृत्तम् ॥ ७ ॥

स्थापक—(सोचकर) अच्छा तो, कवि संस्कृत को छोड़कर प्राकृत रचना में क्यों प्रवृत्त हुआ ?

पारिपार्श्विक—सभी भाषाओं में प्रवीण उस कवि ने कहा ही है—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अवि अ—

पस्सा सक्कअबंधा पाउअबंधो वि होइ सुउमारो ।
पुरिसमहिलाणं जेत्तिअमिहंतरं तेत्तिअमिमाणं ॥ ८॥

अपि च—

परुषाः संस्कृतबन्धाः प्राकृतबन्धोऽपि भवति सुकुमारः ।
पुरुषमहिलयोर्यावदिहान्तरं तावदनयोः ॥ ८ ॥

अन्वयः—सक्कअबंधा परुसा [होंति], पउअबंधो वि सुउमारो होइ । इह पुरिसमहिलाणं जेत्तिअं अंतरं [अत्थि] तेत्तिअं इमाणं [वि अत्थि] ॥ ८ ॥

व्याख्या—संस्कृतस्य बन्धाः संस्कृतबन्धाः=संस्कृतभाषायामुपनिबद्धाः संस्कृतप्रबन्धाः, काठिन्यात् परुषाः=कर्कशा भवन्ति । अपि च = किञ्च, प्राकृतबन्धः = प्राकृतभाषायामुपनिबद्धः प्राकृतबन्धः, सुकुमारः=सरलः प्रसादादिगुणयुक्तश्च भवति । तस्मात् इह = अस्मिन् संसारे, पुरुषाश्च महिलाश्च तासां पुरुषमहिलानां = नरनारीणां, यावद् अन्तरं = कार्कश्यकोमलत्वादिकृतो भेदः

[भाषान्तर में—संस्कृत आदि भाषाओं से प्राकृत आदि भाषाओं में] परिवर्तित होते हुए भी शब्द वे ही हैं अर्थविशेष (वाच्य, लक्ष्य और व्यङ्ग्य) भी वही हैं। काव्य तो उक्ति-विशेष (चमत्कारयुक्त शब्दार्थ) को कहते हैं। भाषा (संस्कृत अथवा प्राकृत) चाहे जो भी हो ॥ ७ ॥[1]

और भी—

संस्कृत के प्रबन्ध कठोर होते हैं। प्राकृत-प्रबन्ध सुकुमार (मधुर एवं सरस) होता है। पुरुषों और महिलाओं में जितना अन्तर होता है उतना ही अन्तर इन दोनों (संस्कृत एवं प्राकृत प्रबन्धों) में होता है ॥ ८ ॥[2]

---

१. म० मो० घोष के संस्करण में यह गाथा नहीं है। श्री एन० जी० सुरु ने इसे 'परुसा सक्कअबंधा' गाथा के बाद में दिया है ।

२. इससे कवि का प्राकृत और संस्कृत भाषा के प्रति क्या दृष्टिकोण था ? स्पष्ट होता है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थापकः—ता अप्पा किं ण वण्णिदो तेण ?
पारिपार्श्विकः—सुणदु (सुणसु) वण्णिदो ज्जेव तक्कालकईणं मज्झम्मि मिअंकलेहाकधाआरेण अवराइएण । जधा—

बालकइ कइराओ णिब्भअराअस्स तह उवज्झाओ ।
इअ जस्स पएहिं परंपराए माहप्पमारूढं ॥
(इअ जस्स परंपराए अप्पा माहप्पमारूढो) ॥ ९ ॥

स्थापकः—तदात्मा किं न वर्णितस्तेन ?
पारिपार्श्विकः—श्रुणु वर्णित एव तत्कालकवीनां मध्ये मृगाङ्कलेखा-कथाकारेण अपराजितेन । यथा—

बालकविः कविराजो निर्भय (निर्भर)-राजस्य तथोपाध्यायः ।
इति यस्य पदैः परम्परया माहात्म्यमारूढम् ॥
(इत्येतस्य परम्परया आत्मा माहात्म्यमारूढः) ॥ ९ ॥

तावदनयोः=संस्कृतप्राकृतयोः अन्तरमिति शेषः । यथा स्त्रियः सुकुमारा मधुराश्च भवन्ति तथैव प्राकृतप्रबन्धा अर्थाववोधने सरलाः पठने च श्रुतिसुखदा भवन्ति । यथा पुरुषाः क्लिष्टाः कठोराश्च भवन्ति तथैव संस्कृतप्रबन्धाः सन्ध्यादिनियम-जटिलत्वात् क्लिष्टाः श्रुतिकर्कशाश्च भवन्ति । राजशेखरकाले सर्वत्र प्राकृतभाषा जनभाषात्वेन व्यवहृता आसीत् तस्मात् सा सरला मधुरा चासीत् । इदानीं यद्यपि प्राकृतभाषाया उच्चारणं क्लिष्टं जातं तथापि रसमाधुरी अनुप्राससुषमा च यादृशी प्राकृतरचनासु तादृशी नान्यत्र इति । आर्या वृत्तम् ॥ ८ ॥

अन्वयः—बालकइ कइराओ तह णिब्भअराअस्स उवज्झाओ, इअ जस्स परम्पराए पएहिं माहप्पमारूढं ॥ ९ ॥

व्याख्या०—पूर्वं खलु बालकविः=कवित्वस्य प्रारम्भिकावस्थापन्नोऽ-

---

स्थापक—तो क्या उसने अपने विषय में कुछ नहीं लिखा है ?
पारिपार्श्विक—सुनिए, तत्कालीन कवियों में 'मृगाङ्कलेखा' नामक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सो अस्स कई सिरिराअसेहरो तिहुअणंपि धवलेंति ।
हरिणंक-पाडिसिद्धीअ णिक्कलंका गुणा जस्स ॥ १० ॥

सोऽस्य कविः श्रीराजशेखरस्त्रिभुवनमपि धवलयन्ति ।
हरिणाङ्कप्रातिषिद्ध्या निष्कलङ्का गुणा यस्य ॥ १० ॥

भिनवकविः बालभारतस्य रचयिता वा आसीत्, पश्चात् कविषु राजा राजते वा कविराजः = कविकुलशिरोमणिर्जातः । अनेन क्रमेण कालान्तरे तेन स्वपाण्डित्येन, न कस्यापि कृपया दुर्लभो राज्याश्रयोऽपि प्राप्तः । अतो लिखितम्—निर्भयराजस्य = तदाख्यस्य अधिपस्य, उपाध्यायः = गुरुरभवत् । इति = अनेन क्रमेण, परम्परया=अनुक्रमेण, राजशेखरः पदैः=विभिन्नोपाधिभिः, माहात्म्यम् = उत्कर्षम्, आरूढः = प्राप्तवान्, तस्य कीर्तिः सर्वत्र प्रासरदित्यर्थः । एवमयं राजशेखरः स्वयं महिमानं लब्धवान् न कस्यापि कृपया इति । कारणमाला-परिकरालङ्कारौ । आर्या वृत्तम् ॥ ९ ॥

अन्वयः—सो सिरिराअसेहरो अस्स कई जस्स णिक्कलंका गुणा हरिणंकपाडिसिद्धीअ तिहुअणं पि धवलेंति ॥ १० ॥

व्याख्या—सः = प्रसिद्धो बालकविः कविराजो निर्भयराजस्य उपाध्यायः राजशेखरः, अस्य = कर्पूरमञ्जरीनाम्नः सट्टकस्य, कविः = रचना-

---

कथा के रचयिता अपराजित (कवि) ने इसका वर्णन किया ही है । जैसे—[प्रारम्भिक अवस्था में] बालकवि, [युवावस्था में] कविराज और फिर [प्रौढ़ावस्था में] निर्भयराज (महेन्द्रपाल) का गुरु—इस पदक्रम से जिसने उत्कर्ष को प्राप्त किया है ॥ ९ ॥[1]

वे ही श्री राजशेखर इसके कवि हैं जिनके निर्मल गुण चन्द्रमा से प्रति-

---

१. 'बालकवि' आदि के क्रम से कवि का क्रमशः उत्कर्ष सूचित हो रहा है । अतः यहाँ कारणमाला अलङ्कार है—'यथोत्तरं चेत् पूर्वस्य पूर्वस्यार्थस्य हेतुता । तदा कारणमाला स्यात् । (का० प्र० १०।१२०) । 'बालकवि' आदि विशेषण यहाँ साभिप्राय उक्त हैं । अतः यहाँ परिकारालङ्कार भी है—'विशेषणैर्यत्सा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थापकः—ता केण समादिट्ठा पउंज्जध ?

पारिपार्श्विकः—चाहुआणकुलमउलि-मालिआ राअसेहरकइंदगेहिणी।

स्थापकः—तत्केन समादिष्टाः प्रयुङ्ग्ध्वम् ?

पारिपार्श्विकः—'चाहमान'-कुलमौलिमालिका राजशेखरकवीन्द्रगेहिनी।

कारोऽस्ति, यस्य=राजशेखरस्य, निष्कलङ्काः द्रस्य=दोषरहिता निर्मला गुणाः, हरिणः अङ्के यस्य तस्य हरिणाङ्कस्य=चन्द्रस्य प्रातिषिद्धया=प्रतिषेधेन निराकरणेन, त्रयाणां भुवनानां समाहारः त्रिभुवनं=लोकत्रयम्, द्वितीयान्तं पदम्, अपि, धवलयन्ति=प्रकाशयन्ति। चन्द्रः सकलङ्कः सन् स्वकिरणैः भूतलमात्रं प्रकाशयति राजशेखरस्तु निष्कलङ्कैः गुणैः त्रिभुवनमिति व्यङ्ग्यम्। उपमानादुपमेयस्याधिक्यवर्णनाद् व्यतिरेकालङ्कारः। आर्या वृत्तम् ॥ १० ॥

अन्वयः—चाहुआणकुलमउलिमालिआ राअसेहरकइंदगेहिणी सा अवन्तिसुंदरी भत्तुणो इअं किइं पउंजइउं इच्छइ ॥ ११ ॥

स्पर्द्धा करते हुए तीनों लोकों को प्रकाशित कर रहे हैं ॥ १० ॥'

स्थापक—अच्छा तो, किसके आदेश से यह अभिनय कर रहे हो ?

पारिपार्श्विक—'चौहान' कुल की अलङ्कारभूता कविराज श्रीराजशेखर

कूतैरुक्तिः परिकरस्तु सः'। (का० प्र० १०।११८)।

'इअ जस्स जएहिं' (इति यस्य जयैः) ऐसा पाठ होने पर 'आरोहण' जो चेतन का धर्म है उसे 'जय' के ऊपर आरोपित करने से 'उत्तरोत्तर उत्कर्ष की चरमसीमा को प्राप्त किया' यह अर्थ व्यङ्ग्य होगा। 'इअ अस्स परंपराए अप्पा माहत्तमारूढो' (इत्यस्य परम्परया आत्मा माहात्म्यमारूढः) ऐसा पाठ होने पर अर्थ होगा—'इस प्रकार परम्परया आत्मा (कवि राजशेखर) माहात्म्य को प्राप्त हुआ'। 'आरुढो' यहाँ भाव में 'क्त' प्रत्यय हुआ है।

१. 'णिक्कलंका' और 'तिहुअणं पि' पदों से उपमान चन्द्रमा की अपेक्षा उपमेय राजशेखर का अतिशय ज्ञात हो रहा है। अतएव व्यतिरेक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भत्तुणो किइमवंतिसुंदरी सा पउंजइउमेअमिच्छइ ॥ ११ ॥

किं च--

चंडवालधरणीहरिणंको चक्कवट्टिपअलाहणिमित्तं ।

एत्थ सट्टअवरे रससोत्ते कुन्तलाहिवसुअं परिणेइ ॥ १२ ॥

भर्तुः कृतिमवन्तिसुन्दरी सा प्रयोजयितुमेतामिच्छति ॥११॥

किञ्च,

चण्डपालधरणीहरिणाङ्कश्चक्रवर्तिपदलाभनिमित्तम् ।

अत्र सट्टकवरे रसस्रोतसि कुन्तलाधिपसुतां परिणयति ॥ १२ ॥

व्याख्या—चाहमानानां कुलं चाहमानकुलं तस्य चाहमानकुलस्य='चौहान'-नाम्ना प्रसिद्धस्य क्षत्रियवंशस्य, मौलिमालिका=शिरोमाल्यभूता कुलालङ्कारभूता वा, राजशेखरस्य कवीन्द्रस्य गेहिनी=पत्नी, सा = प्रसिद्धा 'अवन्तिसुन्दरी' नाम अवन्तिदेशस्य सुन्दरी वा, भर्तुः = स्वभर्तुः राजशेखरस्य, एतत् कृतिं = कर्पूर-मञ्जरीनामसट्टकं, प्रयोजयितुं = नाट्याभिनयेन प्रदर्शयितुम्, इच्छति = अभि-लषति । श्रीराजशेखरस्य पत्न्या आदेशात् एतस्य सट्टकस्य अभिनयः क्रियते अस्माभिर्नटैरिति शेषः । रथोद्धता वृत्तम् ॥ ११ ॥

अन्वयः—चण्डवालधरणीहरिणङ्को चक्कवट्टिपअलाहणिमित्तं रससोत्ते एत्थ सट्टअवरे कुंतलाहिवसुअं परिणेइ ॥ १२ ॥

की पत्नी 'अवन्तिसुन्दरी' अपने पति की इस रचना का अभिनय करवाना चाहती हैं ॥ ११ ॥

[शृङ्गारादि] रसों के स्रोत-स्वरूप इस सट्टक में चण्डपाल (चन्द्रपाल)

अलङ्कार है—'उपमानाद्यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः' । (का० प्र० १०.१०५) । यहाँ भारतीवृत्ति का अङ्ग 'प्ररोचना' भी है क्योंकि कवि-प्रशंसा के द्वारा यहाँ सहृदयों को आकर्षित किया गया है—'उन्मुखीकरणं तत्र प्रशंसातः प्ररोचना' । (दश० ३·६) ।

१. इससे सिद्ध है कि कवि के समय में ही इस सट्टक का अभिनय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थापकः—ता भाव ! एहि; अणंतरकरणिज्जं संपादेम्ह। जदो महाराअ-देवीणं (महाराअस्स देईए अ) भूमिअं घेत्तूण अज्जो (अज्जा)

स्थापकः—तद् भाव ! एहि; अनन्तरकरणीयं सम्पादयावः। यतो महाराजदेव्योः (महाराजस्य देव्याश्च) भूमिकां गृहीत्वा आर्य (आर्या)

व्याख्या—धरिण्याः=पृथिव्याः, हरिणाङ्कः=चन्द्रः धरिणीहरिणाङ्कः, चन्द्र-पाल एव धरणीहरिणाङ्कः चन्द्रपालधरणीहरिणाङ्कः=चन्द्रपालनामको भूमि-चन्द्रः, चक्रवर्तिनः पदं चक्रवर्तिपदं तस्य लाभः तस्य निमित्तं चक्रवर्तिपद-लाभनिमित्तं=चक्रवर्ति (सार्वभौम)-पदप्राप्त्यर्थम्, अत्र=अस्मिन्, रसानां शृङ्गारादीनां जलानां वा स्रोतः प्रवाहः यस्मिन् तत् रसस्रोतः तस्मिन् रस-स्रोतसि=शृङ्गारादिरसाप्लाविते, सट्टकवरे=श्रेष्ठरूपके, कुन्तलस्य एतद्देशस्य अधिपः तस्य कुन्तलाधिपस्य=कुन्तलदेशभूपतेः वल्लभराजस्य, सुतां=कन्यां, परिणयति=तया सह विवाहं स्थापयति। शृङ्गारादिरसपरिपूर्णमिदं सट्टकमिति। इत्थं सट्टकस्य अस्य इतिवृत्तमपि अभिधया उक्तम्। स्वागतावृत्तम्। रूपकालङ्कारः ॥ १२ ॥

जो पृथिवी का चन्द्रमा है, चक्रवर्ती (सार्वभौम राजा) के पद की प्राप्ति के लिए कुन्तल देश के राजा की पुत्री (कर्पूरमञ्जरी) के साथ विवाह करता है ॥ १२ ॥[1]

अतः, श्रीमान् ! आयें। इसके उपरान्त जो करणीय है उसे करें क्योंकि महाराज और देवी की भूमिका में आर्य और आर्यभार्या परदे के

किया गया होगा।

१. 'रस' पद से शृङ्गारादि रस तथा जल अर्थ करते पर श्लेष अलङ्कार होगा। यहाँ रूपक अलङ्कार भी है। नायक और सट्टक की प्रशंसा होने से 'प्ररोचना' भी है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अज्जभारिआ अ जवणिअन्तरे वट्टंति (चिट्ठदि) ।

[इति परिक्रम्य निष्क्रान्तौ]

॥ प्रस्तावना ॥

(ततः प्रविशति राजा देवी विदूषको विभवतश्च परिवारः । सर्वे परिक्रम्य यथोचितमुपविशन्ति ।)

राजा—देवि दक्खिणाहिवणरिंदणंदिणि ! वड्ढावीअसि इमिणा वसतारंभेण । जदो—

बिंबोट्ठे बहलं ण देंति मअणं णो गंधतेल्लाविला (इरा)
वेणीओ विरअंति लेंति (देंति) ण तहा अंगम्मि कुप्पासअं ।

आर्यभार्या च जवनिकान्तरे वर्तेते (तिष्ठति) ।

(इति परिक्रम्य निष्क्रान्तौ)

॥ प्रस्तावना ॥

(ततः प्रविशति राजा देवी विदूषको विभवतश्च परिवारः । सर्वे परिक्रम्य यथोचितमुपविशन्ति ।)

राजा—देवि दक्षिणाधिपनरेन्द्रनन्दिनि ! वर्धाप्यसेऽनेन वसन्तारम्भेण । यतः—

विम्बोष्ठे बहलं न ददति मदनं नो गन्धतैलाविला
वेणीर्विरचयन्ति ददति न तथाङ्गे कूर्पासकम् ।

भीतर तैयार हैं [पाठान्तर में अर्थ होगा—महाराज की देवी की भूमिका में आर्या आर्यभार्या परदे के अन्दर तैयार खड़ी हैं] ।

(इस प्रकार कहते हुए घूमकर दोनों 'स्थापक और पारिपार्श्विक' चले जाते हैं)

॥ प्रस्तावना समाप्त ॥

(इसके बाद राजा, देवी, विदूषक और वैभवानुरूप उनके परिजनों का प्रवेश होता है । सभी घूमकर यथोचित स्थान पर बैठ जाते हैं)

राजा—देवि ! दक्षिण देश के राजा की पुत्री ! इस वसन्तारम्भ के साथ वृद्धि को प्राप्त करें (अर्थात् आपको बधाई है) । क्योंकि—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जं बाला मुहकुंकुमम्मि वि घणे वट्टंति ढिल्लाअरा
तं मण्णे सिसिरं विणिज्जिअ बला पत्तो वसंतूसवो ॥ १३ ॥

देवी—देव ! अहं पि तुज्झ पडिवड्ढाविआ भविस्सं । जधा—

यद्बाला मुखकुङ्कुमेऽपि घने वर्तन्ते शिथिलादरा-
स्तन्मन्ये शिशिरं विनिर्जित्य बलात् प्राप्तो वसन्तोत्सवः ॥ १३ ॥

देवी—देव ! अहमपि तव प्रतिवर्धापयित्री (प्रतिवर्धिका) भविष्यामि । यथा—

अन्वयः—बाला विंबोट्ठे बहलं मअणं ण देंति । गंधतेल्लाविला वेणीओ णो विरअंति । तहा अंगम्मि कुप्पासअं ण लेंति । जं घणे मुहकुंकुमम्मि वि ढिल्लाअरा वट्टंति तं मण्णे सिसिरं बला विणिज्जिअ वसंतूसवो पत्तो ॥ १३ ॥

व्याख्या—बालाः = षोडशाब्दाः कुमार्यः 'बाला स्यात्षोडशाब्दा', बिम्बमिव ओष्ठः तस्मिन् बिम्बोष्ठे=बिम्बसदृशे ओष्ठे (-ओष्ठयोः), बहलं=विपुलं, माद्यतेऽनेनेति मदनं = विलेपनद्रव्यं, न ददति = न प्रयुञ्जते । गन्धयुक्तेन = सुगन्धितेन तैलेन आविलाः = सम्पृक्ताः गन्धतैलाविलाः = सुगन्धतैलावसिक्ताः, वेणीः = केशपाशान्, न विरचयन्ति = नालङ्कुर्वन्ति, तथा अङ्गे = वक्षःस्थले, कूर्पासकमपि = चोलिकामपि न ददति = न धारयन्ति । घने = सान्द्रे, मुखस्य = आननस्य कुङ्कुमे = लेपनद्रव्ये अपि शिथिलादराः = निष्प्रयत्ना अभिरुचिरहिता वा वर्तन्ते । तत् = तस्मात् कारणात्, मन्ये = संभावयामि यत् शिशिरं = शीत-कालं, बलात् = शक्तिप्रयोगेण, विनिर्जित्य = पराजित्य, वसन्तस्य उत्सवः वसन्तोत्सवः = मदनमहोत्सवः वसन्तर्तुमहोत्सवो वा, प्राप्तः = समायातः । प्राप्ते वसन्तकाले जनाः शीतनिवारकान् प्रति शिथिलादरा भवन्ति,

---

बालायें (षोडशवर्षीया युवतियाँ) बिम्बफलसदृश अपने ओठों पर प्रभूत मात्रा में विलेपन द्रव्य (क्रीम-विशेष) नहीं लगाती हैं । सुगन्धित तेलों से सुवासित करके वेणी की रचना नहीं करती हैं । शरीर पर चोली भी धारण नहीं करती हैं । अपने मुखों पर गाढ़े कुङ्कुम के लगाने में भी अत्यन्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

छोल्लंति दंतरअणाइं गए तुसारे ईसीस चंदणरसम्मि मणं कुणंति।
एण्हिं सुवंति घरमज्झिमसालिआसु पाअंतपुंजिअपडं मिहुणाइं पेच्छ ॥१४॥

(नेपथ्ये)

तक्षन्ति दन्तरत्नानि गते तुषारे ईषदीषच्चन्दनरसे मनः कुर्वन्ति।
इदानीं स्वपन्ति गृहमध्यमशालिकासु पादान्तपुञ्जितपटं मिथुनानि प्रेक्षस्व ॥१४॥

(नेपथ्ये)

तस्माज्ज्ञायते शीतकालो गतः, वसन्तश्चागतः। उत्प्रेक्षालङ्कारोऽनुप्रासश्च। 'बाला'-पदेन तासां विलासवत्त्वं व्यङ्ग्यम्। 'बालाः' इत्यस्यावृत्तेरर्थ-दीपकालङ्कारः ॥ १३ ॥

अन्वयः—एण्हि तुसारे गए दंतरअणाइं छोल्लंति। चंदणरसम्मि ईसीस मणं कुणन्ति। मिहुणाइं घरमज्झिमसालिआसु पाअंतपुंजिअपडं सुवंति, पेच्छ ॥ १४ ॥

व्याख्या—तुषारे=शीततौ, गते=व्यतीते सति, दन्ता एव रत्नानि यद्वा दन्ताः रत्नानीव दन्तरत्नानि=दन्तमणयः, तक्षन्ति=उन्मृजन्ति विकसन्ति वा। मणिसदृशाः दन्ताः उन्मार्जनेन स्फुरन्ति इत्यनेन विलासिनीनां कामिनीनाञ्च ओष्ठानां हासयुक्तत्वं व्यज्यते। किञ्च, चन्दनस्य=तदाख्यगन्धद्रव्यस्य, रसे=विलेपने, ईषद्-ईषद्=किञ्चित्-किञ्चित्, मनः=

शिथिल हैं। अतः मैं समझता हूँ कि शिशिर ऋतु को बलपूर्वक जीतकर (हटाकर) वसन्त ऋतु का महोत्सव आ गया है ॥१३॥'

देवी—देव ! मैं भी आपके लिए बधाई दूँगी। जैसे कि—

इस समय शीतऋतु के बीत जाने पर [स्त्री पुरुषों के] दाँत रूपी रत्न चमकने लगे हैं। वे चन्दनरस के लेप में थोड़ी-थोड़ी रुचि लेने लगे हैं। घरों के

---

१. कुप्पासअं=चोली। बाला=षोडशी। 'बालास्यात्षोडशाब्दा'। शिशिर ऋतु में ओष्ठादि को फटने से बचाने के लिये युवतियाँ क्रीम आदि का प्रयोग

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वैतालिकयोरेकः—जअ जअ पुव्वदिगंगणाभुअंग, चंपाचंपअकण्णऊर,

वैतालिकयोरेकः— जय जय पूर्वदिशाङ्गनाभुजङ्ग, चम्पाचम्पककर्णपूर,

अभिलाषं कुर्वन्ति। शीताभावात् चन्दनरसस्य लेपो भवेदितीच्छन्ति। इदानीं = वसन्तकाले, मिथुनानि = स्त्रीपुरुषयुगलानि, गृहस्य मध्ये या शालिका तासु गृहमध्यशालिकासु = आवासमध्यस्थित-अङ्गणादिप्रदेशेषु, पदयोः अन्ते पदान्ते तेषु पदान्तेषु = चरणान्तिमभागेषु, पुञ्जिता = सङ्कोचिता, पटाः = आवरणवस्त्राणि यस्मिन् तत् पादान्तपुञ्जितपटं, स्वपन्ति = शयनं कुर्वन्ति, इति प्रेक्षस्व = पश्य। स्वभावोक्तिरलङ्कारः। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ १४ ॥

मध्य भाग में स्थित आँगनों (ओसारों) में सोते हुए स्त्री-पुरुष-युगलों को जिनकी चादर उनके पादान्त (पैरों के अग्रभाग) में सिकुड़ी पड़ी हुई है; आप देखें ॥१४॥[1]

(नेपथ्य में)

प्रथम वैतालिक (दो वैतालिकों में से एक)—हे पूर्वदिशा रूपी नायिका के प्रेमी ! चम्पा (भागलपुर) के चम्पक-कर्णपूर (चम्पा के फूलों का बना

करती थीं। वसन्त के आ जाने पर उनकी आवश्यकता नहीं रही। इससे कामिनियों का विलास व्यञ्जित होता है। 'बाला' एक कारक का देंति, विरअंति, लेंति आदि अनेक क्रियाओं के साथ सम्बन्ध होने से दीपक अलंकार है—'अनेक शब्दोपादानात्क्रियैवैकात्र दीप्यते'। 'देंति देंति' पाठ होने पर कथितपदता दोष की संभावना थी परन्तु एक स्थल पर लेंति पाठ होने से तथा आगे विरअंति पद के आने से छेकानुप्रास हो गया है 'सोऽनेकस्य सकृत्पूर्वः'। 'मन्ये' पदप्रयोग से उत्प्रेक्षा अलङ्कार होगा।

१. 'घरमज्झिमसालिआसु' से स्पष्ट है कि घरों के भीतर सोना बंद कर दिया है और अब हल्की गर्मी होने से आँगन में सोने लगे हैं। 'पाअन्त' पद का प्रयोग करने से वस्त्र की अपेक्षा ही नहीं रह गई है यह ध्वनित होता है। 'मिहुणाइँ' से विरह का असह्यत्व व्यङ्ग्य है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लीलाणिज्जिअराढदेस (लीलाणिज्जिअराढाचंगत्तण, राढाणिज्जिद-राढाचंगत्तण, राढाजणिदराढ), विक्कमक्कंतकामरूव (चङ्गत्तणणिज्जिदकामरूव), हरिकेलीकेलिआर, अवमणिदजच्चसुवण्णवण्ण (अवमण्णिअकण्णसुवण्णदाण) सव्वंगसुन्दरत्तणरमणिज्ज, सुहाअ दे भोदु सुरहिसमारंभो । इध हि—

लीलानिर्जितराढदेश (लीलानिर्जितराढासौन्दर्य, राढा-निर्जितराढासौन्दर्य, राढाजनितराढ), विक्रमाक्रान्तकामरूप (सौन्दर्यनिर्जितकामरूप), हरिकेलीकेलिकारक, अपमानितजात्यसुवर्णवर्ण (अपमानितकर्णसुवर्णदान) सर्वाङ्गसुन्दरत्वरमणीय सुखाय ते भवतु सुरभिसमारम्भः । इह हि—

कर्णाभूषण अर्थात् पालनकर्त्ता) ! राढ़देश (वर्दवान-उत्तर बंगाल) को खेल-खेल में ही जीत लेने वाले । कामरूप देश (आसाम प्रान्त का पश्चिम भाग) को अपने पराक्रम से आक्रान्त (पराजित) करने वाले ! हरिकेलि (आसाम का एक भाग अथवा इस नाम की कोई स्त्री) के साथ क्रीड़ा करने वाले ! अभिनव सुवर्ण के रूप को अपने रूप से तिरस्कृत करने वाले ! सभी अङ्गों के सौन्दर्य के कारण रमणीय आपके लिए वसन्त ऋतु का समागम सुखकर हो ।[१] यहाँ पर—

---

१. भुअंग = प्रेमी । 'अवमण्णिअकण्णसुवण्णदाण' ऐसा पाठ होने पर अर्थ होगा । 'कर्ण-सुवर्ण' (मुर्शिदाबाद और उसके आस-पास का प्रदेश) के दान को तुच्छ समझने वाले अर्थात् उससे भी अधिक दान देने वाले । 'चङ्गत्तणणिज्जिदकामरूव' अपने सौन्दर्य से काम के रूप को जीतने वाले अथवा अपने नानाकलाकौशल (चङ्गत्तण) से कामरूप देश को जीतने वाले । वासुदेवकृत टीका में लिखा है —'कामस्य रूपमिति व्याख्या । प्रक्रमभङ्गापत्तेः, चङ्गत्वं नानाकलाकौशलत्वम् ।।' यदि यहाँ हरि-केली की तरह दोनों अर्थ माने जायेंगे तो कोई आपत्ति नहीं होगी अपितु अर्थश्लेष होगा । 'पुव्वदिअंगणाभुअंग' यहाँ रूपक है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पण्डीणं गंडवालीपुलअणचवला कंचिवालावलाणं
माणं दोखण्डअंता रइरहसअरा चोलसीमंतिणीणं।
कण्णाडीणं कुणंता कुरल (चिउर) तरलणं कुंतलीणं पिएसुं
गुंफंता णेहगंठि मलअसिहरिणो सीअला (सिंघला) एंति वाआ ॥१५॥

पाण्डीनां गण्डपालीपुलकनचपलाः काञ्चीवालावलीनां
मानं द्विः खण्डयन्तो रतिरभसकरा चोलसीमन्तिनीनाम्।
कर्णाटीनां कुर्वन्तो कुरलतरलनं कुन्तलीनां प्रियेषु
गुम्फन्तः स्नेहग्रन्थिं मलयशिखरिणः शीतला यान्ति वाताः ॥१५॥

अन्वयः—पण्डीणं गंडवाली-पुलअणचवला, कंचिवालावलाणं माणं दो खंडअंता, चोलसीमंतिणीणं रइरहसअरा, कण्णाडीणं कुरलतरलणं कुणंता, कुंतलीणं पिअेसुं णेहगंथि गुंफंता मलअसिहरिणो सीअला वाआ एंति ॥ १५ ॥

व्याख्या— पाण्डीनां=पाण्डचदेशोद्भवानां कामिनीनां, गण्डपाल्योः=कपोलयोः पुलकोत्पादने=रोमाञ्चोत्पादने, चपलाः=प्रवीणाः, काञ्चीबालानां=काञ्चीदेशोद्भवानां तरुणीनां याः आवलयः=पङ्क्तयः तासां काञ्चीवालावलीनां, मानं=प्रियेषु प्रणयकोपं, द्विः=वारद्वयं सायं प्रातरिति, खण्डयन्तः=भेदयन्तः, चोलदेशस्य सीमन्तिन्यः तासां चोलसीमन्तिनीनां=

पाण्ड्य देश (तिनेवली=मलयपर्वत और ताम्रपर्णी नदी के पास) की कामिनियों के कपोलों में रोमाञ्च उत्पन्न करने में चपल स्वभाव वाली, काञ्ची देश (काञ्जीवर, प्राचीन द्रविड़ देश की राजधानी) की रमणियों के प्रणयकोप को दो वार (सायं तथा प्रातः) भङ्ग करने वाली, चोल देश (कावेरी नदी का तटवर्ती स्थान=संभवतः मैसूर का दक्षिणी भाग) की सीमन्तिनियों को रतिक्रीड़ा के लिए बलात् प्रेरित करने वाली, कर्नाट देश (कर्नाटक) की रमणियों के केशपाशों को कम्पित करने वाली तथा कुन्तल देश (हैदराबाद का दक्षिण-पश्चिम भाग) की युवतियों को अपने प्रियों की स्नेहग्रन्थि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(अत्रैव) द्वितीयः—

जाअं कुंकुमपंकलीढमरढी (रमणी) गण्डप्पहं चंपअं
थोआवट्टिअदुद्धमुद्धकलिआ (कुसुमा) पंफुल्लिआ मल्लिआ ।

(अत्रैव) द्वितीयः

जातं कुङ्कुमपङ्कलीढमहाराष्ट्रीगण्डप्रभं चम्पकं
स्तोकावर्तितदुग्धमुग्धकलिका (कुसुमा) प्रोत्फुल्लिता मल्लिका ।

चोलदेशोद्भवानां रमणीनां रती = सुरतक्रीडायां रभसं = वेगं कुर्वन्तीति = उत्पादयन्तीति ते रतिरभसकराः, कर्णाटीनां = कर्णाटदेशजन्यानां विलासिनीनां, कुरलान्=केशान् तरलयतीति = कम्पयतीति तं कुरलतरलणं (अथवा कुन्तलानां= केशपाशानां तरलनं कुन्तलतरलनम्), कुर्वन्तः = उत्पादयन्तः, कुन्तलीनां = कुन्तलदेशीयानां सुन्दरीणां, प्रियेषु=कान्तेषु, स्नेहग्रन्थि = प्रणयपाशं, गुम्फन्तः = प्रकटयन्तः, मलयशिखरिणः = मलयाख्यपर्वतस्य, शीतलाः = शिशिराः, वाताः = पवनाः, वान्ति = वहन्ति । मलयवायवः कामिनीनां कामोन्मादं जनयतीति भावः । पाण्डयादिदेशानां नामोच्चारणाद् राज्ञश्चन्द्रपालस्य तत्र तत्र राज्यमासीत् इति व्यज्यते अन्यथा विपक्षदेशवर्णनं क्रोधावहत्वादनुचितं स्यात् ।। १५ ।।

(आलिङ्गन-पाश) में बाँधने वाली मलयाचल के शिखर भाग से बहने वाली शीतल हवा बह रही है ।। १५ ।।[१]

द्वितीय वैतालिक—कुंकुम (केशर) के रंग से अवलिप्त महाराष्ट्र की

---

१. पाण्डयादि देशों का नामोल्लेख होने से वहाँ राजा चन्द्रपाल का प्रभुत्व व्यञ्जित है क्योंकि विपक्ष देश का वर्णन करने से प्रतिरोध की संभावना होती है। 'चोड-चोडालआणं' (चोल-चोलालकानाम्) पाठ का अर्थ होगा—'चोल देश की रमणियों की चोली और अलक' । 'लोल-चोल-प्पिआणं' (लोलचोलप्रियाणाम्) पाठ का अर्थ होगा—'चोलदेश की चञ्चल प्रियाओं के ।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मूले सामलमग्गलग्गभसलं लक्खिज्जए किंसुअं
पिज्जंतं भमरेहिं (भसलेहि) दोसु (दोहि) वि दिसाभाएसु लग्गेहि व ॥१६॥

मूले श्यामलमग्रलग्नभ्रमरं लक्ष्यते किंसुकं
पीयमानं भ्रमराभ्यां द्वयोरपि दिशाभागयोः लग्नाभ्यामिव ॥ १६ ॥

अन्वयः—कुंकुमपंकलीढमरढीगण्डप्पहं चंपअं जादं। थोआवड्डिअदुद्ध-मुद्धकलिआ मल्लिआ पंफुल्लिआ। मूले सामलं अग्गलग्गभसलं किंसुअं दोहि वि दिसाभाएसु लग्गेहि भमरेहि पिज्जंतं व लक्खिज्जए ॥ १६ ॥

व्याख्या—कुङ्कुमस्य पङ्कस्तेन कुङ्कुमपङ्केन=कुङ्कुमद्रव्यरसेन लीढयोः=लिप्तयोः, महाराष्ट्रीणां=महाराष्ट्रोद्भवानां कामिनीनां गण्डयोः= कपोलयोः प्रभा इव प्रभा=कान्तिः इव कान्तिः अस्ति यस्य तत् 'कुङ्कुमपङ्कलीढमहाराष्ट्रीगण्डप्रभं, चम्पकं = चम्पककुसुमं, जातम् = अभवत्। स्तोकं = स्वल्पम् आवर्तितं = विलोडितं यद् दुग्धं = पयः तद्वत् मुग्धाः = मनोहराः

कामिनियों के कपोलों की आभा के समान (कुछ पीत एवं रक्त वर्ण) चम्पा का फूल हो गया है। कुछ मथे हुए दूध की तरह सुन्दर कलियों वाली मल्लिका-लता विकसित हो गयी है। मूल भाग में (स्वभावतः) काला और अग्रभाग में भ्रमर के बैठने से काला किंशुक (पलाश) का फूल ऐसा मालूम पड़ रहा है मानों भौंरे उसके दोनों भागों में बैठकर रसपान कर रहे हों ॥१६॥[१]

'णेह' (स्नेह) में 'उपरि लोपः' सूत्र से 'स्' लोप। अथवा 'ह्स्नस्नणक्षणस्नां ण्हः' से 'स्न' को 'ण्हः' आदेश। 'दोहि' में 'द्वेर्दो' से द्वि को दो आदेश।

कारकहेतु अलंकार 'हेतुश्च सूक्ष्मलेशौ च वाचामुत्तमभूषणम्। कारकज्ञापकौ हेतू तौ चानेकविधौ यथा। का० दण्डी २:२३५।

१. महाराष्ट्री स्त्रियों के कपोल गौरवर्ण के होते हैं अतः 'रमणी' की जगह 'मरढी' पाठ अधिक सुन्दर है इससे गौरातिशय व्यञ्जित होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा—पिए विब्भमलेहे एक्को (को) अहं वड्ढावओ तुज्झ । एक्का (का) तुमं पि वड्ढाविआ मज्झ । किं उण दुवे वि (दो वि) अम्हे वड्ढाविआ कंचणचंड-रअणचंडेहिं बंदीहिं ? ता विब्भमपअट्टावअं (विब्भम-गब्बप्पअट्टाविअं) तरुणीणं, णट्टावअं मलअमारुदन्दोलिदचन्दणलदाण-च्चणीणं चारुप्पवंचिदपंचमं कलकंठिकंठेसु, कंदलिदकंदप्पकोअंडदंड-

---

राजा—प्रिये विभ्रमलेखे ! एको (को) ऽहं वर्धापकस्तव । एका (का) त्वमपि वर्धापिका मम ? किं पुनर्द्वावपि आवां वर्धापितौ काञ्चनचण्डरत्न-चण्डाभ्यां बन्दिभ्याम् ? तद्विभ्रमप्रवर्तकं तरुणीनाम्, नर्तकं मलयमारुतान्दोलित-चन्दनलतानर्तकीनाम्, चारुप्रपञ्चितपञ्चमं कलकण्ठीकण्ठेषु, कन्दलितकन्दर्पको-

---

कलिकाः = कुड्मलाः यस्या सा स्तोकावर्तितदुग्धमुग्धकलिका ताभिः युक्ता मल्लिका = मल्लिकाकुसुमस्य लता, प्रोत्फुल्लिता = विकसिता । मूले = अधोभागे, श्यामलं = प्रकृत्या कृष्णवर्णम्, अग्रे = शिखाभागे, लग्नः = संयुक्तः, भ्रमरः = षटपदः यस्य तद् अग्रलग्नभ्रमरं, किंशुकं = किंशुकपुष्पं [वर्तते] । अतः दिशां भागेषु लग्नाभ्यां = द्वयोरपि दिशाभागयोः संसक्ताभ्यां, द्वाभ्यां भ्रमराभ्यां = षट्पदाभ्यां पीयमानमिव किंशुकं लक्ष्यते = प्रतीयते । उपमा—उत्प्रेक्षा—स्वभावोक्तयोऽलङ्काराः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।। १६ ।।

राजा—प्रिये विभ्रमलेखे ! मैंने अकेले तुम्हें बधाई दी और तुमने अकेले मुझे बधाई दी। हम दोनों को कंचनचन्द्र और रतनचन्द्र वन्दियों ने बधाई दी। (पाठान्तर में—मैंने तुम्हें क्या बधाई दी और तुमने भी मुझे क्या बधाई दी ? हम दोनों को कंचनचन्द्र और रतनचन्द्र वन्दियों, ने क्या बधाई दी ?)

मरढी (महाराष्ट्री) 'दंष्ट्रादि' सूत्र से मरढी आदेश होकर मरढी सिद्ध हुआ है । थोअ (स्तोकः) में 'स्तस्य थः' से 'स्त' को 'थ' हुआ । पश्चात् 'क' लोप । स्तोक पद अत्यन्त सदृश्य बतलाने के लिये प्रयुक्त है । उपमा, उत्प्रेक्षा और स्वभावोक्ति अलङ्कार हैं । यथा—'नानावस्थं पदार्थानां रूपं साक्षाद्विवृण्वती । स्वभावोक्तिश्च जातिश्चेत्याद्या सालंकृतिर्यथा' ।।दण्डी ३-८५ ।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खंडिदकंडचंडिमं (कोदण्डचण्डिमं), सिणिद्धबंधवं वसुंधरापुरंधीए पसारिदप्पसदिप्पमाणेहिं अच्छीहिं महूसवं (महोच्छवं) जधिच्छं पेक्खदु देवी ।

देवी—जधा णिवेदिदं बंदीहिं । पअट्टा ज्जेव मलआणिला ।

दण्डदण्डखण्डितकाण्डचण्डिमानम्, स्निग्धबान्धवं वसुंधरा-पुरन्ध्र्याः । प्रसारितप्रसृतिप्रमाणे अक्षिणी मधूत्सवं यथेच्छं प्रेक्षतां देवी ।

देवी—यथा निवेदितं बन्दिभ्याम् । प्रवृत्ता एव मलयानिलाः ।

हे देवी ! तरुणियों में उन्माद (विलास एवं गर्व) को उत्पन्न करने वाला, मलयाचल की हवाओं से आन्दोलित होकर चन्दन के पेड़ पर चढ़ी हुई लतारूपी नर्तकियों को नचाने वाला, कोकिलों के कण्ठों में मधुर पञ्चम स्वर को उत्पन्न करने वाला, नवजात कामदेव के धनुष के डडे से प्रकृष्ट प्रणय-कोप को खण्डित करने वाला (पाठान्तर में—क्रुद्ध कामदेव के धनुष की तरह प्रचण्ड) तथा पृथिवीरूपी नायिका के स्नेहशील बन्धु वसन्त के उत्सव को वलिस्त-प्रमाण आँखों को फैलाकर (जी भरकर) देखो ।[१]

देवी—जैसा कि (उचित ही) वंदियों ने कहा है । मलयानिल प्रवाहित

---

१. कंड = प्रचण्ड । तरट्टी = प्रौढ़ा अथवा होशियार स्त्री (देशी शब्द है) । 'दंष्ट्रादि'से आदेश होकर सिद्धी होगी । पसारिय-पसप्पमाणेहि अच्छीहिं (प्रसारितप्रसृतिप्रमाणे अक्षिणी)-हथेली के बराबर आँखों को फैलाकर अर्थात् जी भरकर या आँखें फाड़-फाड़कर । इससे वसन्तोत्सव का अतिशय व्यञ्जित होता है ।

यहाँ हेतु तथा रूपक अलंकार हैं । 'णहावअं' यहाँ समाधि अलंकार है 'अन्यधर्मस्ततोऽन्यत्र लोकसीमानुरोधिना । सम्यगाधीयते यत्र स समाधिः स्मृतो यथा । का० १·९३ दण्डी ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तथा हि (अ)—

लंकातोरणमालिआतरलिणो कुंभुब्भवस्सासमे
मंदंदोलिअचंदणद्दुमलदाकप्पूरसंपक्किणो।
कंकोल्लीकुलकंपिणो फणिलदाणिप्पट्टणट्टावआ
चंडं चुंबिदतंबपण्णिसलिला वाअंति चेत्ताणिला ॥ १७ ॥

तथा हि (च)—

लङ्कातोरणमालिकातरलिनः कुम्भोद्भवस्याश्रमे
मन्दान्दोलितचन्दनद्रुमलताकर्पूरसम्पर्किणः ।
कङ्कोली - कुलकम्पिनः फणिलतानिंष्पष्टनर्तका-
श्चण्डं चुम्बितताम्रपर्णीसलिला वान्ति चैत्रानिलाः ॥ १७ ॥

अन्वयः – लंकातोरणमालिआतरलिणी कुंभुब्भवस्सासमे मंदंदोलिअचन्दण-द्दुमलदाकप्पूरसंपक्किणो कंकोल्लीकुलकंपिणो फणिलदाणिप्पट्टणट्टावआ चंडं चुविदतंबपण्णिसलिला चेत्ताणिला वाअंति ॥ १७ ॥

व्याख्या—लङ्कायाः = सिंघलस्य तोरणं = बहिर्द्वारं तत्र लम्बमानाः या मालिकाः = हारावलयः तासां तरलिनः = कम्पिनः लङ्कातोरणमालिका-तरलिनः, कुम्भोद्भवस्य = अगस्त्यमुनेः, आश्रमे = तपोवने, मन्दम् = ईषत्, आन्दोलिताः = प्रकम्पिताः ये चन्दनद्रुमाः = चन्दनवृक्षाः तेषामुपरि वर्तमानाः या लताः, चन्दनद्रुमाः च लताकर्पूराश्चेति चन्दनद्रुमलताकर्पूराः तेषां सम्पर्किणः = संसर्गिणः, कङ्कोलीनां = तदाख्यानां वृक्षाणां कुलानि कम्पयन्तीति कङ्कोलीकुलकम्पिनः = कङ्कोलीवृक्षसमूहान्दोलकाः फणिलता तासां फणि-

---

हो रहा है। जैसे कि—

लंका [नगरी] के तोरणद्वार की (बहिःद्वार पर लटकने वाली) मालाओं को तरलित करने वाली, अगस्त्य ऋषि के आश्रम में चन्दन [के पेड़ पर चढ़ी हुई] लताओं को मन्द-मन्द आन्दोलित करने वाली, कपूर की लताओं से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अवि अ—

माणं मुंचध देह वल्लहजणे दिट्ठिं तरंगुत्तरं
तारुण्णं दिअहाइ पंच दह वा पीणत्थणुत्थंभणं।

अपि च—

मानं मुञ्चत ददत वल्लभजने दृष्टिं तरङ्गोत्तरां
तारुण्यं दिवसानि पञ्च दश वा पीनस्तनस्तम्भनम्।

लतानां = ताम्बूलवल्लीनां निष्पष्टम् = अत्यधिकं, नर्तकाः, चण्डं = तीव्रं चुम्बितं = आलिङ्गितं ताम्रपर्ण्याः = तदाख्यनद्याः सलिलं = जलं यैः ते चैत्रानिलाः = चैत्रमासीयाः वायवः, वान्ति = प्रवहन्ति। अनेन दक्षिणपवनस्य शैत्यातिशयजनकत्वं व्यज्यते। अनुप्रास–समाधि–अर्थश्लेषालङ्काराः। शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्। अत्र प्रसादमाधुर्यसौकुमार्यअर्थव्यक्तयः गुणा द्रष्टव्याः ॥१७॥

अन्वयः—माणं मुंचध, वल्लहजणे तरंगुत्तरं दिट्ठिं देह, पीणत्थणत्थंभणं तारुण्णं पंच दह वा दिअहाइ, इत्थं कोइलमंजुसिंजणमिसा देवस्स पंचेसुणो भुअणे सव्वंकसा आण व्व चित्तमहूसवेण दिण्णा ॥ १८ ॥

संस्पृष्ट कंकोली (शीतल चीनी का वृक्ष विशेष या कालीमिर्च या अशोक वृक्ष) के समुदाय को कम्पित करने वाली, फणिलताओं (नागलता या ताम्बूल लता) को अत्यधिक नचाने वाली तथा ताम्रपर्णी नदी के जल का प्रागाढ़ चुम्बन करने वाली मधुमास की हवायें वह रही हैं ॥ १७ ॥[१]

[इस मधुमास में हे तरुणियो !] प्रणयमान को छोड़ो तथा अपने प्रेमियों में प्रेमभरी (अत्यन्त उत्सुक) दृष्टि को लगाओ क्योंकि उन्नत स्तनों से युक्त

१. 'णिप्पट्ट' देशी शब्द है और इसका अर्थ है—'अत्यधिक'। यदि इसे 'निःस्पष्ट' से उत्पन्न मानेंगे तो अर्थ होगा—अस्पष्ट, अव्यक्त।

इससे वायु के मन्द, सुगन्ध और शीतल इन तीन गुणों की व्यञ्जना होती है। यहाँ समाधि, अर्थश्लेष और अनुप्रास अलंकार हैं। प्रसाद, माधुर्य, सौकुमार्य और अर्थव्यक्ति गुण हैं। 'प्रसिद्धार्थपदत्वं यत् स प्रसादोऽभि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इत्थं कोइलमंजुसिंजणमिसा देवस्स पंचेसुणो
दिण्णा चेत्तमहूसवेण भुअणं (सहसा) आण व्व सव्वंकसा ॥१८॥

इत्थं कोकिलमञ्जुसिञ्जनमिषाद्देवस्य पञ्चेषो-
र्दत्ता चैत्रमहोत्सवेन भुवने आज्ञेव सर्वङ्कषा ॥ १८ ॥

व्याख्या—प्रियजने मानं = प्रणयकोपं, मुञ्चत = परित्यजत,, वल्लभ-जने = प्रियजने, तरङ्गेण उत्तरां तरङ्गोत्तराम् = औत्सुक्ययुक्तां प्रेमपूर्णां सकटाक्षां वा दृष्टिं ददत, स्वप्रियतमं प्रति सोत्कण्ठमवलोकयतेति। पीनयोः= स्थूलयोः स्तनयोः=पयोधरयोः स्तम्भनं = स्थितिः यस्मिन् तत् तारुण्यं = यौवनं पञ्च दश वा दिवसानि=दिनानि तिष्ठति न चिरन्तनमिति। इत्थम् =अनेन प्रकारेण, भुवने = संसारे, कोकिलानां = पिकानां मञ्जु = मनोहरं यत् शिञ्जनं = कूजनं तस्य मिषात् = व्याजेन, देवस्य = भगवतः, पञ्च इषवः सन्ति यस्य तस्य पञ्चेषोः = कामदेवस्य (अरविन्दमशोकञ्च चूतं च नव-मल्लिका। नीलोत्पलं च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायकाः।) सर्वं कषति या सा सर्वङ्कषा = सर्वत्रप्रसारिणी, आज्ञा इव = आदेश इव चैत्रेण = चैत्रमासीयेन महोत्सवेन = वसन्तोत्सवेन, दत्ता = प्रचारिता, मञ्जुशिञ्जनमिषादित्यत्रापह्नुतिः, आज्ञा इवेत्युत्प्रेक्षा। शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ १८ ॥

जवानी पाँच अथवा दस दिन की है। इस प्रकार कोयल की मधुर तान (कूक) के बहाने कामदेव की सर्वव्यापी आज्ञा मानो चैत्र महोत्सव के द्वारा संसार में प्रसारित की जा रही है॥ ५८ ॥[१]

धीयते। मा प्रथक्पदता वाक्ये तन्माधुर्यमिति स्मृतम्। अनिष्ठुराक्षरप्रायं सुकुमारमिति स्मृतम्। यत्र सम्पूर्णवाक्यत्वमर्थव्यक्तिं वदन्ति ताम्।

१. सव्वंकसा = सर्वव्यापी। पंचेसुणो—कामदेव के पाँच बाण (पञ्च इषवः सन्ति यस्य तस्य पञ्चेषोः)—अरविन्द, अशोक, आम, नवमल्लिका और नीलकमल। 'अरविंदमशोकञ्च चूतं च नवमल्लिका। नीलोत्पलं च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायकाः। अमरकोष।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदूषकः—भो, तुम्हाणं सव्वाणं मज्झे अहं एक्को कालक्खरिओ, जस्स मे ससुरससुरो परघरेसु (पंडिअघरे) पोत्थअभारं (पोत्थाइ) वहंतो आसि ।

चेटी—(विहस्य) तदो कमागदं दे (अण्णएण) पंडिच्चं ।

विदूषकः—भोः ! युष्माकं सर्वेषां मध्येऽहमेकः कालाक्षरिकः यस्य, मे श्वशुरश्वशुरः परगृहेषु (पण्डितगृहे) पुस्तकभारं (पुस्तकानि) वहन्नासीत् ।

चेटी—(विहस्य) ततः क्रमागतं ते पाण्डित्यम् ।

विदूषक—भो ! तुम सब लोगों में मैं ही एक कालाक्षरिक (कालाक्षराणि वेत्ति = काले अक्षरों को जानने वाला पण्डित अथवा कालानि अक्षराणि सर्वाणि यस्य सः = जिसे सभी अक्षर काले हैं, ऐसा मूर्ख) हूँ जिसके ससुर का ससुर दूसरों के घरों में पुस्तकों का भार ढोया करता था ।[१]

चेटी—(हँसकर) तब तो तुम्हारा पाण्डित्य क्रमागत (वंश परम्परा

'क्षिजणमिसा' के द्वारा कोयल की मञ्जुल तान का प्रतिषेध करके कामदेव की आज्ञा की स्थापना होने से अपह्नुति अलंकार है । "आण व्व' यहाँ उत्प्रेक्षा है । इस तरह दोनों का संकर है ।

'मान' का लक्षण 'स मानो नायिका यस्मिन्नीर्ष्यया नायकं प्रति । धत्ते विकारमन्यस्त्रीसङ्गदोषवशाद्यथा ॥' 'तरंगुत्तरं'=तरंग की तरह दृष्टि । इससे नेत्र-विकार बतलाया है—कल्लोला इव यत्कान्तिर्विच्छर्दस्तत्तरङ्गितम् । चैत्र मास में मधूत्सव (वसंतोत्सव) मनाया जाता है । विप्रलम्भ शृङ्गार है । कोयल की तान विभाव, दृग्विकारादि अनुभाव तथा निर्वेदादि व्यभिचारी भाव हैं ।

१. पुस्तकों के जो अक्षर होते थे वे कृष्ण वर्ण के होते थे । यहाँ विदूषक यह कहना चाहता है कि मेरे ससुर के ससुर पुस्तकें ढोया करते थे जिससे मैं भी पुस्तकों का पण्डित हो गया हूँ ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदूषकः--(सक्रोधम्) आ दासीए धूदे ! भविस्सकुट्टणि ! णिल्लक्खणे ! अविअक्खणे (विअक्खणे) ! ईदिसोहं मुक्खो जो तए वि उवहसीआमि ? अण्णं च, हे परपुत्तविट्टालिणी ! रच्छालोट्टणि! भमरटेंटे ! टेंटाकराले ! कोससदापहारिणी ! दुट्ठ (तुडिद) - संघडिदे ! परंम्परापंडिच्चस्स मह किं दूसणं आसि। पेक्ख अकालजलदवंससंभूदाणं परंपराए पंडिच्चं अधवा हत्थे कंकणं किं दप्पणेण ?

विदूषकः— (सक्रोधम्) आः दास्याः पुत्रि ! भविष्यत्कुट्टिनि ! निर्लक्षणे ! अविचक्षणे (विचक्षणं) ! ईदृशोऽहं मूर्खो यस्त्वयाप्युपहस्ये ? अन्यच्च हे परपुत्रविट्टालिनि ! रथ्यालुण्ठिनि ! भ्रमरटेण्टे ! टेण्टाकराले ! कोषशतापहारिणि ! दुष्ट (त्रुटित)-संघटिते । परम्परा-पाण्डित्यस्य मम किं दूषणमासीत् । प्रेक्षस्व, अकालजलदवंशसंभूतानां परम्परया पाण्डित्यम् । अथवा हस्ते कङ्कणं किं दर्पणेन ?

से प्राप्त) है ।[1]

विदूषक—(क्रोधपूर्वक) अरी दासी की पुत्रि ! भविष्यकुट्टिणी (आगे चलकर कुट्टिनी बनने वाली) ! निर्लक्षणे ! अविचक्षणे (मूर्ख) ! क्या मैं ऐसा मूर्ख हूँ कि तेरे द्वारा भी मेरा उपहास हो । और भी; अरे ! परपुत्रभ्रंशिनी (दूसरों के पुत्रों को भ्रष्ट करने वाली अर्थात् परपुरुषलम्पटा), रथ्यालुण्ठिनी (सुरापानादि करके गलियों में लोटने वाली), भ्रमरटेण्टे (भ्रमर की तरह इधर-उधर घूमने वाली अर्थात् कुचेष्टावाली), टेण्टाकराले (व्यर्थ का बकवास करने वाली=झगड़ालू), कोश-शतापहारिणी (झूठी सैकड़ों कसमें खाकर पैसों का अपहरण करने वाली) तथा दुष्टसंघटिते (दुर्जनों से घिरी रहने वाली) (पाठान्तर में संघटितों में—फूट डालने

---

१. यह विचक्षणा की व्यङ्ग्योक्ति है । वस्तुतः तुम महामूर्ख हो जो ऐसा कह रहे हो । क्या कोई पुस्तकों के ढोने से पण्डित बनता है तुमने तो वह भी नहीं किया है (तुम्हारे ससुर के ससुर ने किया है) ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विचक्षणा—(विभाव्य) एवं णेदं, धावंतस्स तुरंगमस्स (तुरंगस्य) सिग्घत्तणे किं सक्खिणो पुच्छिज्जंति (पुच्छीअंति) ? ता वण्णअ वसंतं।

विदूषकः—कधं पंजरगदा सारिआ विअ कुरुकुराअंती चिट्ठसि ? ण किं पि जाणासि। ता पिअवअस्सस्स देवीए पुरदो पढिस्सं। जदो ण कत्थूरिआ कुग्गामे वणे वा विक्किणीअदि। ण सुवण्णं कसवट्टिअं विणा कसीअदि।

विचक्षणा—(विभाव्य) एवं न्विदम्, धावतः तुरङ्गमस्य (तुरंगस्य) शीघ्रत्वे किं साक्षिणः पृच्छ्यन्ते। तद्वर्णय वसन्तम्।

विदूषकः—कथं पञ्जरगता सारिकेव कुरुकुरायमाणा तिष्ठसि ? न किमपि जानासि। तत् प्रियवयस्यस्य देव्याः पुरतः पठिष्यामि। यतो न कस्तूरिका कुग्रामे वने वा विक्रीयते। न सुवर्णं कषपट्टिकां विना कष्यते।

वाली।[1] परम्परा से प्राप्त पाण्डित्य वाले मुझमें क्या दोष था। देखो; अकालजलद के वंश में उत्पन्न होने वालों में पाण्डित्य परम्परा से आता है। अथवा हाथ-कंगन को आरसी क्या (अर्थात् मेरा पाण्डित्य सर्व विदित है, इसमें कहने की क्या आवश्यकता है) ?

विचक्षणा (विचारकर) ठीक है। दौड़ते हुए घोड़े की तीव्र चाल क्या साक्षियों (गवाहों) से पूछी जाती है (अर्थात् वह तो साक्षात् देखी जाती है) ? वसन्त का वर्णन तो करो।

विदूषक—पिंजड़े में बन्द मैना (सारिका) की तरह क्या कुर-कुर कर रही है। तुम कुछ भी नहीं जानती हो। प्रिय मित्र (राजा) और देवी के सामने पढ़ूँगा, क्योंकि कस्तूरी छोटे से गाँव में अथवा वन में नहीं बेची जाती। सुवर्ण कसौटी (कषण-पट्टिका) के बिना साधारण पत्थर पर नहीं घिसा जाता है (अर्थात् मैं तुम्हारे सामने नहीं पढ़ूँगा)।

---

१. धूदे 'देशी' शब्द है। 'उंवहसीआमि' प्राकृत में आत्मनेपद परस्मैपद का व्यत्यय होता है, अतः यहाँ आत्मनेपद के स्थान पर परस्मैपद का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा—पिअवअस्स ! ता पढ । सुणीअदु ।

विदूषकः—(पठति)—

फुल्लुक्करं कलमकूरसमं वहंति
जे सिंदुवारविडवा मह वल्लहा ते ।
जे गालिअस्स महिसीदहिणो सरिच्छा
ते किं च मुद्धविअइल्लपसूणपुंजा ॥ १९ ॥

राजा—प्रिय वयस्य । तत्पठ । श्रूयताम् ।

विदूषकः—(पठति)—

पुष्पोत्करं कलमकूरसमं वहन्ति, जे सिन्दुवारविटपा मम वल्लभास्ते ।
ये गालितस्य महिषीदध्नः सदृक्षास्ते किञ्च मुग्धविचकिलप्रसूनपुञ्जाः ।।१९।।

अन्वयः—जे सिंदुवारविडवा कलमकूरसमं फुल्लुक्करं वहन्ति दे यह वल्लभा । किं च महिसीदहिणो सरिच्छा जे मुद्धविअइल्लपसूणपुंजा ते (च मह मह वल्लहा) ॥ १९ ॥

व्याख्या—ये सिन्दुवारस्य विटपाः = तदाख्यवृक्षाः, कलमानां = धान्य-विशेषाणां कूरम् = ओदनं तेन समं = सदृशं शुभ्रवर्णं पुष्पोत्करं = कुसुमसमूहं, वहन्ति = धारयन्ति, ते = सिन्दुवारस्य कुसुमानि, मे = विदूषकाय, वल्लभाः= प्रियाः । किञ्च, गालितस्य = आलोडितस्य, महिष्याः दध्नः महिषीदध्नः,

---

राजा—प्रिय मित्र पढ़ो । हम सब सुनें ।[१]

विदूषक—(पढ़ता है) जो सिन्धुवार के वृक्ष कलम (एक प्रकार का चावल विशेष) के कूर (भात) के समान (सफेद रंग वाले) फूलों के गुच्छों को धारण करते हैं वे (सिन्धुवार के फूल) मुझे प्रिय हैं तथा

प्रयोग किया गया है । 'विट्टालिणी' आदि शब्द देशी हैं । कोससदाप-हारिणी—कोषाः शपथास्तेषां शतेन वर्तनशीला=मिथ्याशपथकारिणी अथवा कोषानाम् याः शतसंख्या तेषामपहारिणी = धन पैसा हरण करने वाली ।

१. एन० जी० शुरु के संस्करण में यह पाठ विदूषक ही कहता है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विचक्षण:—(विहस्स) णिअकंतारत्तणजोग्गं दे वअणं।

विदूषका:—ता (किं पि) उआरवअणे तुमं पढ।

देवी—(किञ्चित् स्मित्वा) सहि विअक्खणे! अम्हाणं पुरदो तुवं गाढकइत्तणेणं गव्वुत्ताणा भोसि। ता पठ संपदं अज्जउत्तस्स पुरदो

विचक्षणा—[विहस्य] निजकान्तारञ्जनयोग्यं ते वचनम्।

विदूषक:—तद् (किमपि)-उदारवचने, त्वं पठ।

देवी—(किञ्चित् स्मित्वा) सखि विचक्षणे! अस्माकं पुरतस्त्वं गाढ-

---

सदृक्षा: = समाना:, ये मुग्धा: = मनोहरा विचकिलानां = तदाख्यवृक्षाणां प्रसूनानां = कुसुमानां पुञ्जा: = समूहा: सन्ति, ते च मम प्रिया इति। अनेन विदूषकस्य कामकलाकोविदत्वाभावो ज्ञायते। अत्र विदूषकोक्तौ कलमभक्त-महिषीदधिशब्दा ग्राम्या अपि गुणा: (का० प्र०, उदाहरण ३१०)। आर्या वृत्तम्। उपमालङ्कार: ॥ १६ ॥

मथे हुए भैंस के दही के समान जो मनोहर विचकिल (वृक्ष विशेष) के फूलों के गुच्छे हैं वे भी मुझे प्रिय हैं ॥ १६ ॥[१]

विचक्षणा—(हँसकर) [तुम्हारी यह कविता नहीं है अपितु] अपनी पत्नी को प्रसन्न करने के वचन।

विदूषक—अरी उदारवचने[२] (मधुर बोलने वाली) जरा तुम भी तो पढ़ो।

देवी—(कुछ मुस्कुराकर) सखि विचक्षणा! हम लोगों के समक्ष तुम

---

१. विदूषक के इस कथन से उसका काम-कला में अकुशलत्व प्रदर्शित होता है। विदूषक भोजनप्रिय होता है। अत: उसकी कविता में भैंस का दही और कलमकूर चावल की बात कही गई है। इसीलिए विचक्षणा विदूषक की इस कविता को केवल अपनी प्रेयसी = पत्नी को ही रसास्वादन कराने वाली कहती है।

२. विदूषक 'उदारवचने' के द्वारा यह कहना चाहता है कि तुम अपनी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सअं कदं किं पि कव्वं । जदो तं कव्वं जं सहाए (सभाए) पठीअदि, तं सुवण्णं जं कसवट्टिआए णिव्वडदि (णिव्वहदि) । सा घरिणी जा पदिं रंजेदि । सो पुत्तो जो कुलं उज्जलेदि ।

विचक्षणा—जं देवी आणवेदि । (इति पठति)—

जे लंकागिरिमेहलाहिं खलिदा संभोअखिण्णोरई
फारप्फुल्लफणावलीकवलणे पत्ता दरिद्दत्तणं ।

कवित्वेन गर्वोत्ताना भवसि । तत्पठ साम्प्रतमार्यपुत्रस्य पुरतः स्वयं कृतं किमपि काव्यम् । यतस्तत् काव्यं यत् सभायां पठ्यते । तत्सुवर्णं यत्कषपट्टिकायां निवर्तते । सा गृहिणी या पतिं रञ्जयति । स पुत्रो यः कुलमुज्ज्वलयति ।

विचक्षणा—यद् देवी आज्ञापयति । (इति पठति)—

ये लङ्कागिरिमेखलायां स्खलिताः संभोगखिन्नोरगी-
स्फारोत्फुल्लफणावलीकवलने प्राप्ता दरिद्रत्वम् ।

अन्वय——जे मलआणिला लंकागिरिमेहलाहिं खलिदा, संभोअखिण्णोरई फारप्फुल्लफणावलीकवलणे दरिद्दत्तण पत्ता, ते एण्हिं विरहिणीणीसाससंपक्किणो झत्ति सिसुत्तणे वि बहला तारुण्णपुण्णा विअ जादा ।। २० ।।

व्याख्या—ये मलयानिलाः = मलयपर्वतात् प्रवहमाणाः वायवः, लङ्कागिरेः = सिंघलदेशे वर्तमानस्य पर्वतस्य मेखलायां = श्रोण्यां, स्खलिताः =

कविता करने की बड़ी डींग मारती हो । आज आर्यपुत्र के सामने अपनी बनाई हुई कोई कविता पढ़ो । काव्य वही है जो सभा में पढ़ा जाये । सोना वही है जो कसौटी पर खरा उतरे । गृहिणी वही है जो पति का मनोरञ्जन करे । पुत्र वही है जो कुल को उज्जवल करे ।

विचक्षणा——जैसी देवी की आज्ञा (पढ़ती है)—

मीठी ओर मिथ्या बातों से न केवल अपने प्रियतम का मनोरंजन करती हो अपितु गैरों का भी मनोरंजन करती हो । मैं तो एक पत्नीव्रता हूँ और तुम पुंश्चली ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ते एण्हि मलआणिला बिरहिणीणीसाससंपक्किणो
जादा झत्ति सिसुत्तणे वि बहला तारुण्णपुण्णा विअ ॥ २० ॥
राजा—सच्चं विअक्खणा विअक्खणा चदुरत्तणेण उत्तीणं, विचित्तदाए

त इदानीं मलयानिला विरहिणीनिःश्वाससंपर्किणो
जाता झटिति शिशुत्वेऽपि बहलास्तारुण्यपूर्णा इव ॥ २० ॥
राजा—सत्यं विचक्षणा विचक्षणा चतुरत्वेनोक्तीनाम्, विचित्रतया

पतिताः, सम्भोगेन = सुरतव्यापारेण खिन्नाः = श्रान्ताः या उरग्यः = सर्पिण्यः तासां स्फाराभिः = विशालाभिः उत्फुल्लाभिः = विकसिताभिः फणावलीभिः= फणपङ्क्तिभिः कवलनं = भक्षणं तस्मिन्, दरिद्रत्वं = क्षीणत्वं, प्राप्ताः = जाताः, ते = मलयानिलाः, इदानीम् = अधुना, विरहिणीनां = वियोगिनीनां ये निश्वासाः = दीर्घोच्छ्वासाः तेषां सम्पर्किणः = संसर्गिणः सन्तः, झटिति = शीघ्रं, शिशुत्वेऽपि=शैशवावस्थायामेव, बहलाः = वृद्धिं गताः, तारुण्येन = यौवनेन, पूर्णा = सम्पन्ना इव जाताः। मलयसमीरिणः नितरां स्वच्छन्दं यथा स्यात्तथा वान्ति, निःश्वाससंपर्कित्वेन प्राप्तैश्वर्याः। अनेन किं किं न कुर्वंत इति वस्तु व्यज्यते। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। उत्प्रेक्षाहेतुसमाधि-विभावनालङ्काराः ॥ २० ॥

जो मलयाचल की हवाएँ लङ्का के पर्वतों की मेखलाओं (श्रेणियों) से स्खलित हो गयी थीं तथा संभोग के बाद थकी हुई सर्पिणियों के फैले हुए फणों के द्वारा पान की जाने से क्षीणता का प्राप्त हो गई थीं वे ही हवाएँ इस समय (वसन्त में) विरहिणियों के दीर्घ-निःश्वास के संपर्क को पाकर शीघ्र ही शैशवावस्था (वसन्त के प्रारम्भ) में ही मानों तारुण्य से पूर्ण प्रगल्भा-वस्था को प्राप्त हो गई हैं ॥२०॥[1]

राजा—सचमुच ही विचक्षणा (दासी) चातुर्यपूर्ण उक्तियों में तथा

---

१. यह गाथा काव्य-प्रकाश के चतुर्थ उल्लास में उद्धृत है। यहाँ कविनिबद्धवक्तृप्रौढोक्तिसिद्ध वस्तु से वस्तुध्वनि है। निःश्वास का सम्पर्क

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रीदीणं। ता किं अण्णं (कईणं सुकइ त्ति) कइचूडामणित्तणे ठिदा एसा।

विदूषकः—(सक्रोधम्) ता उज्जुअं ज्जेव किं ण भणीअदि अच्चुत्तमा विअक्खणा कव्वम्मि, अच्चाधमो कविंजलो बंभणो त्ति ?

विचक्षणा—अज्ज ! मा कुप्प। कव्वं ज्जेव दे कइत्तणं पिसुणेदि। जदो णिअकंतारत्तणणिंदणिज्जे वि अत्थे सुउमारा दे वाणी, लबत्थणोए विअ एक्कावली, तुंडिलाए विअ कंचुलिआ, ठेराए विअ कडक्खविक्खेवो,

---

रीतीनाम्। तत्किमन्यत् (कवीनां सुकविः) कविचूडामणित्वेन स्थितैषा।

विदूषकः—(सक्रोधम्) तत् ऋजु एव किं न भण्यते 'अत्युत्तमा विचक्षणा काव्ये। अत्यधमः कपिञ्जलब्राह्मण इति।

विचक्षणा—आर्य ! मा कुप्य। काव्यमेव कवित्वं पिशुनयति। यतो निजकान्तारञ्जननिन्दनीयेऽप्यर्थे सुकुमारा ते वाणी। लम्बस्तन्या इव एकावली, तुन्दिलाया इव कञ्चुलिका, टेराया इव कटाक्षविक्षेपः, कर्तितकेशाया इव

रीतियों [के प्रयोग] की विचित्रता में विचक्षण (विदुषी) है। तब फिर किसी अन्य उक्ति-वैचित्र्य की क्या आवश्यकता है ? वस्तुतः यह 'कवि-चूडामणि' है (कवियों में सुकवि है)।

विदूषक—[क्रोधपूर्वक] तब सीधे क्यों नहीं कहते कि विचक्षणा कविता करने में सर्वश्रेष्ठ है। और कपिञ्जल ब्राह्मण अत्यन्त अधम (तुच्छ) है।

विचक्षणा—आर्य ! क्रोध न करें। (आपका) काव्य ही कविता के

पाकर वस्तु से प्राप्तैश्वर्य वायु क्या-क्या नहीं कर डालेगी यह वस्तु श्लोकोक्त वस्तु से व्यञ्जित हो रही है। यहाँ उत्प्रेक्षा के होने पर भी वह व्यञ्जना में अकिञ्चित्कर है। अतः यह अलंकार-ध्वनि नहीं है। यहाँ हेतु, उत्प्रेक्षा, समाधि और विभावना अलंकार हैं। विभावना 'प्रसिद्ध-हेतुव्यावृत्त्या यत्किञ्चित्कारणान्तरम्। यत्र स्वाभाविकत्वं वा विभाव्यं सा विभावना। दण्डी का० २. १९९.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कट्टिदकेसाए विअ मालदीकुसुममाला, काणाए विअ कज्जलसलाआ, सुट्ठुवरं ण भादि रमणिज्जा।

विदूषकः—तुज्झ (तुब्भ) उण रमणिज्जे वि अत्थे ण सुंदरा सद्दावली।। कणअकडिसुत्ताए विअ लोहकिंकिणीमाला, पडिवट्टए (पडिपट्टे) विअ टसरविरअणा, गोरंगीए विअ चंदणचच्चा ण चारुत्तणं अवलंबेदि। तधा वि तुवं वण्णीअसि।

विचक्षणा—अज्ज ! मा कुप्प। का तुम्हेहि समं अम्हाणं पाडिसिद्धी।

मालतीकुसुममाला, काणाया इव कज्जलशलाका सुष्ठुतरं न भाति रमणीया।

विदूषकः—तव पुनः रमणीयेऽप्यर्थे न सुन्दरा शब्दावली। कनककटिसूत्र इव लोहकिंकिणीमाला, प्रतिपट्ट इव त्रसरविरचना, गौराङ्ग्या इव चन्दनचर्चा न चारुत्वमवलम्बते। तथापि त्वं वर्ण्यसे।

विचक्षणा—आर्य ! मा कुप्य। का युष्माभिः सह अस्माकं प्रतिस्पर्धा

राज को प्रकट करता है। निज-रमणी के मनोरंजन के योग्य अर्थ होने पर भी तुम्हारी सुकुमार वाणी उसी तरह अच्छी नहीं लगती जिस प्रकार कि लम्बे स्तनों वाली स्त्री को एक लड़वाली माला, बड़े हुए पेट वाली रमणी के लिए चोली, टेढ़ी आँख वाली के लिए कटाक्ष-विक्षेप, कटे हुए बालों वाली अङ्गना के लिए मालती के फूलों की माला तथा कानी आँख वाली के लिए काजल लगाना।

विदूषक—अर्थ के रमणीय होने पर भी तुम्हारी शब्दावली रमणीय नहीं है। अतः तुम्हारी कविता उसी तरह अच्छी नहीं लगती जैसे सोने के कटिसूत्र में लोहे के घुंघरू, उल्टे कपड़े पर कसीदागिरि का काम तथा गौरवर्ण वाली स्त्री के शरीर पर चन्दन का लेप। ऐसा होने पर भी तुम्हारी ही प्रशंसा की जा रही है।

विचक्षणा—आर्य ! क्रोध न करें। मेरी आपके साथ कैसी प्रतिस्पर्धा ? क्योंकि तुम नाराच (सुनारों की छोटी तराजू) की तरह निरक्षर होने पर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जबो तुवं णाराओो विअ णिरक्खरो वि रअणतुलाए णिउंजीअसि। अहं उण तुल व्व लद्धक्खरा वि ण सुवण्णतोलणे विणिउंजीआमि।

विदूषकः—एवं मह भणंतोए (हसंतीए) तुह वामं दक्खिणं अ जुहिट्ठिलजेट्ठभाअरणामधेअं अगं तडत्ति उप्पाडइस्सं।

विचक्षणा—अहं वि उत्तरफग्गुणीपुरस्सरणक्खत्तणामधेअं अंगं तुह तडत्ति खंडिस्सं।

राजा—वअस्स ! मा एवं भण। कइत्तणे ट्ठिदा एसा।

विदूषकः—[सक्रोधम्] ता उज्जुअं ज्जेव किं ण भण्णइ (भणीअदि)

(प्रतिसिद्धिः)। यतस्त्वं नाराच इव निरक्षरोऽपि रत्नतुलायां नियुज्यसे। अहं पुनस्तुलेव लब्धाक्षरापि न सुवर्णतोलने विनियुज्ये।

विदूषकः—एवं मम भणन्त्यास्तव वामं दक्षिणं च युधिष्ठिरज्येष्ठभ्रातृनामधेयमङ्गं झटिति उत्पाटयिष्यामि।

विचक्षणा—अहमप्युत्तराफाल्गुनीपुरःसरनक्षत्रनामधेयमङ्गं तव झटिति खण्डयिष्यामि।

राजा—वयस्य ! मैवं भण। कवित्वे स्थितैषा।

विदूषकः—[सक्रोधम्] ऋज्वेव तत्किं न भण्यते, अस्माकं चेटिका

भी रत्न तोलने के काम आते हो और मैं लोहे के तुलादण्ड (बड़ी तराजू) की तरह साक्षर होने पर भी सोने के तोलने के काम में नहीं आती हूँ।

विदूषक—इस प्रकार मेरे बारे में कहने वाली (उपहास करने वाली) युधिष्ठिर के बड़े भाई के नाम (कर्ण) वाले तेरे बाँये और दाहिने दोनों अंगों (कानों) को जल्दी ही उखाड़ दूँगा।

विचक्षणा—मैं भी उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के बाद आने वाले नक्षत्र (हस्त) के नाम वाले तुम्हारे अङ्ग (हाथ) को शीघ्र ही खंडित कर दूँगी।

राजा—मित्र ! ऐसा मत कहो। यह इस समय कवित्व में स्थित है।

विदूषक—[क्रोध पूर्वक] तो सीधे क्यों नहीं कहते हैं कि हमारी यह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अम्हाणं चेडिआ हरिउड्ढणंदिउड्ढपोट्टिसहालप्पहुदीणं पि पुरदो सुकइ त्ति ।

राजा—एवं णेदं ।

(विदूषको रुष्ट इव सक्रोधमुत्थाय परिक्रामति)

विचक्षणा—[विहस्स] तहिं गच्छ जहिं मे मादाए पठमसाडोलिआ (साडिआ) गदा ।

विदूषकः—[वलितग्रीवम्] तुअं (तुमं) उण तहिं गच्छ जहिं मे मादाए पढमा दतावली गदा । ईदिसस्स राउलस्स भद्दं भोदु, जहिं चेडिआ बंभणेण समं समसीसिआए दीसदि । मइरा पंचगव्वं च एक्कस्सि भंडे कीरदि, कच्चं माणिक्कं च समं आहरणे पउंजीअदि ।

हरिवृद्ध-नन्दिवृद्धपोट्टिश-हालप्रभृतीनामपि पुरतः सुकविरिति ।

राजा—एवं न्विदम् (एतत्) ।

[विदूषको रुष्ट इव सक्रोधमुत्थाय परिक्रामति]

विचक्षणा—(विहस्य) तत्र गच्छ यत्र मे मातुः प्रथमा शाटिका गता ।

विदूषकः— त्वं पुनस्तत्र गच्छ यत्र मे मातुः प्रथमा दन्तावली गता । ईदृशस्य राजकुलस्य भद्रं भवतु । यत्र चेटिका ब्राह्मणेन समं समशीर्षिकया दृश्यते, मदिरा पञ्चगव्यं चैकस्मिन् भाण्डे क्रियते, काचं माणिक्यं च सममाभरणे प्रयुज्यते ।

चेटी हरिवृद्ध (हरिश्चन्द्र), नंदिवृद्ध, पोट्टिश, हाल प्रभृति कवियों में भी श्रेष्ठ है ।

राजा—ऐसा ही है ।

(विदूषक नाराज सा होकर क्रोध के साथ उठकर परिक्रमण करता है ।)

विचक्षणा—[हँसकर] आप वहाँ जायें, जहाँ मेरी माता की पहली साड़ी गई है आर्थात् गुदड़खाने में जायें ।

विदूषक—[गर्दन टेढ़ी करके] तुम भी वहाँ जाओ जहाँ मेरी माता की पहली दान्तावली (दूध के दाँत) गई है अर्थात् निकालकर फेंक दिया जाये ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विचक्षणा—इह राअउले (राउले) तं दे भोदु कंठट्ठिदं जं भअवं तिलोअणो सोसे समुव्वहदि। तेणं च दे मुहं चूरीअदु जेण आसोअतरू दोहलं लहेदि।

विदूषकः—आ, दासीए पुत्ति ! टेंटाकराले ! कोससअचट्टणि (-वंचणि) ! रच्छालोट्टणि ! एव्वं मं भणसि। ता मह महाबभणस्स भणिदेण (वअणेण) तं तुमं लह जं फग्गुणसमए सोहञ्जणो जणादो (दोहलं) लहेदि। जं च पामराहिंतो गलिबइल्लो लहेदि (लहदि)।

विचक्षणा—इह राजकुले तत् ते भवतु कण्ठस्थितं यद्भगवांस्त्रिलोचनः शीर्षे समुद्वहति। तेन च ते मुखं चूर्ण्यतां येनाशोकतरुर्दोहदं लभते।

विदूषकः—आः, दास्याः पुत्रि ! टेण्टाकराले ! कोषशतवञ्चनि ! रथ्यालुण्ठिनि ! एवं मां भणसि ? तन्मम महाब्राह्मणस्य भणितेन (वचनेन) तत् त्वं लभस्व, यत् फाल्गुनसमये शोभाञ्जनो जनेभ्यो (दोहदं) लभते। यत् पामरेभ्यो गलितबलीवर्दो (-वृषभः) लभते।

इस प्रकार के राजकुल का कल्याण हो (अर्थात् दूर से ही नमस्कार हो) जहाँ दासी ब्राह्मण के साथ बराबरी के स्थान को प्राप्त करें। मदिरा और पञ्चगव्य (दधि, दूध, घी, गोबर और गोमूत्र) एक ही पात्र में रक्खे जायें। काँच और माणिक्य एक साथ आभूषण में प्रयुक्त हों।

विचक्षणा—इस राजकुल में तुम्हारे कण्ठ में वह हो जो भगवान् शंकर के मस्तक पर है (अर्थात् तुम्हारे गले में अर्द्धचन्द्राकार हाथ को डालकर तुम्हें बाहर निकाल दिया जाए)। तुम्हारे मुख को उससे चूर्णित किया जाये जिससे अशोक वृक्ष दोहद को प्राप्त होता है अर्थात् तुम्हारे मुँह को पाद-प्रहार से कुचल दिया जाये।

विदूषक—अरी दासी की पुत्री ! टेंटाकराले (झगड़ालू अथवा जुआ-घरों की शेरनी), कोषशतापहारिणी (सैकड़ों धन का अपहरण करने वाली अथवा झूठी सौगन्ध खाकर ठगने वाली), रथ्यालुण्ठिनी (गलियों में घूमने वाली अर्थात् गलियों की कुतिया) तू ! मुझे ऐसा कहती है। तो मुझ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विचक्षणा—अहं उण तुह एवं भणंतस्स णेउरस्स विअ पाअलग्गस्स पाएण मुहं चूरइस्सं। अण्णं च, उत्तरासाढापुरस्सरणक्खत्तणामधेअं अंगजुअलं उप्पाडिअ घल्लिस्सं।

विदूषकः—(सक्रोधं परिक्रामति। जवनिकान्तरे किञ्चिदुच्चैः)—ईरिसं राअउलं दूरेण वंदीअदि जहिं दासी बंभणेण समं पाडिसिद्धिं करेदि। ता अज्जप्पहुदि णिअवसुंधराणामबंभणीए चलणसुस्सूसओ भविअ गेहे (घरे) ज्जेव चिट्ठिस्सं। [इति निष्क्रान्तः। सर्वे हसन्ति]

विचक्षणा—अहं पुनस्तवैवं भणतो नूपुरस्येव पादलग्नस्य पादेन मुखं चूर्णयिष्यामि। अन्यच्च, उत्तराषाढापुरस्सरनक्षत्रनामधेयमङ्गयुगलमुत्पाट्य क्षेप्स्यामि।

विदूषकः—[सक्रोधं परिक्रामति, जवनिकान्तरे किञ्चिदुच्चैः] ईदृशं राजकुलं दूरे वन्द्यतां यत्र दासी ब्राह्मणेन समं प्रतिस्पर्धां करोति। तदद्यप्रभृति निजवसुन्धरानामब्राह्मण्याश्चरणशुश्रूषुर्भूत्वा गेह एव स्थास्यामि।

[इति निष्क्रान्तः। सर्वे हसन्ति]

महाब्राह्मण के वचन से तुझे वह प्राप्त हो जो फाल्गुन मास में 'सहजन' (वृक्ष-विशेष) को मनुष्यों से प्राप्त होता है (अर्थात् तुम्हारे अंग काट दिए जाएँ) तथा जो पामरों (दुर्जनों) से दुष्ट बैल को प्राप्त होता है। (अर्थात् तेरी नाक छेद दी जाए और दण्डों से मारा जाए)।

विचक्षणा—पैर में बँधे हुए नूपर की तरह व्यर्थ का बकवास करने वाले तेरे मुख को मैं भी अपने पैर से पीस दूँगी। और भी, उत्तराषाढ़ (नक्षत्र) के बाद आने वाले नक्षत्र (श्रवण) के नाम वाले तेरे दोनों अंगों को उखाड़-कर फेंक दूँगी। (अर्थात् दोनों कान तोड़ दूँगी)।

विदूषक—[क्रोधपूर्वक परिक्रमा करता हुआ और यवनिका के पीछे से कुछ तेज आवाज में] ऐसे राजकुल को दूर से ही नमस्कार करता हूँ। जहाँ दासी ब्राह्मण के साथ प्रतिस्पर्धा को करती है। अतः आज से अपनी वसुंधरा नामवाली ब्राह्मणी (पत्नी) के चरणों की शुश्रूषा (सेवा) करते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देवी—अज्जउत्त ! कीदिसी अज्जकविञ्जलेण विणा गोट्ठी, कीदिसो उण णअणंजणेण विणा पसाहणलच्छी ।

[नेपथ्ये]

विदूषकः—ण हु ण हु आगमिस्सं, अण्णो को वि पिअवअस्सो अण्णेसदु (अण्णेसीअदु)। एसा वा दुट्ठदासी लंबकुच्चं (लंबकुचा) टप्परकण्णं (टप्परकण्णी) पडिसीसअं देइअ मह ट्ठाणे उवहसणत्थं कीरदु (करीअदु)। अहं एक्को मुदो तुम्हाणं सव्वाणं मज्झे । तुम्हे उण वरिससअं जीवध ।

देवी—आर्यपुत्र ! कीदृशी आर्यकपिञ्जलेन विना गोष्ठी ? कीदृशी पुनर्नयनाञ्जनेन विना प्रसाधनलक्ष्मीः ।

[नेपथ्ये]

विदूषकः—न खलु न खलु आगमिष्यामि, अन्यः कोऽपि प्रियवयस्योऽन्विष्यताम् । एषा वा दुष्टदासी लम्बकुचं (लम्बकुचा) विस्तृतकर्णं (विस्तृतकर्णा) प्रतिशीर्षकं दत्वा मम स्थाने उपहसनार्थं क्रियताम् । अहमेको मृतो युष्माकं सर्वेषां मध्ये, यूयं पुनर्वर्षशतं जीवथ ।

हुए घर पर ही रहूँगा [विदूषक चला जाता है सभी हँसते हैं] ।

देवी—आर्यपुत्र ! आर्य कपिञ्जल के विना गोष्ठी क्या ? नयनाञ्जन के विना (आँखों में काजल लगाए विना) शृङ्गार की शोभा क्या ?

(नेपथ्य में)

विदूषक—मैं नहीं आऊँगा, नहीं आऊँगा, कोई दूसरा प्रिय मित्र खोज लें । अथवा इसी दुष्टदासी को लम्बी दाढ़ी-मूछ, कनटोप और प्रतिशीर्षक (मुखौट) से सजाकर मेरे स्थान पर हँसाने के लिए रख लें । (पाठान्तर-लम्बे स्तनों वाली, सूप की तरह कानों वाली इस दुष्ट दासी को पगड़ी बाँधकर) । तुम सबों के बीच मैं ही अकेला मर गया हूँ । तुम सब सौ वर्ष तक जिओ ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा—कविञ्जलेण विणा कुदो हिअअस्स णिव्वुदि ।

विचक्षणा—मा अणुसंधेध । अणुणअक्कक्कसो क्खु कविंजलो बंभणो । सलिलसित्तो विअ सणगुणगंठो दिढं (चिरं) गाढअरो भोदि । णं दंसणोअं दीसदु ।

देवी—(समन्तादवलोक्य)—

गाअंतगोवअवहूपअपेंखिदासु
दोलासु विब्भमवदीसु णिविट्ठ (निसण्ण)-दिट्ठी ।
जं जादि खंजिदतुरंगरहो दिणेसो
तेण व्व होंति दिअहा अइदीहदीहा ॥ २१ ॥

राजा—कपिञ्जलेन विना कुतो हृदयस्य निर्वृत्तिः ?

विचक्षणा—माऽनुवध्नीत (अनुवधान) । अनुनयकर्कशः खलु कपिञ्जल-ब्राह्मणः । सलिलसिक्त इव शणगुणग्रन्थिर्दृढं गाढतरो भवति । ननु दर्शनीयं दृश्यताम् ।

देवी—(समन्तादवलोक्य)—

गायद्गोपवधूपदप्रेङ्खितासु दोलासु विभ्रमवतीषु निविष्ट (निषण्ण)-दृष्टिः ।
यद् याति खञ्जिततुरङ्गरथो दिनेशस्तेनैव भवन्ति दिवसा अतिदीर्घदीर्घाः ॥२१॥

अन्वयः—गाअंतगोवअवहूपअपेंखिदासु विब्भमवदीसु दोलासु णिविट्ठदिट्ठी दिणेसो खंजिदतुरंगरहो जं जादि तेण व्व दिअहा अइदीहदीहा होंति ॥२१॥

व्याख्या—गायन्तीनां = गानं कुर्वतीनां गोपवधूनां = गोपाङ्गनानां पदैः = चरणैः प्रेङ्खितासु = सञ्चालितासु, विभ्रमवतीषु = विलासवतीषु, दोलासु =

राजा—कपिञ्जल के बिना हृदय को शान्ति कहाँ ?

विचक्षणा—इसे मत मनाइये कपिञ्जल ब्राह्मण मनाने से और कठोर हो जाता है। जैसे सन की रस्सी की गाँठ पानी से सींचने पर और भी कड़ी हो जाती है। आप दर्शनीय दृश्य को देखें ।

देवी—[चारों ओर देखकर] गाती हुई गोपाल वधुओं के पैरों से आन्दोलित झूलों में झूलती हुई विलासवतियों पर (अथवा गाती हुई गोपाल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

[प्रविश्य पटाक्षेपेण]

विदूषकः—आसणं आसणं ।

राजा—किं तेण ?

(प्रविश्य पटाक्षेपेण)

विदूषकः—आसनम् आसनम् ।

राजा—किं तेन ?

हिन्दोलकेषु यद्वा दोलासु स्थितासु विभ्रमवतीषु, निषण्णा = स्थापिता दृष्टिः=दर्शनव्यापारः यस्य सः निषण्णदृष्टिः दिनेशः = सूर्यः, खञ्जिताः तुरङ्गाः यस्य सः खञ्जिततुरङ्गः=अवरुद्धगत्यश्वयुक्तः तथाविधः रथो यस्य सः खञ्जिततुरङ्गरथः सन् यद् याति = संसारं परिक्रामति तेनैव कारणेन दिवसाः = दिनानि, अतिशयेन दीर्घदीर्घा अतिदीर्घदीर्घाः= अतिविशालाः भवन्ति, नितरां वृद्धिं गता इत्यर्थः । अत्र हेत्वतिशयोक्ति-पर्यायोक्त्युत्प्रेक्षालङ्काराः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ २१ ॥

वधुओं के पैरों से आलोड़ित विभ्रमवतियों के झूलों पर) दृष्टि लगाने से सूर्य खंजिततुरंग रथ (लड़खड़ाकर चलने वाले घोड़ों ले युक्त रथ) वाला होकर [विश्व की] परिक्रमा कर रहा है। मानों इसी कारण दिन दीर्घ से दीर्घतर होते जा रहे हैं। [भावार्थ—विलासवतियों के मनोहर रूप को देखकर सूर्य की दृष्टि उन पर लग गई है। रथ का सञ्चालन ठीक से न होने से घोड़े लडखड़ाकर चल रहे हैं। अतः रास्ता तय करने में विलम्ब हो रहा है और दिन बड़े होते जा रहे हैं।] ॥ २१ ॥[1]

[परदा हटाकर प्रवेश करके]

विदूषक—आसन, आसन ।

राजा—किसलिए ?

विदूषक—भैरवानन्द द्वार पर खड़े हैं ।

---

१. यहाँ 'दोलाओं पर सूर्य की दृष्टि लग गई है' यह भी कहा जा सकता है क्योंकि विभ्रमवतियों से उनका सम्बन्ध है। सूर्य के रथ में लगे घोड़ों की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदूषकः—भइरवाणंदो दुआरे चिट्ठदि (उववित्सदि) ।
देवी—किं सो, जो जणवअणादो अच्चब्भुदसिद्धी सुणीअदि ?
विदूषकः—अघ इं (किं) ?
राजा—पवेसअ ।

[विदूषको निष्क्रम्य तेनैव सह प्रविशति]

विदूषकः—भैरवानन्दो द्वारे तिष्ठति ।
देवी—किं सः, यो जनवचनाद् अत्यद्भुतसिद्धिः श्रूयते ?
विदूषकः—अथ किम् ?
राजा—प्रवेशय ।

[विदूषको निष्क्रम्य तेनैव सह प्रविशति]

देवी—क्या वही भैरवानन्द हैं जो अत्यन्त अद्भुत सिद्धियों वाले सुने जाते हैं ।

विदूषक—और क्या ?
राजा—प्रवेश कराओ ।

[विदूषक बाहर जाकर पुनः भैरवानन्द के साथ प्रवेश करता है]

दृष्टि भी उस झूले से आकर्षित है । मालिक का सञ्चालन ठीक न होने से घोड़े भी अलमस्त हो गये हैं । अतः दिन बड़े हो गये हैं । इस तरह कवि ने यहाँ वसन्त में स्वभावसिद्ध दिनों के बड़े होने पर भी सूर्य की दृष्टि विभ्रमवतियों में लगने तथा घोड़ों के लड़खड़ाकर चलने को हेतुरूप से कहा है, अतः यहाँ हेतु, अतिशयोक्ति, पर्यायोक्ति और उत्प्रेक्षा अलंकार हैं । अतिशयोक्ति—विवक्षा या विशेषस्य लोकसीमातिवर्तिनी । असावतिशयोक्तिः स्यादलंकारोत्तमा यथा । दण्डी का० २. २१४. पर्यायोक्त—अर्थमिष्टमनाख्याय साक्षात्तस्यैव सिद्धये यत्प्रकारान्तराख्यानं पर्यायोक्तिस्तदिष्यते । दण्डी का० २. २९५. राजा के इस कथन से यह भी व्यञ्जित हो रहा है कि कपिञ्जल के विना समय नहीं कट रहा है । अतः उसे जल्दी से बुलाना चाहिए ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भैरवानन्दः—[किञ्चित्-मदमभिनीय पठति]—

मंताण तंताण ण किं पि जाणे, झाणं च णो किं पि गुरुप्पसादा।
मज्जं पिआमो महिलं रमामो, मोक्खं च जामो कुलमग्गलग्गा ॥२२॥

भैरवानन्दः—[किञ्चिन्मदमभिनीय पठति]—

मन्त्राणि तन्त्राणि न किमपि जानीमः ध्यानञ्च नो किमपि गुरुप्रसादात्।
मद्यं पिबामो महिलां रमयामो, मोक्षञ्च यामः कुलमार्गलग्नाः ॥ २२ ॥

अन्वयः—गुरुप्पसादा मंताणि तंताणिण किं पि जाणे किं पि झाणं च ण (जानीमः)। मज्जं पिआमो, महिलं रमामो। कुलमग्गलग्गा मोक्खं च जामो ॥ २२ ॥

व्याख्या—गुरोः प्रसादात् = अनुग्रहात्, मन्त्राणि तन्त्राणि ध्यानं च न किमपि जानीमः = मंत्र-तन्त्रादीनां ज्ञानं किमपि नास्ति। चित्तवृत्तिनिरोध-रूपं ध्यानं (समाधि) च न जानीमः। कुलमार्गलग्नाः वयं = कौलधर्मानु-यायिनः वयं, तु मद्यं = सुरां, पिबामः = पानं कुर्मः, महिलाभिः = रमणीभिः सह रमयामः = संभोगादीन् कुर्मः। एवं क्रमेण कुलनाम्नि मार्गे तन्त्रोपासनाक्रमे लग्नाः = निरताः मोक्षं च यामः = गच्छामः। मन्त्रादीनां ज्ञानाभावेऽपि गुरो-रनुग्रहाद् वयं मोक्षं यामः। एवमत्र विरोधाभासः प्रतीयते। कौलधर्मे एतत्सर्वं भवतीति नास्ति विरोधः। इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ २२ ॥

भैरवानन्द—[कुछ मद्यप की सी चेष्टायें करता हुआ पढ़ता है] (मैं) गुरु के प्रसाद से न मन्त्र, न तन्त्र, और न कोई ध्यान ही (जानता हूँ)। हम लोग मदिरा का पान करते हैं, महिलाओं के साथ रमण करते हैं तथा कुल परम्परा से प्राप्त धर्म (कौल धर्म) का अनुसरण करते हुए मोक्ष को भी प्राप्त करते हैं ॥ २२ ॥[1]

१. पं० रामकुमार आचार्य ने इसे राजा की उक्ति माना है। मन्त्रादि के अभाव में मोक्ष-प्राप्ति का वर्णन होने से विरोध अलङ्कार है—

विरुद्धानां पदार्थानां यत्र संसर्गदर्शनम्।
विशेषदर्शनायैव सः विरोध स्मृतो यथा ॥ दण्डी का० २. १३३.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अवि अ—

रंडा चंडा दिक्खिआ धम्मदारा, मज्जं मंसं पिज्जए खज्जए अ।
भिक्खा भोज्जं चम्मखंडं च सेज्जा, कोलो धम्मो कस्स णो भाइ रम्मो ॥२३॥
किंच,
मुत्तिं भणंति हरिबम्हमुहादि(मुहा वि)देआ झाणेण वेअपढणेण कदुक्किआहिं

अपि च—

रण्डा चण्डा दीक्षिता धर्मदारा, मद्यं मांसं पीयते खाद्यते च।
भिक्षा भोज्यं चर्मखण्डश्च शय्या, कौलो धर्मः कस्य नो भाति रम्यः ॥ २३ ॥
किञ्च,
मुक्तिं भणन्ति हरिब्रह्ममुखादि (मुखा अपि) देवा, ध्यानेन वेदपठनेन क्रतुक्रियाभिः।

अन्वयः—रंडा चंडा दिक्खिआ धम्मदारा, मज्जं पिज्जए, मंसं खज्जए अ, भिक्खा भोज्जं, चम्मखंडं च सेज्जा, कोलो धम्मो कस्स रम्मो णो भादि ॥२३॥

व्याख्या—अस्माकं कौलधर्मे रण्डाः = विधवा वैश्यादिका वा, चण्डाः = कलहकारिण्यः प्रगल्भाः, दीक्षिताः = कौलधर्मे दीक्षां प्राप्य आगताः स्त्रियः, अस्माकं धर्मदाराः = धर्मपत्न्यः भवन्ति। मद्यं पीयते मांसं च खाद्यते = मद्यमांसादीनां पाने भक्षणे च व्यवहारो भवति। भिक्षाभोज्यं = भिक्षान्नं भोज्यमस्ति। शय्या चर्मखण्डं = चर्मखण्डस्य शय्या (तल्पम्) भवति। एवंभूतः कौलधर्मः कस्य रम्यः न भाति = सर्वेषां कृते रम्योऽयं धर्मः। रण्डा चण्डा धर्मदारा च दीक्षिता भवन्ति अत्र कौलधर्मे इत्यन्वयः नास्ति रम्यः। किं कुमार्यः अत्र दीक्षिता न भवन्तीति चिन्त्यम् ॥ २३ ॥

और भी—विधवा, प्रगल्भा और दीक्षिता (कौल सम्प्रदाय में दीक्षित) स्त्रियाँ (हमारी) धर्म-पत्नियाँ हैं। मद्य का पान करते हैं। मांस खाते हैं। भिक्षान्न (हमारा) भोजन है। चर्मखण्ड शय्या है। यह कौल धर्म किसे अच्छा नहीं लगता है ? ॥ २३ ॥

और भी—

विष्णु, ब्रह्मा प्रभृति देवता ध्यान, वेदपाठ और यज्ञ-क्रिया के द्वारा मोक्ष

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक्केण केवलमुमादइदेण दिट्ठो, मोक्खो समं सुरअकेलिसुरारसेहिं ॥२४॥

राजा—इदं आसणं। उवविसदु भइरवाणंदो।

भैरवानन्दः—(उपविश्य) किं कादव्वं?

राजा—कहिं पि विसए अच्छरिअं दट्ठुं इच्छामि।

एकेन केवलमुमादयितेन दिष्टः (दृष्टो) मोक्षः समं सुरतकेलिसुरारसैः ॥२४॥

राजा—इदमासनम्। उपविशतु भैरवानन्दः।

भैरवानन्दः—(उपविश्य) किं कर्त्तव्यम्?

राजा—कस्मिन्नपि विषये आश्चर्यं द्रष्टुमिच्छामि।

अन्वयः—हरिबम्हमुहादिदेआ झाणेण वेअपपढणेण कदुक्किआहिं मुत्ति भणंति। केवलं एक्केण उमादइदेण सुरअकेलिसुरारसेहिं समं मोक्खो दिट्ठो ॥ २४ ॥

व्याख्या—हरिश्च ब्रह्ममुखाश्च हरिब्रह्ममुखास्ते च ते आदि देवाश्चेति हरिब्रह्ममुखादिदेवाः=विष्णुब्रह्मप्रभृतयः देवाः, ध्यानेन=चित्तवृत्तिनिरोधेन, वेदपठनेन=वेदाध्ययनेन, क्रतोः क्रियाः ताभिः क्रतुक्रियाभिः=यज्ञानुष्ठानैश्च, मुक्ति=संसारदुःखाद् निवृत्ति (मोक्षम्), भणन्ति=कथयन्ति। ध्यानादिभिरेव मोक्षो भवति नान्यथा तत्र इति; किन्तु केवलमेकेन=एकमात्रेण देवेन, उमा=पार्वती दयिता=पत्नी यस्य सः तेन उमादयितेन=शिवेन, सुरतस्य=संभोगस्य केलिः=क्रीडा सुरतकेलिः, सुरतकेलयश्च सुरारसाश्च तैः सुरतकेलि-सुरारसैः=संभोगक्रीडाभिः मदिरापानैश्च, समं=सह, मोक्षः=मुक्तिलाभः, दिष्टः = उपदिष्टः (दृष्टः = लब्धः)। मदिरापानादिभिर्मोक्षो सुलभो भवतीति शिवो दृष्टवान्। वसन्ततिलकावृत्तम्। व्यतिरेकालङ्कारः ॥ २४ ॥

(की प्राप्ति) बतलाते हैं। केवल एक उमापति (शिव) ने ही सुरतक्रीड़ा और सुरापान के साथ मोक्ष को देखा है (बतलाया है) ॥ २४ ॥

राजा—यह आसन है, भैरवानन्द जी बैठिए।

भैरवानन्द—(बैठकर) करणीय क्या है?

राजा—किसी भी विषय में आश्चर्य देखने की इच्छा रखता हूँ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भैरवानन्दः—

दंसेमि तं पि ससिणं वसुहावइण्णं
थंभेमि तस्स वि रविस्स रहं णहद्धे।
आणेमि जक्खसुरसिद्धगणंगणाओ
तं णत्थि भूमिवलए मह जं ण सज्झं (सक्कं)॥ २५ ॥

ता भण किं कीरदु (करीअदु) ?

भैरवानन्दः— दर्शयामि तमपि शशिनं वसुधावतीर्णं,
स्तभ्नामि तस्यापि रवे रथं नभोऽर्धे।
आनयामि यक्षसुरसिद्धगणाङ्गना-
स्तन्नास्ति, भूमिवलये मम यन्न साध्यम् (शक्यम्)॥ २५ ॥

तद्भण किं क्रियताम् ?

अन्वयः—तं पि ससिणं वसुहावइण्णं दंसेमि। तस्स वि रविस्स रहं णहद्धे थंभेमि। जक्खसुरसिद्धगणंगणाओ आणेमि। जं मह ण सज्झं तं भूमिवलए णत्थि॥ २५॥

व्याख्या—तं=प्रसिद्धम् आकाशे विद्यमानं, शशिनं=चन्द्रमसं, वसुधायां= पृथिव्याम्, अवतीर्णम्=आगतं वसुधावतीर्णं, दर्शयामि=आकाशादानीय दर्शयितुं पारयामि, अथवा तस्य=आकाशे सञ्चरणशीलस्य प्रसिद्धस्य रवेः= सूर्यस्य, रथमपि=स्यन्दनमपि, नभोऽर्धे=आकाशस्य मध्यभागे, स्तभ्नामि= अवरुद्धं करोमि। यद्वा यक्षाणाम्=एतज्जातीयानां देवयोनिविशेषाणां, सुराणां=सामान्यदेवतानां, सिद्धगणानाञ्च अङ्गनाः=प्रियाः, आनयामि=

भैरवानन्द—उस चन्द्रमा को भी पृथिवी पर उतारकर दिखा देता हूँ। उस सूर्य के रथ को भी अकाश के मध्य में रोक देता हूँ। यक्षों, देवताओं और सिद्धों की अङ्गनाओं को भी ला देता हूँ। इस पृथिवी-मण्डल पर ऐसा (कुछ भी) नहीं है जो मेरे द्वारा साध्य न हो। अर्थात् सब कुछ कर सकता हूँ॥२५॥

अतः कहें क्या करूँ ?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा—(विदूषकं विलोक्य) वअस्स ! भण किं पि अपुव्वं (अउव्वं) दिट्ठ महिलारअणं ?

विदूषकः—दिट्ठं दाव ।

राजा—कहेहि ।

विदूषकः—अत्थि एत्थ दक्खिणावहे वच्छोमं णाम णअरं । तहिं मए एक्कं कण्णारअणं दिट्ठं । तं इध (इह) आणीअदु ।

भैरवानन्दः—आणीअदि ।

राजा—[विदूषकं विलोक्य] वयस्य ! भण किमप्यपूर्वं दृष्टं महिलारत्नम् ?

विदूषकः—दृष्टं तावत् ।

राजा—कथय ।

विदूषकः—अस्ति तत्र दक्षिणापथे वैदर्भं नाम नगरं, तत्र मयैकं कन्यारत्नं दृष्टं, तदिह आनीयताम् ।

भैरवानन्दः—आनीयते ।

अत्रोपस्थापयामि । अस्मिन् भूमिवलये (भूमेः वलयं भूमिवलयं तस्मिन्)= पृथ्वीमण्डले तन्नास्ति यन्मम साध्यं न भवेत् = तन्नास्ति यन्मया न सम्पादन-योग्यमस्ति । एतादृशं किमपि कार्यं न जानामि यन्नाहं (भैरवानन्दः) कर्तुं शक्नोमि अर्थात् सर्वं कर्तुं समर्थोऽस्मि । अतः यादृशी इच्छा भवेत् तत्कथ्यताम् । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ २५ ॥

राजा—(विदूषक की ओर देखकर) मित्र ! कहो कोई अपूर्व (अद्वितीय) स्त्रीरत्न देखा है ?

विदूषक—हाँ देखा है ।

राजा—[जो देखा है उसे दिखलाने के लिए भैरवानन्द से] कहो ।

विदूषक—दक्षिण देश में विदर्भ नाम का नगर है वहाँ मैंने एक कन्या-रत्न देखा है । उसे यहाँ ले आओ ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा—अवदारिज्जदु पुण्णिमाहरिणंको धरणीअलम्मि।

[भैरवानन्दो ध्यानं नाटयति]

[ततः प्रविशति पटाक्षेपेण नायिका। सर्वे आलोकयन्ति]

राजा—अहह ! अच्छरिअं अच्छरिअं—

जं धोअंजणसोणलोअणजुअं लग्गालअग्गं मुहं
हत्थालंबिदकेसपल्लवचए दोल्लंति जं बिंदुणो।

राजा—अवतार्यतां पूर्णिमाहरिणाङ्को धरणीतले।

[भैरवानन्दः ध्यानं नाटयति]

[ततः प्रविशति पटाक्षेपेण नायिका। सर्वे आलोकयन्ति]

राजा—अहह ! आश्चर्यम् ! आश्चर्यम्—

यद्धौताञ्जनशोणलोचनयुगं लग्नालकाग्रं मुखं
हस्तालम्बितकेशपल्लवचये दोलायन्ते यद् विन्दवः।

अन्वयः—जं धोआंजणसोणलोअणजुअं लग्गालअग्गं मुहं, जं हत्थालंबिदकेसपल्लवचए विंदुणो दोल्लंति, जं एक्कं सिचअंचलं णिवसिदं तं ण्हाणकेलिट्ठिदा इअं अब्भुदेक्कजणणी अमुणा जोईसरेण आणीदा ॥ २६ ॥

भैरवानन्द—[अभी] लाता हूँ।

राजा—पूर्णिमा के चन्द्रमा को पृथिवीतल पर उतारो (अर्थात् पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह सुन्दर या आह्लादकारी उस कन्यारत्न को यहाँ उपस्थित करो)।

[भैरवानन्द ध्यान करने का अभिनय करता है]

[इसके बाद पर्दा हटाकर नायिका प्रवेश करती है। सभी देखते हैं।]

राजा—अहह ! आश्चर्य है, आश्चर्य है,—काजल के धुल जाने से नेत्र युगल लाल वर्ण के ही गये हैं : मुख पर बालों के अग्रभाग चिपके हुए हैं। हाथ से सम्हाले हुए केश-कलापों (केशों के प्रान्त भागों) से जल की बूंदे टपक रही हैं। एक गीला वस्त्र पहने हुए है। अतः ऐसा मालूम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जं एक्कं सिचअंचलं णिवसिदं तं ण्हाणकेलिट्ठिदा
आणीदा इअमब्भुदेक्कजणणी जोईसरेणामुणा ॥ २६ ॥

अवि अ—

यदेकं सिचयाञ्चलं निवसितं तत्स्नानकेलिस्थिता
आनीतेयमद्भुतैकजननी योगीश्वरेणामुना ॥ २६ ॥

अपि च—

व्याख्या—यत् धौतम् अञ्जनं यस्य तत् धौताञ्जनं = प्रक्षालनेन कज्जल-रहितं, धौताञ्जनं शोणं च = रक्तञ्च लोचनयुगं = नेत्रयुगलं यस्मिन् तत् धौताञ्जनशोणलोचनयुगं, लग्नाः = संसक्ताः अलकाग्राः = केशाग्रभागाः यस्मिन् तत् लग्नालकाग्रं, मुखम् = आननं, यत् हस्तेन = करेण आलम्बितः = गृहीतः हस्तालम्बितः हस्तालम्बितश्चासौ केशानाम् = अलकानां पल्लवचयः तस्मिन् हस्तालम्बितकेशपल्लवचये बिन्दवः = जलबिन्दवः, दोलायन्ते = स्रवन्ति । यदेकं सिचयाञ्चलम् = आर्द्रवस्त्रं, निवसितं = धारितं, तत् स्नानकेल्याम् = अवगाहनक्रीडायां, स्थिता = वर्तमाना, इयं = पुरो दृश्यमाना अद्भुतस्य या एकमात्रजननी अद्भुतैकजननी = विस्मयोत्पादिका लोकोत्तरा वा, अमुना=अनेन, योगीश्वरेण = भैरवानन्देन, आनीता = उपस्थापिता । सौन्दर्येण आश्चर्योत्पादिका इयं स्नानकेलिस्थिता कर्पूरमञ्जरी योगीश्वरेण बलादानीता । सद्यः स्नातायाः नायिकायाः स्वरूपचित्रणात् स्वभावोक्त्य-लङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ २६ ॥

पड़ता है कि स्नानक्रीड़ा करती हुई यह अद्भुत सुन्दरी जबरजस्ती इस योगीश्वर के द्वारा यहाँ लाई गई है[१] ॥ २६ ॥

और भी,

१. 'लोअणजुअं' को मुख का विशेषण बनाने पर अर्थ होगा—लाल वर्ण वाले नेत्रों से युक्त मुख पर । स्नानावस्था का स्वाभाविक वर्णन होने से यहाँ स्वभावोक्ति अलकार है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक्केण पाणिणलिणेण णिवेसअंती,
वत्थंचलं (प्रोत्तंचलं) घणथणत्थलसंसमाणं।
चित्ते लिहिज्जदि ण कस्स वि संजमंती,
अण्णेण चंकमणओ चलिअं कडिल्लं ॥ २७ ॥

एकेन पाणिनलिनेन निवेशयन्ती,
वस्त्राञ्चलं घनस्तनस्थलस्रंसमानम्।
चित्ते (चित्रे) लिख्यते न कस्यापि संयच्छन्ती,
अन्येन चङ्क्रमणतश्चलितं कटिवस्त्रम् ॥ २७ ॥

अन्वयः—एक्केण पाणिणलिणेण घणथणत्थलसंसमाणं वत्थंचलं णिवेसअंती, अण्णेण चंकमणओ चलिअं कडिल्लं संजमंती कस्स चित्ते ण कि लिहिज्जदि ॥ २७ ॥

व्याख्या—एकेन पाणिनलिनेन=करकमलेन घनाभ्यां=स्थूलाभ्यां स्तनस्थलाभ्यां = पयोधराभ्यां स्रंसमानं = स्खलितं, वस्त्राञ्चलं = वस्त्रप्रान्तभागं, निवेशयन्ती=स्वस्थाने पुनः स्थापयन्ती, अन्येन = द्वितीय-करकमलेन, चङ्क्रमणतः = इतस्ततः सञ्चलनात्, चलितं=स्वस्थानात् भ्रंशमानं, कटिवस्त्रं = कटिप्रदेशस्थपटं, संयच्छन्ती=पुनः पुनः स्वस्थाने स्थापयन्ती, इयं=सुन्दरी कस्यापि= कामुकपुरुषस्य, चित्ते = हृदये, न लिख्यते = न चित्र्यते किमु ? अपितु सर्वेषामपि मनांसि समावर्जयितुं शक्ता इयं सुन्दरी, अर्थादेनां विलोक्य सर्वे कामविह्वलाः

एक हस्तकमल से घनीभूत (पीन) पयोधरों पर से खिसकते हुए वस्त्राञ्चल (आँचल के वस्त्र) को सम्हालती हुई और दूसरे (हस्त-कमल) से लीलापूर्वक गमन के कारण खिसकते हुए कटिवस्त्र को पकड़े हुए (यह नायिका] किस [पुरुष] के हृदय-पटल पर चित्रित नहीं होगी अर्थात् अखिल जन मनोहारिणी होने से सबके हृदय में समा जायेगी ॥२७॥[1]

१. 'कडिल्लं' देशी शब्द है। 'तस्येदम्' इस अर्थ में 'उल्ल इल्लस्तु तद्भवे' से इल्ल प्रत्यय होगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदूषकः—

ण्हाणावमुक्काहरणोच्चआए तरंगभंग(भंगा-)क्खदमंडणाए।
ओल्लंसुउल्लासित (थ)-णुल्लआए सुंदेरसव्वस्समिमीअ दिट्ठी ॥२८॥

विदूषकः—

स्नानावमुक्ताभरणोच्चयायास्तरङ्गभङ्गक्षत (भङ्गाक्षत)-मण्डनायाः।
आर्द्रांशुकोल्लासिततनुलतायाः सौन्दर्यसर्वस्वमस्या दृष्टिः ॥२८॥

सन्तः चित्रलिखिता इव भवन्ति। वसन्ततिलकावृत्तम्। स्वभावोक्तिरलङ्कारः ॥ २७ ॥

अन्वयः—ण्हाणावमुक्काहरणोच्चआए तरंगभंगक्खदमंडणाए ओल्लंसुउल्लासितणुल्लआए इमीअ दिट्ठी सुंदेरसव्वस्सं (अस्ति) ॥ २८ ॥

व्याख्या—स्नाने = स्नानकाले (स्नानाय = स्नानार्थं वा) अवमुक्तः = परित्यक्तः आभरणानाम् = आभूषणानाम् उच्चयः = समूहः यया सा तस्याः स्नानावमुक्ताभरणोच्चयायाः, तरङ्गभङ्गैः = कल्लोलैः, क्षतं = धौतं, मण्डनं = चन्दनादिविलेपनद्रव्यं यस्याः तस्याः तरङ्गभङ्गक्षतमण्डनायाः (अथवा पाठान्तरे- तरङ्गा इव भङ्गाः विलासचेष्टाः तैः अक्षतं = पूर्ववद्वर्तमानं मण्डनम् = अलङ्करणं यस्याः सा तस्याः तरङ्गभङ्गाक्षतमण्डनायाः), आर्द्रञ्च तदंशुकम् आर्द्रांशुकं = जलसिक्तवसनं तेन उल्लासिनी = प्रकाशिनी या तनुलता = शरीरलता अस्ति यस्याः सा तस्याः आर्द्रांशुकोल्लासिततनुलतायाः, अस्याः = सुन्दर्याः कर्पूरमञ्जर्याः, दृष्टिः = दर्शनं, सौन्दर्यस्य सर्वस्वं सौन्दर्यसर्वस्वं = सौन्दर्याकरः अतिमनोहारिणी परमसुन्दरी चेत्यर्थः। अस्याः दृष्टिः सौन्दर्यं वर्षति। विभावनाविशेषोक्तिश्चालङ्कारौ ॥ २८ ॥

विदूषक—स्नान के समय इसने अपने सभी आभूषणों को उतार दिया है। जलक्रीड़ा (जल-तरंगों के झोंकों) से इसके कुंकुमादि विलेपन द्रव्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नायिका—(सर्वानवलोक्य स्वगतम्) एसो महाराओ को वि इमिणा गंभीरमहुरेण सोहासमुदाएण जाणीअदि। एसा वि एदस्स महादेवी लक्खीअदि (तक्कीअदि)। अद्धणारीसरस्स वामद्धे विअ अकहिआ वि गोरी मुणोज्जदि। एसो को वि जोईसरा। एस उण परिअणो। (विचिन्त्य) ता किं ति एदस्स महिला (दइआ)-सहिदस्स वि दिट्ठी मं बहु मण्णेदि। (इति त्र्यस्रं वीक्षते)।

नायिका—(सर्वानवलोक्य स्वगतम्) एष महाराजः कोऽप्यनेन गम्भीरमधुरेण शोभासमुदायेन ज्ञायते (तर्क्यते)। एसाप्यस्य महादेवी लक्ष्यते। अर्धनारीश्वरस्य वामार्धे अकथितापि गौरी ज्ञायते। एषः कोऽपि योगीश्वरः एष पुनः परिजनः। (विचिन्त्य) तत्किमित्येतस्य महिलासहित-स्यापि दृष्टिर्मां बहु मन्यते ? (इति त्र्यस्रं वीक्षते)।

भी धुल गये हैं। फिर भी गीले वस्त्र में से झाँक रही इसकी तनुलता घोषणा कर रही है कि इसकी दृष्टि सौन्दर्य का सर्वस्व है।। २८ ।।[1]

नायिका—[सब लोगों को देखकर, मन में] इस गम्भीर और मधुर आकृति (सोभा समुदाय) से ये कोई महाराज मालूम पड़ रहे हैं। ये कोई इनकी महादेवी जान पड़ती हैं। अर्द्धनारीश्वर (शिव) के वामार्ध में बिना कुछ कहे ही गौरी (पार्वती) जान पड़ती हैं। ये कोई योगीराज हैं। ये परिजन हैं। (विचार कर) फिर क्या कारण है कि महिला के साथ होने पर भी इनकी [महाराज की] दृष्टि मेरी ओर बड़े आदर से लगी हुई है !

---

१. 'थणुल्लआए' (स्तनोल्लासितायाः) पाठ करने पर अर्थ होगा 'गीलेव स्त्र में से इसके स्तन दिखलाई दे रहे हैं जो सौन्दर्य का सर्वस्व उद्घोषित कर रहे हैं अथवा इसका दर्शन सौन्दर्य के सर्वस्व का दर्शन है। 'तरंग-भंगाक्खदमंडणाए' की संस्कृत छाया तरङ्गभङ्गाक्षतमण्डनायाः होगी। यह पाठ होने पर अर्थ होगा—लीलापूर्वक गमन से अक्षत अलङ्कारों से अलंकृत।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा—(विदूषकमपवार्य)—

जं मुक्का सवणंतरेण तरला (सहसा) तिक्खा कडक्खच्छडा ।
भिंगाहिट्ठिद (-अड्ढिअ) - केदअग्गिमदलद्दोणीसरिच्छच्छवी ।

राजा—(विदूषकमपवार्य)—

यन्मुक्ता श्रवणान्तरेण तरला (सहसा) तीक्ष्णा कटाक्षच्छटा
भृङ्गाधिष्ठित (-आकृष्ट) - केतकाग्रिमदलद्रोणीसदृक्षच्छविः ।

अन्वय—सवणंतरेण तरला भिंगाहिट्ठिदकेदअग्गिमदलद्दोणीसरिच्छच्छवी तिक्खा कडक्खच्छडा जं (सहसा) मुक्का तं एत्थंतरे कप्पूररसेण धवलिदो णं, जोण्हाइ ण्हाविदो णं, मुत्ताणं घणरेणुण व्व छुरिदो जादो म्हि ।।२६।।

व्याख्या—श्रवणान्तरेण = कर्णप्रान्तेन तिर्यगवलोकनेन वा तरला = चञ्चला भृङ्गेन = भ्रमरेण अधिष्ठितः = युक्तः यत् केतक्याः = केतकीकुसुमस्य अग्रदलम् = अग्रिमपल्लवः स एव द्रोणी = नौका तत्सदृक्षा = तत्समाना छविः = कान्तिः यस्याः सा भृङ्गाधिष्ठितकेतकाग्रिमदलद्रोणीसदृक्षच्छविः, तीक्ष्णा = तीव्रा (उन्मादकारिणी) कटाक्षच्छटा = कटाक्षशोभा (नेत्र-

[तिरछी नजर से देखती है][1]

राजा—(विदूषक से अपवारित[2] में)—

कानों तक फैली हुई तथा भौंरे से अधिष्ठित केतकी के अग्रिम दलरूपी द्रोणी के सदृश कान्तिवाली तीक्ष्ण कटाक्ष-परम्परा से जब अचानक मुझे देखा

१. 'त्र्यस्रं' यह क्रिया-विशेषण है । इससे नायिका का कातर-दर्शन मालूम पड़ता है । 'सभयान्वेषणपरं यत्तत्कातरमुच्यते'
'त्रस्तं' पाठ करने पर अर्थ होगा 'भयभीत' ।

२. नाट्यधर्म की दृष्टि में वस्तु तीन प्रकार की मानी जाती है—सर्वश्राव्य, नियतश्राव्य और अश्राव्य । सर्वश्राव्य को 'प्रकाशम्' शब्द से कहा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तं कप्पूररसेण णं धवलिदो जोण्हाइ णं ण्हाविदो
मुत्ताणं घणरेणुण व्व छुरिदो जादो म्हि एत्थंतरे ॥ २९ ॥

तत्कर्पूररसेन ननु धवलितो ज्योत्स्नया ननु स्नापितो
मुक्तानां घनरेणुनेव छुरितो जातोऽस्म्यत्रान्तरे ॥ २९ ॥

संचालनपरम्परायाः शोभा) यदनया मां प्रति सहसा मुक्ता = प्रसारिता, तया कटाक्षपरम्परया, अत्रान्तरे अहं = चन्द्रपालः, कर्पूररसेन = कर्पूरपरागेण, धवलितः = धवलवर्णः जातोऽस्मि किमु, ज्योत्स्नया = चन्द्रिकया, स्नापितः = प्रक्षालितः किमु, मुक्तानां = मुक्ताफलानां, घनरेणुना = सान्द्रचूर्णेन, छुरितः = अनुलिप्तः जातोऽस्मि किमु, सितकृष्णौ कटाक्षावुक्तौ । रत्याख्यः स्थायिभावः । दृग्विकारा अनुभावाः । हर्षादयो व्यभिचारिणः । उत्प्रेक्षालंकारः रूपकञ्च । शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ २९ ॥

तो उस समय मैं मानों कर्पूर के रस से धवलित कर दिया गया, ज्योत्स्ना से मानो स्नान कराया गया तथा मोतियों के घनीभूत अंगराग से लिप्त कर दिया गया[१] ॥ २९ ॥

जाता है। अश्राव्य को 'स्वगतम्' शब्द से प्रकट किया जाता है। नियतश्राव्य के दो भेद हैं—(क) अपवारित (मुँह फेरकर दूसरे से गुप्त बात करना) और जनान्तिक (बहुतों के मध्य दो पात्रों की बात)। यहाँ जनान्तिक के लिए अपवार्य का प्रयोग है। जनान्तिक का स्वरूप है—

त्रिपताककारेणान्यानपवार्यान्तरा कथाम् ।
अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्याज्जनान्ते तज्जनान्तिकम् ॥ दशरूपक १.६५-६६.

संगीतरत्नाकर में त्रिपताका का स्वरूप है—

तर्जनीमूलसंलग्नकुञ्चिताङ्गुष्ठको भवेत् ।
पताकः संहताकारः प्रसारितकराङ्गुलिः ।
स एव त्रिपताकः स्याद्वक्रितानामिकाङ्गुलिः ॥

१. 'द्रोणी' (द्रु + नि + ङीष्)—यह नेत्रों की बनावट को प्रकट करने के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदूषकः—अहो ! से रूवसोहा—

मण्णे मज्झं तिवलिवलिअं डिंभमुट्ठीअ गेज्झं
णो बाहूहिं रमणफलअं वेट्ठिदुं (वेढिउं) जाइ दोहिं।
णेत्तक्खेत्तं तरुणि (तरुणं) - पसईदिज्जमाणोवमाणं
ता पच्चक्खं मह विलिहिदुं जाइ एसा ण चित्ते ॥३०॥

विदूषकः—अहो ! अस्या रूपशोभा—

मन्ये मध्यं त्रिवलिवलितं डिम्भमुष्ट्या ग्राह्यं
नो बाहुभ्यां रमणफलकं वेष्टितुं याति द्वाभ्याम्।
नेत्रक्षेत्रं तरुणी (तरुण)-प्रसृतिदीयमानोपमानं
तत्प्रत्यक्षं मया विलिखितुं यात्येषा न चित्ते (चित्रे) ॥३०॥

अन्वयः—तिवलिवलिअं मज्झं डिंभमुट्ठीअ गेज्झं। रमणफलअं दोहिं वाहूहिं वेट्ठिदुं णो जाइ। णेत्तक्खेत्तं तरुणिपसइदिज्जमाणोवमाणं। ता एसा मह पच्चक्खं (परन्तु) चित्ते विलिहिदुं ण जाइ (इति) मण्णे ॥ ३० ॥

व्याख्या—त्रिवलीभिः = तिसृभिः वलीभिः उदररेखाभिः वलितं = वक्रीभावं गतं त्रिवलीवलितं [तस्याः=कर्पूरमञ्जर्याः] मध्यं=मध्यभागः (कटि-प्रदेशः) डिम्भस्य=वालकस्य मुष्ट्या ग्राह्यम् मुष्टिग्राह्यं = शिशुमुष्टि-मानमात्रं, रमणफलकं = जघनस्थलं, द्वाभ्यां वाहुभ्यां वेष्टितुम् = आवरीतुं न याति = न शक्यते, नेत्रक्षेत्रं = नयनपरिसरः, तरुणी चासौ प्रसृतिः = वितस्तिः तया दीयमानमुपमानं यस्य तत् तरुणीप्रसृतिदीयमानोपमानं =

विदूषक—अहो ! इसकी रूप शोभा [कल्पनातीत है]—त्रिवली से युक्त इसका मध्यभाग (कमर) वालक की मुट्ठी से भी पकड़ा जा सकता है। इसकी जंघायें दोनों बाहुओं से भी आवेष्टित नहीं की जा सकती हैं। नेत्रों का विस्तार तरुणि (युवति) की वितस्ति (तलहत्थी) के वरावर है।

लिए प्रयुक्त हुआ है। द्रोणीदल = छोटी नौका (डोंगी) के आकार का केतकी का पत्र। यहाँ उपमा तथा उत्प्रेक्षा अलङ्कार हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कधं ण्हाणधोदविलेवणा वि समुत्तारिदविहूसणा वि रमणिज्जा । अहवा,

रूवेण मुक्का वि विहूसअंति ताणं अलंकारवसेण सोहा ।
णिसग्गचंगस्स वि माणुसस्स सोहा समुम्मीलइ भूसर्णेहिं ।।३१।।

कथं स्नानधौतविलेपना समुत्तारितविभूषणापि रमणीया । अथवा—

रूपेण मुक्ता अपि विभूषयन्ति तासामलंकारवशेन शोभा ।
निसर्गचङ्गस्यापि मानुषस्य शोभा समुन्मीलति भूषणैः ।। ३१ ।।

विशालाञ्जलिपुटप्रमाणमस्ति । यद्यपि एषा=इयं सुन्दरी, मम प्रत्यक्षम्=दृष्टिगोचरा, तथापि (मम) चित्ते=अन्तःकरणे, विलिखितुं=चित्रितुं, न याति=शक्यत इति मन्ये । अत्रोपमा-उत्प्रेक्षालङ्कारौ । मन्दाक्रान्तावृत्तम् ।। ३० ।।

अन्वयः—(जे) रूवेण मुक्का वि विहूसअन्ति ताणं अलंकारवसेण सोहा (भवति) । णिसग्गचंगस्स वि माणुसस्स सोहा भूसर्णेहिं समुम्मीलइ ।। ३१ ।।

व्याख्या—याः नार्यः रूपेण मुक्ताः=सौन्दर्येण रहिताः नेपथ्यादिभिः अलङ्कारैः, स्वशरीरं विभूषयन्ति=अलङ्कुर्वन्ति, तासां=सौन्दर्यरहितानां युवतीनाम्, अलङ्कारवशेन=नेपथ्यकरणेनैव, शोभा=सौन्दर्यमस्तीति नान्यथा

यद्यपि यह मेरे सामने है फिर भी इसे अन्तःकरण में चित्रित (अंकित) नहीं किया जा सकता है[1] ।। ३० ।।

स्नान करने से विलेपन आदि के धुल जाने पर भी तथा आभूषणों के उतार दिए जाने पर भी यह कितनी सुन्दर है ? अथवा

[जो] युवतियाँ रूप से विहीन होकर भी अलङ्कार धारण करती हैं उनकी सुन्दरता अलङ्कारों के अधीन होती है । किन्तु जो स्वभाव-सुन्दर

---

१. यहाँ नायिका के रूप-लावण्य का वर्णन है । उपमा अलङ्कार है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा—एदाए दाव एदं । जदो--

लावण्णं णवजच्चकंचणणिहं णेत्ताण दीहत्तणं
कण्णेहिं खलिदं कवोलफलआ दोखंडचंदोवमा ।

राजा—एतस्यास्तावदेतत् । यतः—

लावण्यं नवजात्यकाञ्चननिभं नेत्रयोर्दीर्घत्वं
कर्णाभ्यां स्खलितं कपोलफलके द्विखण्डचन्द्रोपमे ।

अर्थात् तासां सौन्दर्यम् अलङ्काराधीनमेव भवति । निसर्गेण चङ्गस्य=सुन्दरस्य निसर्गचङ्गस्य=प्रकृत्या रमणीयस्य, मानुषस्य=नरस्य, शोभा=लावण्यं, भूषणैः=अलङ्कारैः, समुन्मीलति=परां कोटिमावहति उत्कर्षं लभते वा । सरलार्थः—येषां यासां वा निसर्गसौन्दर्यं नास्ति तेषां तासां वा अलङ्कारेण शोभा भवति किन्तु येषां यासां वा नैसर्गिकं सौन्दर्यमस्ति तेषां तासां वा अलङ्कारैः रमणीयता नितरां वृद्धिमायातीत्यर्थः । समाध्यलङ्कारः । उपजातिवृत्तम् ॥३१॥

अन्वयः—लावण्णं णवजच्चकंचणणिहं, णेत्ताण दीहत्तणं कण्णेहिं खलिदं, कवोलफलआ दोखण्डचंदोवमा, संधिदधणुद्दंडेण पंचसरेण एसा रक्खिज्जए जेण सोसणमोहणप्पहुइणो मग्गणा मं विधंति ॥ ३२ ॥

व्याख्या—अस्याः नायिकायाः लावण्यं = सौन्दर्यं (मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा । प्रतिभाति यदङ्गेषु लावण्यं तदिहोच्यते), नवं जात्यं =उत्कृष्टं च यत् काञ्चनं तन्निभं नवजात्यकाञ्चननिभम्=नूतनोत्पन्नसुवर्णसदृशं, नेत्रयोः दीर्घत्वं=विस्तृतत्वं, कर्णाभ्यां स्खलितम् = कर्णपर्यन्तव्याप्तमिव ।

हैं (उन्हें अलङ्कारों की अपेक्षा नहीं होती है, अपितु) उनकी शोभा में अलङ्कारों से उत्कर्ष आता है[1] ॥ ३१ ॥

राजा—इसके विषय में ऐसा ही है, क्योंकि—

[इसका] सौन्दर्य नवीन जात्य सुवर्ण (असली सोने) की तरह है । नेत्रों की लम्बाई कर्णपर्यन्त व्याप्त है । दोनों कपोल चन्द्रमा के दो टुकड़ों

१. पोद्दार-संस्करण में यह पद्य तथा इससे पूर्ववर्ती पद्य को राजा की ही उक्ति बतलाई है । 'णिसग्गचंगस्स वि' के स्थान पर 'णिसग्गचंगस्स ण'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एसा पंचसरेण संधिद(कड्ढिअ)-धणुद्दंडेण रक्खिज्जए
जेणं सोसणमोहणप्पहुइणो विधंति मं मग्गणा ॥ ३२ ॥

एषा पञ्चशरेण संधित (आकृष्ट)-धनुर्दण्डेन रक्ष्यते
येन शोषणमोहनप्रभृतयो विध्यन्ति मां मार्गणाः ॥ ३२ ॥

कपोलफलकौ = कपोलभागौ, द्विखण्डचन्द्रोपमौ = द्विधाभूतचन्द्रसदृशौ अर्धचन्द्रसदृशौ वा, धनुः एव दण्डः धनुर्दण्डः संधितो धनुर्दण्डः येन तेन संधितधनुर्दण्डेन = सज्जित (आरोपित)-धनुर्यष्टिना, पञ्चशरेण=कामदेवेन (गृहीतचापेन), रक्ष्यते खलु एषा = नायिका कर्पूरमञ्जरी, येन=धनुषा निर्गता शोषण-मोहनप्रभृतयः=शोषणेन शरीरजा मोहनेन मानसाश्च विकारा लक्षिताः । 'मोहस्तु मूर्च्छनं भीतिर्दुःखवेगानुचिन्तनैः । तत्राज्ञानभ्रमापातघूर्णनादर्शनादयः' । कामदेवप्रयुक्ताः मार्गणाः = शराः, माम् = चन्द्रपालनामानं नृपं, विध्यन्ति = व्रणयन्ति व्यथयन्ति । एतद्दर्शने जाते सति कामाभिभूतोऽहमित्यर्थः । रूपमालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ ३२ ॥

(अर्धचन्द्र) के समान हैं । धनुष को खींचे हुए कामदेव इसकी रक्षा में तत्पर हैं अतएव [कामदेव के] शोषण और मोहन आदि बाण मुझे चुभ रहे हैं' ॥३२॥

पाठ है, तदनुसार अर्थ होगा—स्वभाव से सुन्दर मनुष्यों को अभूषणों से कोई प्रयोजन नहीं है क्योंकि उनसे सौन्दर्य में कोई अतिशय नहीं होता है । यह पाठ राजा की उक्ति मानने पर ही संगत हो सकता है क्योंकि आगे (१.३३; २.२५–२६; ३.१३–१४) की उक्तियों से यही प्रमाणित होता है कि राजा स्वभाव से सुन्दर होने पर अलङ्कारों को व्यर्थ मानता है जबकि विदूषक अलङ्कारों को उत्कर्षजनक ।

यहाँ समाधि अलंकार है—'समाधिः सुकरं कार्यं कारणान्तरयोगतः ।' का० प्र० १०.१२५.

१. कामदेव के पाँच वाण हैं—शोषण, मोहन, मादन, तापन और मारण । यहाँ वस्तु से उपमा-अलंकार ध्वनि है—जैसे बगीचे का रक्षक (माली)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदूषकः—(विहस्य) जाणे रत्थाए लोट्टदि से सोहारश्रणं (जाणादि रच्छावादो लुंबीसोडीरत्तणं) ।

राजा—(विहस्य) पिश्रवश्रस्स ! कधेमि दे—

अंगं चंगं णिअगुणगणालंकिअं कामिणीणं
पच्छाअंती उण तणसिरिं भाइ णेवच्छलच्छी ।

विदूषकः—(विहस्य) जाने रथ्यायां लुठत्यस्याः शोभारत्नम् । (जानाति रथ्यावातो लताशौटीर्यम्) ।

राजा—(विहस्य) प्रियवयस्य ! कथयामि ते—

अङ्गं चङ्गं निजगुणगणालंकृतं कामिनीनां
प्रच्छादयन्ती पुनस्तनुश्रियं भाति नेपथ्यलक्ष्मीः ।

अन्वयः—कामिणीणं चंगं अंगं णिअगुणगणालंकिअं (भवति) । नेवच्छ-लच्छी उण तणुसिरिं पच्छाअंती भाइ । जाणं इत्थं अवअवगआ का वि सुंदेरमुद्दा ताणं वलइदधणू अणंगो णिच्चभिच्चो (अस्तीति) मण्णे ।। ३३ ।।

व्याख्या—कामिनीनां=विलासवतीनां, चङ्गं=सुन्दरम्, अङ्गं=शरीरं, निजगुणगणैः=स्वकीयविभ्रमविलासादिगुणसमूहैः, अलङ्कृतं=भूषितमिव भाति, न तासां वाह्यप्रसाधनापेक्षा भवति । किन्तु नेपथ्यलक्ष्मीः=वाह्यप्रसा-धनजन्यकान्तिः, तनुश्रियं=शरीरशोभां प्रच्छादयन्ती=आच्छदनं कुर्वती भाति ।

विदूषक—(हँसकर) इसका सौन्दर्यरूपी रत्न गली में पड़ा हुआ सा है[1]।

राजा—(हँसकर) प्रिय मित्र ! तुमसे कह रहा हूँ—

कामिनियों का सुन्दर शरीर अपने (प्राकृतिक) गुणों (विभ्रम, विलास आदि) से ही सुशोभित होता है । वस्त्रादि से की गई बाह्य साज-सज्जा

वगीचे के फूलों पर बुरी दृष्टि से देखने वाले को प्रताड़ित करता है वैसे ही इस नायिका का रक्षक (कामदेव) इस पर दृष्टि लगाने वाले को अपने मोहन, तापन आदि वाणों से प्रताड़ित करता है ।

१. पोद्दार-संस्करण में—'जाणे रच्छासु लुण्ठदि तुह सोण्डीरत्तणं' पाठ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इत्थं जाणं अवअवगआ का वि सुंदेरमुद्दा
मण्णे ताणं वलइदधणू णिच्चभिच्चो अणंगो ॥ ३३ ॥

इत्थं यासामवयवगता काऽपि सौन्दर्यमुद्रा
मन्ये तासां वलयितधनुर्नित्यभृत्योऽनङ्गः ॥ ३३ ॥

यासां = कामिनीनां, इत्थम् = अनेन प्रकारेण, कापि=अनिर्वचनीया, अवयवगता=प्रत्यवयवगता, सौन्दर्यमुद्रा = लावण्यसम्पदस्ति, तासां=कामिनीनां, वलयितधनुः = आरोपितसायकः, नास्ति अङ्गं=स्थूलं शरीरं यस्य सः अनङ्गः= कामदेवः, नित्यभृत्यः=सततकिङ्करः अस्तीति मन्ये=सम्भावयामि। यथा कोपि भृत्यः भर्तुराज्ञां विनैव तदाशयं ज्ञात्वा तत्कार्यं करोति एवमेव कामदेवः अस्याः सुन्दर्याः कटाक्षेणैव कामिनो वशीकरोति। इत्थमत्र सुन्दर्याः सर्वाङ्गव्यापिसौन्दर्यमुक्तम्। उत्प्रेक्षालङ्कारः। मन्दाक्रान्तावृत्तम् ॥ ३३ ॥

उसके शरीर की कान्ति को आच्छादित कर देती है। जिन [कामिनियों] के प्रत्येक अवयवों में कोई अनिर्वचनीय सौन्दर्य की मुद्रा होती है उनकी [रक्षा के लिए] धनुष को खींचे हुए कामदेव सेवक की तरह हमेशा तत्पर रहता है। अर्थात् ऐसी युवतियों को देखते ही कामीजन काम-प्रहार से उद्विग्न हो जाते हैं[1] ॥ ३३ ॥

दिया गया है और तदनुसार अर्थ किया है—'समझ गया, तुम्हारे पौरुष ने घुटने टेक दिए हैं।' पाठान्तर में 'गली की तेज आँधी और लता के पराक्रम को जानता हूँ।'

१. यहाँ अलंकार (उत्प्रेक्षा) से अलङ्कार (उपमा) ध्वनि है—जैसे कोई इशारे को समझने वाला आज्ञाकारी सेवक अपने मालिक की आज्ञा के विना ही उसके आशय को समझकर कार्य करता है वैसे ही कामदेव यहाँ कामिनी के कटाक्षमात्र को देखकर कामीजनों को वश में कर लेता है। यहाँ सार अलङ्कार भी है—'उत्तरोत्तरमुत्कर्षो भवेत्सारः परावधिः। (का० प्र० १०.१२३)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अवि अ, एदाए—

तहा रमणवित्थरो जह ण ठाइ कंचीलआ
तहा सिहिण (थण)-तुंगिमा जह णिएइ णाहिं ण हु (मुहं)।
तहा णअणवड्ढिमा जह ण किं पि कण्णुप्पलं
तहा अ मुहमुज्जलं दुससिणी जहा पुण्णिमा ॥ ३४ ॥

अपि च, एतस्याः—

तथा रमणविस्तरो यथा न तिष्ठति काञ्चीलता
तथा च स्तनतुङ्गिमा यथा नैति नाभिं न खलु (मुखम्)।
तथा नयनवृद्धिर्यथा न किमपि कर्णोत्पलं
तथा च मुखमुज्ज्वलं द्विशशिनी यथा पूर्णिमा ॥ ३४ ॥

अन्वयः—रमणवित्थरो तहा जह कंचीलआ ण ठाइ। सिहिणतुंगिमा तहा जह णाहिं ण हु णिएइ। णअणवड्ढिमा तहा जह कण्णुप्पलं ण किं पि। मुहं अ तहा उज्जलं जहा दुससिणी पुण्णिमा ॥ ३४ ॥

व्याख्या—अस्याः कर्पूरमञ्जर्याः रमते मनोऽस्मिन्निति रमणं तस्य विस्तरः रमणविस्तरः = जघनपरिसरस्य विशालता, तथा = तावत्परिमाणं यथा काञ्चीलता (काञ्च्याः लता)=रशना (कटिसूत्रम्) तत्र न तिष्ठति=नालं भवति। स्तनयोः तुङ्गिमा (तुङ्गस्य भावः) स्तनतुङ्गिमा=पयोधरोन्नतिः तथा वर्तते यथा नाभिं नैति खलु=नाभिप्रदेशम् अवलोकयितुं नायिका शक्ता न भवति। नयनयोः बंहिमा नयनबंहिमा (बहुल शब्दस्य स्थाने बंहादेशः। बहुलस्य भावः बंहिमा। बंह्+इमनिच्)= नेत्रयोर्विशालता तथा अस्ति यथा कर्णयोः उत्पलम् कर्णोत्पलम्=कर्णाभरणं,

---

और भी इसकी—

जंघाओं का विस्तार इतना अधिक है कि करधनी (काञ्चीलता) अपर्याप्त है। स्तनों की ऊँचाई इतनी अधिक है कि [यह नायिका] निश्चय ही अपनी नाभि नहीं देख सकती है। आँखों की विशालता इतनी अधिक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देवी—अज्ज कविंजल ! पुच्छिअ जाण का एस त्ति ।

विदूषकः - (तां प्रति ।) एहि मुद्धमुहि ! उवविसिअ णिवेदेहि का तुमं ति ।

राजा—आसणं इमीए ।

विदूषकः - एदं उत्तरीअं आसणं ।

देवी—आर्यं कपिञ्जल ! पृष्ट्वा जानीहि कैषेति ।

विदूषक:—(तां प्रति) एहि मुग्धमुखि ! उपविश्य निवेदय का त्वमिति ।

राजा—आसनमस्यै ।

विदूषक:— एतन्मे उत्तरीयमासनम् ।

न किमपि=निरर्थकमिति । नेत्रे खलु कर्णोत्पलयोरपि कार्यं कुरुतः । मुखम् = आननं च तथा उज्ज्वलं=कान्तिमदस्ति यथा द्वौ शशिनौ चन्द्रौ यस्यां सा द्विशशिनी = चन्द्रद्वयोपलक्षिता पूर्णिमा भवेत् । अतिशयोक्ति-उपमालंकारौ । पृथ्वीवृत्तम् ॥ ३४ ॥

है कि कर्णोत्पल की कोई आवश्यकता नहीं है । मुख इतना अधिक उज्ज्वल है कि पूर्णिमा दो चन्द्रमाओं वाली हो जाती है[१] ॥ ३४ ॥

देवी—आर्यं कपिञ्जल ! पूछिए तो यह कौन है ?

विदूषक—(नायिका को लक्ष्य करके) हे मुग्धमुखि ! आओ, बैठो और बतलाओ कि तुम कौन हो ?

राजा—इसके लिए आसन दो ।

विदूषक—यह मेरा उत्तरीय आसन है (इसे बिछाकर बैठ जाओ) ।

---

१. 'अद्भुतोपमा वाला इस नायिका का शरीर परम आह्लाद का जनक है' यह इस पद्य से ध्वनित हो रहा है । प्रथम तीन चरणों में अतिशयोक्ति और हेतु अलङ्कार हैं । चतुर्थ चरण में प्रक्रमभङ्ग दोष कहा जा सकता है परन्तु 'तहा अ मुहमुज्जलं जह ण उज्जलं कंचणं' ऐसा पाठ करने पर 'प्रक्रमभङ्ग' दोष नहीं रह जाता है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

[विदूषकनायिके वस्त्रदानोपवेशने नाटयतः]

विदूषकः—भोदि ! संपदं कहिज्जदु (कधीअद)।

नायिका - अत्थि एत्थ दक्खिणावधे (वच्छोमं णाम णअरं) कुंतलेसुं (तहिं) सअलजणवल्लहो वल्लहराओ णाम राआ।

देवी—(स्वगतम्) जो मह माउसिआए (मादुच्छिओ) पई होदि।

नायिका—तस्स घरणो ससिप्पहा णाम।

देवी—(स्वगतम्) सा. वि मे माउच्छिआ।

[विदूषकनायिके वस्त्रदानोपवेशने नाटयतः]

विदूषकः—भवति ! सांप्रतं कथ्यताम्।

नायिका—अस्त्यत्र दक्षिणापथे (विदर्भं नाम नगरं) कुन्तलेषु। (तत्र) सकलजनवल्लभो वल्लभराजो नाम राजा।

देवी—(स्वगतम्) यो मम मातृष्वसुः पतिर्भवति।

नायिका—तस्य गृहिणी शशिप्रभा नाम।

देवी—सापि मे मातृष्वसा।

[विदूषक वस्त्र देता है और नायिका उस पर बैठती है]

विदूषक—हाँ। अब कहो।

नायिका—दक्षिणपथान्तर्गत कुन्तल देश में विदर्भ नाम का एक नगर है वहाँ समस्त जनों के लिए प्रिय वल्लभराज नाम का राजा रहता है।

देवी—(स्वगत) जो मेरी मौसी के पति हैं।

नायिका—उसकी गृहिणी का नाम शशिप्रभा है।

देवी—(स्वगत) वह मेरी मौसी है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नायिका—तेहिं अहं खलखंडेहिं कीणिदा दुहिद त्ति वुच्चामि।[1] (तेहिं अहं उप्पण्णेत्ति) ।

देवी—(स्वगतम्) ण हु ससिप्पहागब्भुप्पत्ति अंतरेण ईदिसी रूवसोहा। ण हु विडूरभूमिं अंतरेण वेरुलिअमणिसलाआ णिप्पज्जदि। (प्रकाशम्) णं तुमं कप्पूरमंजरी।

[नायिका सलज्जमधोमुखी तिष्ठति ।]

नायिका—ताभ्यामहं खलखण्डैः क्रीणिता (क्रीता) दुहितेत्युच्ये। (ताभ्यामहमुत्पन्नेति) ।

देवी—(स्वगतम्) न खलु शशिप्रभागर्भोत्पत्तिमन्तरेणेदृशी रूपशोभा। न खलु वैदूर्यभूमिमन्तरेण वैदूर्यमणिशलाका निष्पद्यते। (प्रकाशम्) ननु त्वं कर्पूरमञ्जरी।

[नायिका सलज्जमधोमुखी तिष्ठति]

नायिका—उन्हीं के द्वारा खल-खण्डों से खरीदी गई मैं पुत्री हूँ[1] (अर्थात् उनसे उत्पन्न पुत्री हूँ।)

देवी—(स्वगत) शशिप्रभा के गर्भ को छोड़कर और कहाँ से ऐसी रूप-शोभा उत्पन्न हो सकती है। वैदूर्यमणि की खान से ही वैदूर्यमणि की शलाका प्राप्त होती है। (प्रकाश में) क्या तुम कर्पूरमञ्जरी हो?

[नायिका लज्जा के साथ मुख नीचे कर लेती है।]

---

१. 'खलखण्ड के मूल्य से खरीदी गई।' यहाँ एक प्रथा का संकेत मिलता है—जिन माताओं के यहाँ सन्तान जीवित नहीं रहा करती थी वे मातायें अपनी सन्तान को किसी दूसरे व्यक्ति को दे देती थीं पश्चात् कुछ भेंट देकर उनसे उस सन्तान को खरीद लेती थीं। इसी प्रथा की ओर यहाँ संकेत किया गया है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देवी—एहि बहिणिए ! आलिंगसु मं । (इति परिष्वजते ।)

कर्पूरमञ्जरी—अम्महे, कप्पूरमंजरीए एसो पढमो पणामो ।

देवी—अज्ज भइरवाणंद ! मए तुज्झ प्पसाएण अपुव्वं संविहाणअं अणुभविदं कप्पूरमंजरी (बहिणिआए) - दंसणेण । ता चिट्ठदु दाव एसा पचदसदिवसाइं । पच्छा झाणविमाणेण णइस्सध ।

भैरवानन्दः—जं भणादि देवी ।

विदूषकः—(राजानमुद्दिश्य ।) भो वअस्स ! अम्हे परं दुवे वि बाहिरा तुवं अहं च । जदो एदाणं मिलिदं कुडुंब वट्टदि । जदो

देवी—एहि भगिनिके ! अलिङ्गय माम् । [इति परिष्वजते]

कर्पूरमञ्जरी—आर्ये ! कर्पूरमञ्जर्या एष प्रथमः प्रणामः ।

देवी—आर्य भैरवानन्द ! मया तव प्रसादेन अपूर्वं संविधानकमनुभूतं कर्पूरमञ्जरी (भगिन्या)-दर्शनेन । तत्तिष्ठतु तावदेषा पञ्चदशदिवसान् । पश्चाद् ध्यानविमानेन नेष्यथ ।

भैरवानन्दः—यद्भणति देवी ।

विदूषकः—(राजानमुद्दिश्य) भो वयस्य ! आवां परं द्वावपि बाह्यौ त्वमहं च । यत एतासां मिलितं कुटुम्बकं वर्तते । यत इमे द्वे अपि भगिन्यौ ।

देवी—बहिन आओ । मेरा आलिङ्गन करो [आलिङ्गन करती है] ।

कर्पूरमञ्जरी—आर्ये ! कर्पूरमञ्जरी का यह प्रथम प्रणाम है [इसे स्वीकार करें] ।

देवी—आर्य भैरवानन्द ! आपकी कृपा से बहिन कर्पूरमञ्जरी का दर्शन हुआ तथा उससे अपूर्व प्रसन्नता हुई । अतएव इसे पाँच-दस दिनों तक यहीं रहने दें पश्चात् ध्यानरूपी विमान से इसे ले जाना ।

भैरवानन्द—जैसी देवी की आज्ञा ।

विदूषक—[राजा के प्रति] हे मित्र ! यहाँ हम दोनों (मैं और आप) ही बाहरी हैं । ये सब कुटुम्बी हैं । ये दोनों बहिनें हैं । भैरवानन्द

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इमीओ दो वि बहिणिआओ। भइरवाणंदो उण एदाणं संजोअअरो अच्चिदो महग्घिदो अ। एसा वि विअक्खणा महीअलसरस्सदी कुट्टिणी देवी ज्जेव देहंतरेण।

देवी—विअक्खणे ! णिअजेट्ठबहिणिअं सुलक्खणं भणिअ भइरवाणंदस्स हिअइच्छिदा सवज्जा कादव्वा।

विचक्षणा—जं देवी आणवेदि।

देवी—(राजानं प्रति) अज्जउत्त ! पेसिहि मं, जेण अहं बहिणीए एदावत्थाए णेवच्छलच्छीलीलाणिमित्तं अंतेउरं गमिस्सं।

भैरवानन्दः पुनरेतयोः संयोगकरोऽर्चितो महार्घितश्च। एषाऽपि विचक्षणा महीतलसरस्वती कुट्टनी देहान्तरेण देव्येव।

देवी—विचक्षणे ! निजज्येष्ठभगिनिकां सुलक्षणां भणित्वा भैरवानन्दस्य हृदयेप्सिता सपर्या कर्तव्या।

विचक्षणा—यद्देव्याज्ञापयति।

देवी—(राजानं प्रति) आर्यपुत्र ! प्रेषय माम्, येनाहं भगिन्या एतदवस्थाया नेपथ्यलक्ष्मीलीलानिमित्तमन्तःपुरं गमिष्यामि।

इन दोनों को मिलाने वाला होने से पूजनीय है। यह विचक्षणा पृथ्वीतल की सरस्वती है तथा यह कुट्टनी देहान्तर से साक्षात् देवी ही है।

देवी—हे विचक्षणे ! अपनी बड़ी बहिन सुलक्षणा से कहकर भैरवानन्द का मनोनुकूल सत्कार कराओ।

विचक्षणा—जैसी देवी की आज्ञा।

देवी—[राजा के प्रति] आर्यपुत्र ! मुझे आज्ञा दें जिससे मैं इस अवस्था को प्राप्त अपनी बहिन को नेपथ्य-रचना (अलङ्करण) के लिए अन्तःपुर में ले जाऊँ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा—जुज्जदि चंपअलदाए कत्थूरिआकप्पूररसेहिं आलवालपरिपूरणं ।

(नेपथ्ये)

वैतालिकयोरेकः—सुहाय संझा भोदु देवस्स—

एअं वासरजीवपिंडसरिसं चंडंसुणो मंडलं
को जाणाइ कहिं पि संपइ गअं पत्तम्मि कालंतरे ।

राजा—युज्यते चम्पकलतायाः कस्तूरीकर्पूरैरालवालपरिपूरणम् ।

[नेपथ्ये]

वैतालिकयोरेकः—सुखाय संध्या भवतु देवस्य—

एतद्वासरजीवपिण्डसदृशं चण्डांशोर्मण्डलं
को जानाति कुत्रापि संप्रति गतं प्राप्ते कालान्तरे ।

अन्वयः—कालंतरे पत्तम्मि वासरजीवपिंडसरिसं एअं चंडासुणो मंडलं संपइ कहिं पि गअं (इति) को जाणाइ । किं च इअं पि णलिणी णाहे गए दीहविरहं सोऊण (णाऊण) मीलंतपंकेरुहा णिद्दामुद्दिअलोअण व्व जादा ॥ ३५ ॥

व्याख्या—एतस्मिन् कालान्तरे प्राप्ते=समागते सायंकाले 'वासर एव जीवः वासरजीवः तस्य पिण्डं तेन सदृशं वासरजीवपिण्डसदृशं = दिवसप्राणतुल्यं शरीरं चण्डांशोः (चण्डाः अंशवः सन्ति यस्य तस्य)=प्रदीप्तकिरणस्य सूर्यस्य मण्डलं, सम्प्रति=इदानीं प्राप्ते संध्याकाले, क्व गतं=कुत्रापि गतमिति, को जानाति=न कोऽपीति । सूर्यः अस्तंगतः इत्यर्थः । किञ्च, इयं

राजा—चम्पकलता की आलवाल को कस्तूरी और कर्पूर के रस से भरना उचित ही है ।

[नेपथ्य में]

एक वैतालिक—महाराज के लिए संध्या सुखकर हो—दिन का आत्मा सा वह सूर्य-मण्डल इस सायंकाल में मालूम नहीं कहाँ चला गया है । किञ्च

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जाआ किं च इअं पि दीहविरहं सोऊण (णाऊण) णाहे गए
णिद्दा (मुच्छा)-मुद्दिअलोअण व्व णलिणी मीलंतपंकेरुहा ॥३५॥
द्वितीयः—
उग्घाडिज्जंति लीलामणिमअवलहीचित्तभित्तीणिवेसा

जाता किं चेयमपि दीर्घविरहं श्रुत्वा (ज्ञात्वा) नाथे गते
निद्रा (मूर्च्छा)—मुद्रितलोचनेव नलिनी मीलत्पङ्केरुहा ॥३५॥
द्वितीयः—
उद्घाटचन्ते लीलामणिमयवलभीचित्रभित्तिनिवेशाः

नलिनी अपि = पुरोदृश्यमाना कमलिनी नायिका वा, नाथे = भर्तरि सूर्ये वा, गते=प्रोषिते सति, दीर्घविरहं=चिरवियोगं श्रुत्वा ज्ञात्वा वा सखीभिः निशम्य स्वयमवलोक्य वा (पाठान्तरे दीर्घविरहा = चिरविरहिणी एतस्मात् कारणादेव) मीलन्ति = संकुचन्ति, पङ्केरुहाणि = कमलानि यस्याः सा मीलत्पङ्केरुहा, वियोगजन्यदुःखेन, निद्रया=मूर्च्छया, मुद्रिते=निमीलिते, लोचने= नेत्रे यस्याः सा निद्रामुद्रितलोचना इव जाता। सायंकाले=सूर्ये अस्तंगते सति खलु कमलानि मुकुलितानि भवन्ति। तानि मुकुलितकमलवनानि दृष्ट्वा वैतालिकयोरेकः नायिकाधर्मान् नलिन्यामारोपयति। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः समाधिश्च। भवद्दर्शनात् संजातरागा कर्पूरमञ्जरीति समासोक्तिः। शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ ३५ ॥

यह नलिनी स्वामी (सूर्य) के चले जाने से उत्पन्न दीर्घ-विरह को सुनकर (जानकर) मुँदे हुए कमलों से मानो [शोकजन्य] निद्रा (मूर्च्छा) के कारण उसके नेत्र बन्द हो गए हैं[1] ॥ ३५ ॥

---

१. यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। 'आपके दर्शन से कर्पूरमञ्जरी के हृदय में अनुराग पैदा हो गया है' यह अर्थ प्रतिध्वनित होने से समासोक्ति अलङ्कार है। नायिका के मूर्च्छा आदि धर्मों का नलिनी के ऊपर आरोप होने से समाधि अलङ्कार है। 'दीहविरहा' पाठ होने पर अर्थ होगा— दीर्घ विरह को प्राप्त यह कमलिनी शोक से मुद्रित नेत्र वाली हो गई है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पल्लंका किंकरीहिं उदुसमअसुहा पत्थरिज्जंति झत्ति।
सेरंधीलोलहत्थंगुलिचलणवसा पट्टसद्दो पअट्टो
हुंकारो मंडवेसुं विलसइ महुरो रुट्ठतुट्ठंगणाणं ॥३६॥

पर्यङ्काः किंकरीभिः ऋतुसमयसुखा प्रस्तार्यन्ते झटिति।
सैरन्ध्रीलोलहस्ताङ्गुलिचलनवशात्पट्टशब्दः प्रवृत्तो
हुंकारो मण्डपेषु विलसति मधुरो रुष्टतुष्टाङ्गनानाम् ॥३६॥

अन्वयः—लीलामणिमअवलहीचित्तभित्तीणिवेसा उग्घाडिज्जंति। किंकरीहिं उदुसमयसुहा पल्लंका झत्ति पत्थरिज्जंति। सेरंधीलोलहत्थंगुलिचलणवसा पट्टसद्दो पअट्टो। मंडवेसुं रुट्ठतुट्ठंगणाणं महुरो हुङ्कारो विलसइ॥ ३६॥

व्याख्या—उपस्थिते सायंकाले लीलार्थं = विलासार्थं निर्मिताः मणिमय्यः मणियुक्ता वल्लभ्यः लीलामणिमयवल्लभ्यः चित्रभित्तिनिवेशाश्च इति लीलामणिमयवलभीचित्रभित्तिनिवेशाः = क्रीडार्थविरचितमणिमयवलभीयुक्तानि चित्रगृहाणि, उद्घाट्यन्ते=उन्मील्यन्ते अभिसारिकाद्यभिसारणार्थमित्यर्थः। किंकरीभिः = परिचारिकाभिः, ऋतुसमये = वसन्तसमये रात्रौ वा, सुखाः = सुखकराः, पर्यङ्काः=मञ्चाः, झटिति=शीघ्रमेव प्रस्तार्यन्ते = सज्जीक्रियन्ते। सैरन्ध्रीणां=स्वाधीनानां दासीनां प्रसाधिकानां वा स्त्रीणां, लोलाभिः = चञ्चलाभिः, हस्ताङ्गुलीभिः = कराङ्गुलीभिः, चलनवशात् = संस्पर्शात्, पटहशब्दः=मृदङ्गनादः, प्रवृत्तः=संजातः। अत्राङ्गुलिपदं तासां वाद्यवादनकौशलसूचनार्थं प्रयुक्तम्। मण्डपेषु = विलासगृहेषु, (आदौ) रुष्टानां = मानवतीनां मानिनीनां (पश्चात्) तुष्टानां = प्रसन्नमनसां, अङ्गनानां = कामिनीनां (आदौ रुष्टाः पश्चात्तुष्टाश्च या अङ्गनास्तासां रुष्टतुष्टाङ्गनानाम्),

द्वितीय वैतालिक—मणिमय वलभियों तथा चित्रमय भित्तियों से युक्त केलिगृहों के द्वार खोले जा रहे हैं। दासियों के द्वारा ऋतु के अनुकूल सुखदायक शय्यायें बिछाई जा रही हैं। सैरन्ध्रियों (दूसरों के घर केश-प्रसाधन आदि का काम करने वाली स्वतन्त्र स्त्रियों) के चञ्चल हाथ की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा -- अम्हे वि संझं वंदिदुं गमिस्सामो ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति प्रथमं जवनिकान्तरम् ।

राजा—वयमपि संध्यां वन्दितुं गमिष्यामः ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति प्रथमं जवनिकान्तरम् ॥

मधुरः = श्रुतिसुखप्रदः, हुंकारः = 'हुं' इति शब्दः, विलसति = शोभते । रुष्ट-तुष्टेत्यनेन कलहान्तरितास्ता इति ध्वनितम् । स्वभावोक्तिरलङ्कारः । स्रग्धरावृत्तम् ॥ ३६ ॥

अंगुलियों के चलने से मृदङ्ग का शब्द हो रहा है । केलि-मण्डपों में रुष्ट और तुष्ट अङ्गनाओं के मधुर हुँकार (क्रमशः कोपालाप और प्रेमालाप) सुशोभित हो रहे हैं[२] ॥ ३६ ॥

[सभी चले जाते हैं]

प्रथम जवनिकान्तर समाप्त ।

---

२. 'हत्थ' पद से ही अभीष्ट अर्थ की सिद्धि संभव थी परन्तु यहाँ 'अंगुलि' पद का भी प्रयोग होने से उनके वाद्य-वादन का कौशल सूचित हो रहा है ।
चौ० संस्करण में 'वलही' शब्द का अर्थ 'कपोत-निलय' किया है जो प्रकृत सन्दर्भ में अधिक चारुतर नहीं है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्वितीयं जवनिकान्तरम्

[ततः प्रविशति राजा प्रतीहारी च]

प्रतीहारी—(परिक्रामितकेन) इदो इदो एदु महाराग्रो।

राजा—(कतिचित्पदानि गत्वा, तामनुसंधाय) तहिं खु अवसरे—

णो ठाणाहिं तिलंतरं पि चलिदा सुत्था णिअंबत्थली
थोउव्वेल्लवलीतरंगमुदरं कंठो तिरिच्छिट्ठिदो।

[ततः प्रविशति राजा प्रतीहारी च]

प्रतीहारी—(परिक्रामितकेन) इत इतो एतु महाराजः।

राजा—(कतिचित्पदानि गत्वा तामनुसन्धाय) तस्मिन्खल्ववसरे—

न स्थानात्तिलान्तरमपि चलिता सुस्था नितम्बस्थली
स्तोकोद्वेल्लद्वलीतरङ्गमुदरं कण्ठस्तिर्यक्स्थितः।

अन्वय—सुत्था णिअंबत्थली ठाणाहिं तिलंतरं पि णो चलिदा, उदरं थोउव्वेल्लवलीतरंगं, कंठो तिरिच्छिट्ठिदो, वेणीए उण आणणेंदुभमणे थणालिंगणं लद्धं। [इत्थम] मए तंसं वलंती तीअ तणुलआ चउव्विहा जादा॥ १॥

व्याख्या—कर्पूरमञ्जर्याः सौन्दर्यातिशयं स्मरन्नाह राजा—सुस्था = स्थिरा पुष्टा वा, नितम्बस्थली=नितम्बप्रदेशः, स्थानात् = स्वप्रदेशात्, तिलान्तरमपि= किञ्चिदपि, न चलिता गरिमातिशयादिति भावः। उदरं=नाभिप्रदेशं, स्तोकम् उद्वेल्लन्त्यः वल्यः एव तरङ्गाः यस्मिन् तत् स्तोकोद्वेल्लद्वलीतरङ्गम् =

[राजा और प्रतिहारी का प्रवेश होता है]

प्रतिहारी—[घूमकर] महाराज इधर आयें, इधर आयें।

राजा—(कुछ कदम चलकर, उस नायिका का ध्यान करके] उस समय—
उसका सुस्थिर नितम्ब प्रदेश अपने स्थान से तिलभर भी नहीं हिला,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वेणीए उण आणणेंदुभमणे लद्धं थणालिंगणं
जादा तीअ चउव्विहा तणुलआ तंसं वलंती मए (पुलंतोअ मं) ॥१॥

वेण्या पुनराननेन्दुभ्रमणे लब्धं स्तनालिङ्गनं
जाता तस्याश्चतुर्विधा तनुलता त्र्यस्रमवलोकयन्त्या माम् ॥१॥

ईषत्प्रकटीभवद्रेखातरङ्गं त्रिवलिवलितमुदरमित्यर्थः। कण्ठः तिर्यक् (तिरः अञ्चति गच्छति इति तिर्यक्)=तिरश्चीनं, स्थितः=परिवृत्यावलोकनात् तिर्यगवस्थित आसीत्। वेण्या=केशपाशेन, आननमेवेन्दुः तस्य वलने आननेन्दुवलने=मुखचन्द्रस्य संचलने, स्तनयोरालिङ्गनं=पयोधरस्पर्शं, लब्धं=प्राप्तं स्तनयोरुपरिपतनादिति भावः। एवम्=अनेन प्रकारेण, मां=राजानं, त्र्यस्रमलोकयन्त्याः तस्याः=कर्पूरमञ्जर्याः, तनुलता=शरीरवल्ली, चतुर्विधा जाता। तन्व्या लतारोपेण वपुषः कार्श्य-चापल-शैत्य-कोमलतादिगुणवत्त्वं व्यज्यते। त्रिवलीतरंगेण निर्मलतातिशयो व्यज्यते। रूपकालङ्कारः। स्मृतिपरिकरौ चालङ्कारौ। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १ ॥

उसके उदर-भाग मे स्थित त्रिवली में थोड़ी सी हरकत हुई, कण्ठ तिरछा हो गया, मुखरूपी चन्द्रमा के घूमने से वेणी ने स्तनों का आलिंगन कर लिया। इस तरह मुझे तिरछी नजर से देखती हुई उस लता के सदृश कृश शरीर वाली (तनुलता) की चार अवस्थाएँ हो गईं[1] ॥ १ ॥

१. यहाँ चिन्ता रूप स्मृति अलंकार है। सदृशज्ञानचिन्ताद्यैर्भ्रूसमुन्नयनादिकृत्। स्मृतिः पूर्वानुभूतार्थविषयज्ञानमुच्यते। (सा० द० ३।१६२)। स्थली, तरङ्ग इत्यादि साभिप्राय विशेषण होने से परिकर अलङ्कार है—'विशेषणसाभिप्रायत्वे परिकरः'। 'तनुलता' यहाँ रूपक अलङ्कार है— 'तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः (का० प्र० १०-९३)।

'णिज्झाअअंती अ मं=निध्यायन्त्या माम्' इस पाठ की अपेक्षा 'तंसं वलंती मए' पाठ अधिक उपयुक्त है क्योंकि नायिका ने राजा को तिर्यक् देखा था, न कि उसका ध्यान किया था।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रतिहारी—(स्वगतम्) कधं अज्ज वि सो ज्जेव सिरितालीपत्तसंचओ, ताओ ज्जेव अक्खरपंतीओ। ता वसंतवण्णणेण सिढिलआमि से तग्गदं हिअआवज्जं (आवेसं)। (प्रकाशम्) दिट्ठि देदु महाराओ ईसीसि जरठाअमाणे कुसुमाअरम्मि—

प्रतीहारी—(स्वगतम्) कथमद्यापि स एव श्रीताडीपत्रसंचयः, ता एवाक्षरपङ्क्तयः तद्वसन्तवर्णनेन शिथिलयाम्यस्य तद्गतं हृदयावेगम् (-आवेशम्)। (प्रकाशम्) दृष्टि ददातु महाराज ! ईषदीषज्जरठायमाने कुसुमाकरे—

प्रतिहारी—(स्वगत) आज भी उन्हीं ताड़पत्रों के संचय को तथा उन्हीं अक्षर-पंक्तियों को क्यों [देख रहे हैं]? अतएव वसन्त-वर्णन के द्वारा मैं उनके हृदयावेग (कर्पूरमञ्जरी की ध्यान जन्य पीड़ा) को शिथिल करता हूँ।[1] [प्रकाश] थोड़ी-थोड़ी प्रौढ़ता को प्राप्त होते हुए कुसुमाकर (वसन्त ऋतु[2] या बगीचा) की ओर महाराज ध्यान देवें—

'वल्लीतरङ्ग' से उदर की निर्मलता का अतिशय, 'ण तिलंतरं पि' से नितम्बों की गुरुता का अतिशय तथा 'तणुलआ' से शरीर के कृशता, चपलता, शीतलता आदि गुणों के अतिशय की व्यञ्जना निकल रही है।

१. यहाँ 'आवेग' पद से ध्वनित हो रहा है कि राजा की कर्पूरमञ्जरीगत तन्मयता को पूर्णरूप से दूर नहीं किया जा सकता है तथापि विषयान्तर के द्वारा उसे थोड़ा कम किया जा सकता है। अतः प्रतिहारी ने 'सिढिलआमि' कहा है।

२. 'कुसुमाकरः' की तीन प्रकार से व्युत्पत्ति संभव है—(१) कुसुमानामाकरः उत्पत्तिस्थानम्। (२) कुसुमानामाकरः समूहो यस्मिन्निति। (३) कुसुमैराकरः। इस प्रकार उत्पत्ति, समूह और श्रेष्ठता ये तीन अर्थ होते हैं। 'आकरो निवहोत्पत्तिस्थानश्रेष्ठेषु कथ्यते' (विश्व०)। यहाँ कुसुमसमृद्धि को करनेवाला वसन्तसमय अर्थ करना अधिक उचित है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मूलाहिंतो परहुअवहूकंठमुद्दं दलंता
दें ता दीहं महुरिमगुण जंपिए छप्पआणं।
संचारेंता विरहिसु णव पंचमं किंच राअ (राअराअं)
राउम्मत्ता रइकुलघरा वासरा वित्थरंति।। २ ।।

मूलेभ्यः परभृतवधूकण्ठमुद्रां दलन्तो
ददतो दीर्घं मधुरिमगुणं जल्पिते षट्पदानाम्।
संचारयन्तो विरहिषु नवं पञ्चमं किंचिद्रागं (रागराजं)
रागोन्मत्ता रतिकुलगृहा वासरा विस्तीर्यन्ते ॥ २ ॥

अन्वयः—मूलाहिंतो परहुअवहूकंठमुद्दं दलंता, छप्पआणं जंपिए दीहं महुरिमगुणं देंता किंच विरहिसु णवं [कोकिलेषु च] पंचमं राअं संचारेंता राउम्मत्ता रइकुलघरा वासरा वित्थरंति ।। २ ।।

व्याख्या—मूलेभ्यः=आरम्भादेव, परभृता एव वध्वः परभृतवध्वः=कोकिलस्त्रियः तासां कण्ठस्य मुद्रां दलन्तः (दल् + शतृ) = भिन्दन्तः कोकिलारावं जनयन्तः परभृता वध्व इवेति वा । षट्पदानां=भ्रमराणं, जल्पिते=गुञ्जने, दीर्घं=गम्भीरं, मधुरिमगुणं (मधुरिमैव गुणस्तम् । मधुरिम्णा गुणविशेषो वा) =माधुर्यं, ददतः=अर्पयन्तः, किञ्च विरहिषु=वियोगिजनेषु, नवं=नूतनं, कोकिलेषु च पञ्चमं रागं=स्वरविशेषं सञ्चारयन्तः । पुष्पसाधारणे काले पिकः कूजति पञ्चमम् । रागैरुन्मत्ताः रागोन्मत्ताः=कामरागप्रमत्ताः अथवा विरहिषु अपूर्वं कामोन्मादं प्रस्तारयन्तः, रतयः=संभोगास्तेषां कुलं समूहस्तस्य गृहाः= स्थानानि येषु ते रागोन्मत्ता रतिकुलगृहाः, वासराः=वसन्तदिनानि, विस्तीर्यन्ते=क्रमेण दीर्घतामुपयान्ति । मन्दाक्रान्तावृत्तम् ।। २ ।।

प्रारम्भ से ही कोयलों के कंठ की मुद्राओं को भंग (विकास) करते हुए, भौरों के गुञ्जन में अतिशय मधुरता को देते हुए, विरहियों [के हृदय] में नवीन [अनुराग] का और [कोयलों में] पञ्चमं राग का सञ्चार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा—(तदनाकर्ण्य सानुरागम्)—

आत्थाणीजणलोअणाण बहला लावण्णकल्लोलिणी
लीलाविब्भमहासवासणअरी सोहग्गपालित्तिआ (पारट्ठिआ)।

राजा—(तदनाकर्ण्य सानुरागम्)—

आस्थानीजनलोचनानां बहला लावण्यकल्लोलिनी
लीलाविभ्रमहासवासनगरी सौभाग्यपालयितृका (-पारस्थिता)।

अन्वयः—आस्थाणीजणलोअणाण बहला लावण्णकल्लोलिणी, लीला-विब्भमहासवासणअरी, सोहग्गपालित्तिआ, णेत्तेंदीवर दीहिआ, मह पुणो सिंगारसंजीविणी जं जादा। अह मम्महेण धणुहे तिक्खो सरो संधिदो ॥३॥

व्याख्या—आस्थान्यां = सभायामुपस्थिताः ये जनाः तेषां लोचनानां = नयनाना, बहला = पूर्णा, लावण्यस्य = सौन्दर्यस्य, कल्लोलिनी = तरङ्गिणी। सभापतितानां सभ्यानां नयनानि स्वलावण्यस्रोतोभिः पूरयतीति भावः; अथवा सा कर्पूरमञ्जरी जनानां लोचनानि जनलोचनानि तेषां जनलोचनानां = पुरुषनेत्राणाम् आस्थानी=सदःस्थानं लावण्यस्य सरिच्च। लीलया विभ्रमेण च यो हासः= मन्दस्मितं तस्य यद्वा लीलायाः विभ्रमस्य हासस्य च वासनगरी= नित्या वसतिः लीलाभूमिरित्यर्थः। सौभाग्यस्य पालयितृका = सौभाग्यरक्षिका यद्वा सौभाग्यस्य पारे स्थिता=परमसौभाग्यवतीत्यर्थः। नेत्रे एव इन्दीवरे

करते हुए राग से उन्मत्त रतिकुल गृह (वसन्त) रूपी ये दिन विस्तार को प्राप्त हो रहे हैं ॥ २ ॥[१]

राजा—[अनसुनी करके अनुराग पूर्वक]

सभासदों के नेत्रों के लिए लावण्य की विस्तृत कल्लोलिनी (तरङ्गवती= नदी), लीला-विभ्रम और हास्य की वास-नगरी, परम सौभाग्यशालिनी

१. संभोगश्रृङ्गार व्यङ्ग्य है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

णेत्तेंदीवरदीहिआ मह पुणो सिंगारसंजीविणी
जं जादा अह मम्महेण धणुहे तिक्खो सरो संधिदो (पुंखिओ) ॥३॥
(सोन्मादमिव) दंसणक्खणादो पहुदि कुरंगच्छी—
चित्ते पहुट्टइ ण खुट्टइ सा गुणेसुं

नेत्रेन्दीवरदीर्घिका मम पुनः शृङ्गारसंजीविनी
यज्जाताऽथ मन्मथेन धनुषि तीक्ष्णः शरः संधितः (पुङ्खितः) ॥३॥
(सोन्मादमिव) दर्शनक्षणात्प्रभृति कुरङ्गाक्षी—
चित्ते प्रस्फुटति न क्षीयते सा गुणेषु

तयोः नेत्रेन्दीवरयोः, दीर्घिका=वापी। यथा इन्दीवराणां दर्शनेन आनन्दानुभूतिर्भवति तथैव तस्याः कमलनयनाया दर्शनेन नेत्रे परमानन्दमनुभवतः। मम तु पुनः सा नायिका साक्षात् शृङ्गारस्य सञ्जीविनी=शृङ्गाररसोद्बोधिनी जाता=भूता। अथ मन्मथेन=कामदेवेन, धनुषि=कार्मुके, तीक्ष्णः शरः=मर्मभित्, बाणः, संधितः=आरोपितः। अहं खलु तद्दर्शनकालादेव मन्मथपीडितोऽस्मि। रूपकालङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ ३ ॥

(सुभगता का पोषण करने वाली) तथा नेत्र रूपी कमलों की वापी है। मेरे लिए (साक्षात्) शृङ्गार की संजीविनी (वह नायिका) है। [ऐसा देखकर] कामदेव ने अपने धनुष पर तीखे-तीखे बाण [मेरे ऊपर प्रक्षिप्त करने के लिए] साध लिए ॥ ३ ॥[१]

[उन्मत्त[२] की तरह] दर्शन के क्षण से ही वह कुरङ्गाक्षी—

१. 'लावण्णकल्लोलिणी' से प्रतिक्षण वर्धमान सौन्दर्यातिशय, 'वासणअरी' से क्षणमात्र भी विलासादि का तिरोभाव न होना तथा 'तिक्खो' से कामदेव के बाणों का प्रहार पहले भी हुआ था परन्तु इतना दुःसह नहीं था यह प्रतिध्वनित हो रहा है। 'णेत्तेंदीवर' यहाँ रूपक अलङ्कार है।

२. उन्माद—काम, शोक, भय आदि से उत्पन्न चित्त का भ्रम उन्माद है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सेज्जाए लुट्टदि विसप्पइ दिम्मुहेसुं ।
बोलम्मि वट्टइ पअट्टइ कव्वबंधे
झाणे ण तुट्टइ चिरं तरुणी तरट्टी (चलाक्खी) ॥४॥

शय्यायां लुठति विसर्पति दिङ्मुखेसु ।
वचने वर्तते प्रवर्तते काव्यबन्धे
ध्याने न त्रुटयति चिरं तरुणी प्रगल्भा (चलाक्षी) ॥४॥

अन्वयः—तरट्टी (चलाक्खी) सा तरुणी चित्ते पहुट्टइ, गुणेसुं ण खुट्टइ, सेज्जाए लुट्टदि, दिम्मुहेसुं विसप्पइ, बोल्लम्मि वट्टइ, कव्वबंधे पअट्टइ, चिरं झाणे ण तुट्टइ ॥ ४ ॥

व्याख्या—प्रगल्भा चलाक्षी (चले अक्षिणी यस्याः सा) वा, सा=पुरा अवलोकिता, तरुणी=युवतिः, चित्ते=अन्तःकरणे, प्रस्फुटति=विद्योतते, गुणेषु=सौन्दर्यादिषु, न क्षीयते = न हीयते । [मम] शय्यायां लुठति = शेते । दिङ्मुखेषु = दिक्षु, विसर्पति = प्रसरति । वचने = वाण्यां, वर्तते = निवसति, वचनप्रयोगे सैव जिह्वामु नृत्यतीत्यर्थः । काव्यस्य बन्धस्तस्मिन् काव्यबन्धे = काव्यरचनायां, प्रवर्तते = प्रवृत्ता भवति । चिरं ध्याने=सततं ध्यानकाले, न त्रुटयति=न पृथक् भवति । इत्थं सा सर्वदा मम मनसि तिष्ठति कदापि न बहिः निस्सरति । एकस्य कर्त्तुरनैकाभिः क्रियाभिः सम्बन्ध इति कारकदीपक-मत्रालङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ४ ॥

चंचल नेत्रों वाली प्रगल्भा वह युवती मेरे हृदय में वर्तमान है, गुणों से हीन नहीं दिखलाई देती है, [मेरी] शय्या पर लोटती सी रहती है, प्रत्येक दिशा में संचरण करती है, (मेरी) बोली में वही मौजूद रहती है, काव्य-रचना में वही प्रवृत्त होती है तथा ध्यान से हटती नहीं है ॥ ४ ॥

उन्माद के होने पर अस्थान में ही हास, रोदन आदि क्रियायें देखी जाती हैं—'चित्तस्य भ्रम उन्मादः कामशोकभयादिभिः । अस्थानहासरुदित-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अवि अ—

जे तीअ तिक्खचलचक्खुतिहाअदिट्ठा
ते कामचंदमहुपंचममारणिज्जा ।
जेसुं पुणो णिवडिआ सअला वि दिट्ठी
वट्टंति ते तिलजलंजलिदाणजोग्गा ॥ ५ ॥

अपि च—

ये तया तीक्ष्णचलचक्षुस्त्रिभागदृष्टा-
स्ते कामचन्द्रमधुपञ्चममारणीयाः ।
येषु पुनर्निपतिता सकलापि दृष्टि-
र्वर्तन्ते ते तिलजलाञ्जलिदानयोग्याः ॥ ५ ॥

अन्वयः—तीअ जे तिक्खचलचक्खुतिहाअदिट्ठा ते कामचन्दमहुपंचममारणिज्जा, जेसुं पुणो सअला वि दिट्ठी णिवडिआ ते तिलजलंजलिदाणजोग्गा वट्टंति ॥ ५ ॥

व्याख्या—तया = नायिकया, ये=नराः, तीक्ष्णं चलद् यच्चक्षुः, तस्य त्रिभागस्तेन दृष्टाः तीक्ष्णचलचक्षुस्त्रिभागदृष्टाः = तीक्ष्णचञ्चलनेत्रतृतीयभागेन स्तोकमप्यवलोकिताः, ते = नराः, कामः, चन्द्रः, मधुः, पञ्चमश्चेति तैः । पञ्चमः कोकिलादिषु प्रसिद्धो रागः । निश्चयेनैव मारणीयाः (मारि+ अनीयर्) = व्यापादनीयाः किञ्चित्कालान्तरमिति । यावत् पुनः येषु = नरेषु तस्याः = कर्पूरमञ्जर्याः, सकलापि = सम्पूर्णापि, दृष्टिः निपतिता, ते नराः

और भी—उसने जिनको अपने तीक्ष्ण और चञ्चल चक्षु के त्रिभाग से देखा है वे [निश्चय ही] कामदेव, चन्द्रमा, मधु (वसन्त) तथा कोयल के पंचम राग से मृत्यु को प्राप्त होंगे । जिनके ऊपर उसने भरपूर दृष्टि से

गीतप्रलपनादिकृत् । (सा० द० ३-१६०) । शृङ्गारतिलक (२-१३) में भी कहा है—'श्वासप्ररोदनोत्कम्पवसुधोल्लेखनैरपि । व्यापारो जायते यत्र स उन्मादः स्मृतो यथा ।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(सस्मरणमिव) अवि च—

अग्गम्मि भिंगसरणी णअणाण तीए
मज्झे पुणो कढिअदुद्धतरंगमाला ।
पच्छा अ से सरइ तंसणिरिक्खिएसुं
आअण्णमंडलिअचावहरो अणंगो ॥ ६ ॥

(सस्मरणमिव) अपि च—

अग्रे भृङ्गसरणिर्नयनयोस्तस्या
मध्ये पुनः क्वथितदुग्धतरङ्गमाला ।
पश्चाच्च तस्याः सरति त्र्यस्रनिरीक्षितेषु
आकर्णमण्डलितचापधरोऽनङ्गः ॥ ६ ॥

तत्कालमेव तिलानां जलस्य च अञ्जलयः तेषां दानस्य योग्याः तर्पणयोग्याः, वर्तन्ते, मृताः इत्यर्थः । अतिशयोक्तिरलङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ५ ॥

अन्वय.—तीए णअणाण अग्गम्मि भिंगसरणी, पुणो मज्झे कढिअदुद्ध-तरंगमाला, पच्छा अ से तंसणिरिक्खिएसुं आअण्णमंडलिअ-चावहरो अणंगो सरइ ॥ ६ ।

व्याख्या—तस्याः = नायिकायाः, नयनयोः=नेत्रयोः, अग्रे = पुरस्तात्, भृंगाणां = भ्रमराणां, सरणिः = पंक्तिः, चलति । मध्ये तु क्वथितस्य = आलोडितस्य दुग्धस्य तरंगमाला = ऊर्मिसमूहः शोभते । पश्चात् तस्याः त्र्यस्र-निरीक्षितेषु = तिर्यंगवलोकनेषु आकर्णं मण्डलितः यः चापः तं धरतीति आकर्णमण्डलितचापधरः=कर्णपर्यन्तमाकृष्टधनुर्धरः, अनंगः=कामः, सरति= गच्छतीति भावः । तद्वक्त्रनिरीक्षणानन्तरं कामकृतविमनस्कतावश्यं भवतीत्यर्थः । उत्प्रेक्षालङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ६ ॥

देखा है वे तो तिल एवं जल की अञ्जलि दे देने के योग्य हैं अर्थात् उन्हें मरा हुआ ही समझना चाहिए ॥ ५ ॥

[स्मरण करते हुए] और भी—उसकी आँखों के अग्रभाग में भौरों की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(विचिन्त्य) कधं चिराअदि पिअवअस्सो ?

(प्रविश्य विदूषको विचक्षणा च परिक्रामतः)

विदूषकः—अइ विअक्खणे ! सव्वं सच्चं एदं ?

विचक्षणा—सव्वं सच्चअरं ।

विदूषकः—णाहं पत्तिज्जामि, जदो परिहाससीला खु तुवं ।

विचक्षणा—अज्ज ! मा एवं भण । अण्णो वक्करकालो, अण्णो कज्जविआरकालो ।

(विचिन्त्य) कथं चिरयति प्रियवयस्यः ।

[प्रविश्य विदूषको विचक्षणा च परिक्रामतः]

विदूषकः—अयि विचक्षणे ! सर्वं सत्यमेतत् ?

विचक्षणा—सर्वं सत्यतरम् ।

विदूषकः—नाहं प्रत्येमि, यतः परिहासशीला खलु त्वम् ।

विचक्षणा—आर्य ! मैवं भण । अन्यो बर्करकालः (परिहासकालः), अन्यः कार्यविचारकालः ।

पंक्ति (मड़राती है), मध्यभाग में मथे गए दूध की तरङ्गमाला [सुशोभित है] और पीछे के भाग में जब वह तिरछी चितवन से देखती है तो कर्ण-पर्यन्त धनुष को खींचे हुए कामदेव उसका अनुसरण करता है ॥६॥[१]

[विचारकर] प्रियमित्र क्यों देर कर रहा है ?

[विदूषक और विचक्षणा प्रवेश करके परिक्रमण करते हैं]

विदूषक—अये विचक्षणे ! क्या यह सब सच है ?

विचक्षणा—(सत्य ही नहीं) सब सत्यतर है !

विदूषक—मैं विश्वास नहीं करता हूँ क्योंकि तुम परिहासशीला हो ।

विचक्षणा—आर्य ! ऐसा न कहें । परिहासकाल (वक्रोक्तिकाल)

---

१. यहाँ कविनिबद्धवक्तृप्रौढोक्तिसिद्धध्वनि है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदूषकः—(पुरोऽवलोक्य) एसो पिअवअस्सो हंसो विअ विमुक्कमाणसो, करी विअ मअक्खामो, मुणालदंडो विअ घणघम्ममिलाणो, दिणदिण्णदीवो विअ विअलिअच्छाओ, पभादपुण्णिमाचंदो विअ पडुरपरिक्खीणो चिट्ठदि ।

उभौ—(परिक्रम्य) जअदु जअदु महाराओ ।

विदूषकः—(पुरोऽवलोक्य) एष प्रियवयस्यो हंस इव विमुक्तमानसः, करीव मदक्षामः, मृणालदण्ड इव घनघर्मम्लानः, दिनदत्तदीप इव विगलितच्छायः, प्रभातपूर्णिमाचन्द्र इव पाण्डुरपरिक्षीणस्तिष्ठति ।

उभौ—(परिक्रम्य) जयतु जयतु महाराजः ।

दूसरा होता है और कार्य करने का समय भिन्न होता है। अर्थात् यह परिहास का समय नहीं है अपितु कार्य करने का समय है ।

विदूषक—(सामने देखकर) यह [मेरा], प्रियमित्र (राजा) मानसरोवर से अलग हुए हंस के समान उद्विग्न मन वाला, मदस्राव के कारण क्षीण हाथी के समान कामोन्माद से दुर्बल, तेज धूप से मुरझाये हुए मृणालदण्ड के समान तीव्र संताप से परिम्लान, दिन में जलाये गए प्रभाहीन दीपक के समान, कान्तिहीन प्रभातकालीन चन्द्रमा के समान पीला (पाण्डु) और दुबला सा बैठा हुआ है ।[१]

दोनों—(घूमकर) महाराज की जय हो, जय हो ।

---

१. यहाँ श्लेषोपमा अलंकार है। जैसे—विमुक्तमानसः (हंस पक्ष—विमुक्तं मानसं सरः येन सः = त्यक्तमानसरोवरः। नृप पक्ष—विमुक्तं मानसं यस्य सः = उद्विग्नहृदयः)। मदक्षामः (हाथी पक्ष—मदेन क्षामः = मदस्रावेण क्षीणः · नृपपक्ष—मदेन क्षामः = कामजन्यमदेन क्षीणः)। घनघर्मम्लानः (मृणालदण्ड पक्ष—घनेन घर्मेण म्लानः = प्रचण्डातपक्लान्तः । नृपपक्ष—प्रचण्डमदजन्यतापेन क्लान्तः) । विगलितच्छायः = विगलिता छाया कान्तिः यस्य सः । पाण्डुरपरिक्षीणः = पाण्डुरश्चासौ परिक्षीणश्च ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा—वअस्स ! कहं पुणो वि विअक्खणाए मिलिदो सि ?

विदूषकः अज्ज विअक्खणा मए सह संधिं कादुं आअदा। किदसंधीए एदाए (ताए) सह मंतअंतस्स एत्तिआ वेला लग्गा।

राजा—संधिकरणस्स किं फलं ?

विदूषकः—एसा अहिमदजणपेसिदलेहहत्था णं (जं) विअक्खणा आगदा।

राजा—(गन्धं सूचयित्वा) केदईकुसुमगंधो विअ आआदि।

विचक्षणा—केदईदललेहो एव्व एसो मह हत्थे।

राजा—वयस्य ! कथं पुनरपि विचक्षणया मिलितोऽसि ?

विदूषकः—अद्य विचक्षणा मया सह संधिं कर्तुमागता। कृतसंध्या तया सह मन्त्रयमाणस्यैतावती वेला लग्ना।

राजा—संधिकरणस्य किं फलम् ?

विदूषकः—एषाऽभिमतजनप्रेषितलेखहस्ता ननु (यत्) विचक्षणा आगता।

राजा—(गन्धं सूचयित्वा) केतकीकुसुमगन्ध इवायाति।

विचक्षणा—केतकीदललेख एवैष मम हस्ते।

राजा—मित्र ! विचक्षणा से कैसे मेल हो गया है ?

विदूषक—आज विचक्षणा मेरे साथ सन्धि करने आई थी। सन्धि कर लेने पर इसके साथ मन्त्रणा करते हुए इतना समय लग गया।

राजा—सन्धि करने का क्या फल हुआ ?

विदूषक—प्रियजन के द्वारा प्रेषित लेख को हाथ में लिए हुए यह विचक्षणा आई है।

राजा—[गन्ध सूँघकर] केतकी के फूल की गन्ध सी आ रही है।

विचक्षणा—केतकी के दल पर लिखा गया यह लेख ही मेरे हाथ में है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा—महुसमए कधं केदईकुसुमं ?

विचक्षणा—भइरवाणंददिण्णमंतप्पहावेण देवीभवणुज्जाणे केदई-लट्ठीए एक्को दाव पसवो दंसिदो। तस्स (दोहिं) दलसंपुडेहिं अज्ज हिंदोलअप्पभंजणीए चउत्थीए हरवल्लहा देवी देवीए अच्चिदा। अण्णं च दलसंपुडजुअलं पुण कणिट्ठबहिणिआए कप्पूरमंजरीए पसादीकिदं। तीए वि एक्केण दलसपुडेण भअवदी गोरी ज्जेव अच्चिदा। अण्णं च—

राजा—मधुसमये कथं केतकीकुसुमम् ?

विचक्षणा—भैरवानन्ददत्तमन्त्रप्रभावेण देवीभवनोद्याने केतकीलतयै (यष्टचै)-कस्तावत्प्रसवो दर्शितः। तस्य (द्वाभ्याम्) दलसंपुटैरद्य हिन्दोलक-प्रभञ्जन्यां चतुर्थ्यां हरवल्लभा देवी देव्या अर्चिता। अन्यच्च दलसंपुटयुगलं पुनः कनिष्ठभगिन्यै कर्पूरमञ्जर्यै प्रसादीकृतम्। तयाप्येकेन दलसंपुटेन भगवती गौर्येवार्चिता। अन्यच्च—

राजा—मधुमास (वसन्त) में केतकी का फूल कहाँ से आया ?

विचक्षणा—भैरवानन्द के द्वारा दिए गये मंत्र के प्रभाव से देवी के भवन के उद्यान में केतकी लता में एक फूल उत्पन्न हुआ (दिखलाई दिया), उस फूल के दो दलों से देवी ने आज हिन्दोलक उत्सव (झूलोत्सव) की समाप्ति पर चतुर्थी[१] के दिन हरवल्लभा देवी (पार्वती) की पूजा की। शेष दो दलों को अपनी छोटी बहिन कर्पूरमञ्जरी को उपहार स्वरूप दिए। उसने भी [उनमें से] एक दल (पत्र) के द्वारा भगवती गौरी (पार्वती) की ही पूजा की और दूसरा—

---

१. फाल्गुन की पूर्णमासी से चैत्रकृष्णा की चतुर्थी तक दोलामहोत्सव मनाया जाता है। दोलामहोत्सव या हिन्दोलक महोत्सव यह भगवान् के हिण्डोले का उत्सव है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

केदईकुसुमपत्तसंपुडं पाहुडं तुम्र सहीग्र पेसिग्रं (लंभिग्रं)।
एणणाहिमसिवण्णसोहिणा तं सिलोग्रजुग्रलेण लंछिग्रं ॥७॥
(इति लेखमर्पयति)।

राजा—(प्रसार्य वाचयति)

हंसिं कुंकुमपंकपिंजरतणुं काऊण जं वंचिग्रो
तब्भत्ता किल चक्कवाग्रघरिणी एस त्ति मण्णंतग्रो।

केतकीकुसुमपत्रसंपुटं प्राभृतं तव सख्या प्रेषितम् (लम्भितम्)।
एणनाभिमसीवर्णशोभिना तच्छ्लोकयुगलेन लाञ्छितम् ॥ ७ ॥

[इति लेखमर्पयति]

राजा—(प्रसार्य वाचयति)

हंसीं कुङ्कुमपङ्कपिञ्जरतनुं कृत्वा यद्वञ्चित-
स्तद्भर्ता किल चक्रवाकगृहिण्येषेति मन्यमानः।

अन्वयः—एणणाहिमसिवण्णसोहिणा सिलोअजुअलेण लंछिअं तं केदई-कुसुमपत्तसंपुडं पाहुडं तुअ सहीअ [तुभ्यं] पेसिअं ॥ ७ ॥

व्याख्या—एणस्य=मृगविशेषस्य नाभिः एणनाभिस्तत् मसीवर्णेन शोभते तच्छीलं तेन एणनाभिमसीवर्णशोभिना = कस्तूरिकामसीवर्णशोभिना, श्लोकयोः युगलं तेन श्लोकयुगलेन=पद्यद्वयेन, लाञ्छितम्=अलङ्कृतं, केतकीकुसुमस्य पत्रसंपुटं=केतकीपुष्पस्य पत्रयुगलं, प्राभृतम् (पाहुडम्) = उपहारं पूर्णं वा कृत्वा एतत् तव सख्या = कर्पूरमञ्जर्या [तुभ्यं] प्रेषितम् = उपहारी-कृतमित्यर्थः। मम सख्या तुभ्यं प्रेषितम् इत्यन्वयोऽपि कर्तुं शक्यते। रथोद्धता-वृत्तम् ॥ ७ ॥

यह केतकी कुसुम पत्र-संपुट जो कस्तूरी की स्याही से सुशोभित वर्णोंवाले दो श्लोकों से चिह्नित है, आपकी सखी (कर्पूरमञ्जरी) ने [आपको] उपहार स्वरूप भेजा है ॥ ७ ॥

[लेख समर्पित करती है]

राजा—[फैलाकर पढ़ता है]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एदं तं मह दुक्कअं परिणअं दुक्खाण सिक्खावणं
एक्कत्थो वि ण जासि जेण विसअं दिट्ठीतिहाअस्स वि ॥८॥

एतत्तन्मम दुष्कृतं परिणतं दुःखानां शिक्षकं
एकस्थोऽपि न यासि येन विषयं दृष्टित्रिभागस्यापि ॥ ८ ॥

अन्वयः—हंसिं कुंकुमपंकपिंजरतणुं काऊण चक्कवाअघरिणी एस त्ति मण्णंतओ तब्भत्ता जं किल वंचिओ। एदं तं दुक्खाण सिक्खावणं मह दुक्कअं परिणअं जेण एक्कत्थो वि दिट्ठीतिहाअस्स वि विसअं ण जासि ॥ ८ ॥

व्याख्या—अत्र कर्पूरमञ्जरी पूर्वकृतं स्वदुष्कृतं तेन च प्रयुक्तमेतद् वियोगजन्यं दुःखमिति प्रकटयति—एकदा सा कर्पूरमञ्जरी हंसीं=मरालीं, कुङ्कुमस्य पंकेन = रागेण पिञ्जरा = पिंगलवर्णा तनुः=शरीरं यस्याः सा तां कुङ्कुमपंकपिञ्जरतनुं, कृत्वा = करोतीति, येन भ्रमवशाद् एषा = हंसी चक्रवाकस्य गृहिणी—चक्रवाकीति मन्यमानः, तद्भर्ता = पतिः हंसः, यद् वञ्चितः= लुण्ठितः। इति दुःखानां शिक्षकं = दुःखदायकं, मम एतद् दुष्कृतं = पापकर्म, परिणतं = फलोन्मुखं जातं येन एकस्थोऽपि = एकत्र तिष्ठन्नपि, दृष्टेः त्रिभागस्यापि = चक्षुरपांगेनापि, दर्शनस्य विषयं न यासि = न प्राप्नोसि त्वमिति शेषः। भ्रान्तिमदलङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ ८ ॥

[मैंने पूर्वकाल में] हंसिनी (शुभ्रवर्ण हंस की प्रियतमा) को कुंकुम के रंग से रंगकर पिङ्गलवर्ण का कर दिया था जिससे उसका पति (हंस) उसे चक्रवाकी समझता हुआ वंचित हो गया था। यह दुःखों की शिक्षा देनेवाला मेरा दुष्कर्म ही फलीभूत ही रहा है जिससे कि एक स्थान पर रहते हुए भी [आप] मेरी दृष्टि के त्रिभाग के भी विषय नहीं हो रहे हैं। अर्थात् आपको बिल्कुल भी नहीं देख पा रही हूँ ॥ ८ ॥[1]

1. तुलना कीजिए—कुर्वत्या कुङ्कुमाम्भः कपिशितवपुषं यत्तदा राजहंसीं क्रीडाहंसो मया सावजनि विरहितश्चक्रवाकीभ्रमेण। तस्य तत्पाप्मनो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

[राजा तदेव द्विस्त्रिर्वाचयित्वा] एदाइं ताइं मअण-(सवण-) रसाअणाइं अक्खराइं ।

विचक्षणा - दुदिओ उण मए पिअसहीए अवत्थाणिवेदओ कदुअ सिलोओ लिहिदो एत्थ । तं वाचेदु महाराओ ।

राजा—(वाचयति)

सह दिवस (दिअह) - णिसाहिं दीहरा सासदंडा
सह मणिवलएहिं वाहधारा गलति ।

[राजा तदेव द्विस्त्रिर्वाचयित्वा] एतानि तानि मदन-(श्रवण-) रसायनान्यक्षराणि ।

विचक्षणा—द्वितीयः पुनर्मया प्रियसख्या अवस्थानिवेदकः कृत्वा श्लोको लिखितोऽत्र । तं वाचयतु महाराजः ।

राजा—(वाचयति)

सह दिवसनिशाभिर्दीर्घाः श्वासदण्डाः
सह मणिवलयैर्बाष्पधारा गलन्ति ।

[राजा उसे ही दो-तीन वार पढ़ता है] ये अक्षर मदन के (आवेग को शान्त करने के लिए) रसायन के समान हैं ।[१]

विचक्षणा—मेरी प्रिय सखी की अवस्था का प्रतिवेदन करनेवाला दूसरा भी श्लोक यहाँ पर लिखा हुआ है जिसे मैंने बनाया है, उसे महाराज पढ़ें ।

राजा—[पढ़ता है]—

मे परिणमति फलं यत्पुरे प्रेमवन्धादेकत्रावां वसावो न च दयितदृशाऽप्यस्ति नौ सन्निकर्षः । का०मी० ।

१. एन० जी० सुरु इसे राजा का तया अन्य विदूषक का वक्तव्य मानते हैं ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तुह सुहअ विओए तीअ उव्विविरीए (उव्वेअणीए)
सह अ तणुलदाए दुब्बला जीविदासा ॥९॥

तव सुभग ! वियोगे तस्या उद्वेगिन्याः
सह च तनुलतया दुर्बला जीविताशा ॥ ९ ॥

अन्वयः—सुहअ ! तुह विओए उव्विविरीए तीअ दिवसणिसाहिं सह सासदंडा दीहरा [जाता], मणिवलएहिं सह वाहधारा गलंति, तणुलदाए सह जीविदासा अ दुब्बला [जाता] ॥ ९ ॥

व्याख्या - हे सुभग ! = हे कान्तिमत् ! तव वियोगे = विरहे, उद्वेगिन्याः = व्याकुलायाः, तस्याः=कर्पूरमञ्जर्याः, दिवसश्च निशा च दिवसनिशे ताभ्यां दिवसनिशाभ्यां (यद्वा दिवसाश्च निशाश्च ताभिः दिवसनिशाभिः=अहोरात्रैः) सह श्वासदण्डाः दीर्घाः सञ्जाताः। सा दीर्घमुच्छ्वसितीति। कथमपि दिवसनिशा अतिवाह्यन्ते। शरीरस्य कार्श्यात् मणिवलयैः = मणिनिर्मित-कंकणैः सह, वाष्पधाराः = अश्रुधाराः, गलन्ति=भूमौ पतन्ति। किञ्च, शरीरस्य कृशतरत्वात् तनूलतया = शरीरलतया सह, तस्याः जीविताशा=जीवनस्याभिलाषा, दुर्बला=परिक्षीणा जाता, तव वियोगे न सा जीविष्यतीति भावः। सहोक्तिरलङ्कारः। मालिनीवृत्तम् ॥ ९ ॥

हे सुभग ! आप के वियोग में उस उद्वेगिनी के दिन और रात के साथ-साथ श्वास दण्ड भी दीर्घ (दीर्घतर) हो गए हैं। [कृश हो जाने के कारण] मणिवलय के साथ-साथ [आँखों से] अश्रुधारा गिर रही है। शरीररूपी लता के साथ-साथ जीवन की आशा भी दुर्बल (क्षीण) हो गई है। अर्थात् आप के वियोग से मृत्यु सन्निकट आ गई है। अतः आप शीघ्र कोई प्रयत्न कीजिए ॥ ९ ॥[१]

१. 'सासदंड' में प्रयुक्त 'दण्ड' पद से निःश्वास का अतिशय व्यञ्जित होता है। यहाँ सहोक्ति अलङ्कार है 'सहभावकथनं सहोक्तिः'। 'सुहअ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विचक्षणा—इह ज्जेव एदाए अवत्थाए मह महल्लबहिणिआए सुलक्खणाए ओलग्गा (ओलग्गाविआए) भविअ सिलोगो कदो, तं महाराओ सुणदु । (पठति)—

णीसासा हारजट्ठीसरिसपसरणा चंदणुच्छोडकारी
चंडो देहस्स दाहो सुमरणसरणा हाससोहा मुहम्मि ।

विचक्षणा—इहैवैतस्या अवस्थाया मम ज्येष्ठभगिन्या सुलक्षणया आदेशकारिण्या (सेवाकारिण्या) भूत्वा श्लोकः कृतः, तं महाराजः शृणोतु । (पठति)—

निःश्वासा हारयष्टिसदृशप्रसरणाश्चन्दनशोषणकारी
चण्डो देहस्य दाहः स्मरणशरणा हासशोभा मुखे ।

अन्वयः—सुहअ ! तुह कए तीए णीसासा हारजट्ठीसरिसपसरणा, चंदणुच्छोडकारी, चंडो देहस्स दाहो, मुहम्मि हाससोहा सुमरणसरणा, अंगाणं पंडुभावो दिअहससिकलाकोमलो, किअ णिच्चं बाहप्पवाहा कुल्लाहि तुल्ला होंति ।। १० ।।

व्याख्या—हे सुभग ! तव कृते=भवतः हेतोः, तस्याः = विरहोद्विग्नायाः कर्पूरमञ्जर्याः, निःश्वासाः हारयष्टेः सदृशं प्रसरणं=विस्तारः येषां ते हारयष्टिसदृशप्रसरणाः=हारलतातुल्यदीर्घास्सन्ति । चन्दनः=चन्दनस्य रसः, शीतलोऽपि, शरीरे स्फोटं=हिन्दीभाषायां फोड़ा-फफोला-पदवाच्यं जनयति । चन्द्रः

विचक्षणा—इसी पत्र में मेरी बड़ी बहिन सुलक्षणा ने जो उसकी परिचारिका है, उसकी इसी अवस्था का विवेदन करते हुए लिखा है, उसे महाराज सुनें (पढ़ती है)—हे सुभग ! आप के वियोग में उसके निःश्वास हार की लड़ी के समान लम्बे (गहरे) हो गए हैं, चंदन संताप-दायक

शब्द का प्रयोग यह द्योतित करता है कि तुम सौभाग्यशाली हो जो व अभी तक जीवित है । अथवा वह मर रही है और आप सुस्थिर हैं, आप उसकी रक्षा का तुरन्त प्रयत्न कीजिए ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अंगाणं पंडुभावो दिअहससिकलाकोमलो किं च तीए
णिच्चं बाहप्पवाहा तुह सुहअ ! कए होंति कुल्लाहि तुल्ला ॥१०॥
राजा—(निःश्वस्य) किं भण्णइ—कइत्तणेण तुह जेट्ठबहिणिआ खु एसा ?

अङ्गानां पाण्डुभावो दिवसशशिकलाकोमलः किं च तस्या
नित्यं बाष्पप्रवाहास्तव सुभग ! कृते भवन्ति कुल्याभिस्तुल्याः ॥१०॥
राजा—[निःश्वस्य] किं भण्यते—कवित्वे तव ज्येष्ठभगिनिका खल्वेषा ?

सुधाकरः, देहस्य = शरीरस्य, दाहः = दाहकारीत्यर्थः, चन्द्रोऽपि बह्निरिव संतापदायक इति भावः। मुखे=आनने, हासशोभा = मन्दहास्यजन्यसौन्दर्यं, स्मरणमेव शरणम्=आश्रयो यस्याः सा स्मरणशरणा अथवा स्मरणसदृशीकथामात्रशेषा वर्तते। विरहवेदनया अङ्गानां=शरीरावयवानां, पाण्डुभावः=पाण्डुता, दिवसे या शशिकला तद्वत् कोमलः दिवसशशिकलाकोमलः=दिनस्थचन्द्रकला इव निष्प्रभः। किञ्च, बाष्पप्रवाहाः=अश्रुधाराः (अश्रूणि), नित्यम्=अनवरतं, कुल्याभिस्तुल्याः=स्वल्पोदका कृत्रिमा नदी इव केदारादिसेचनोपयोगी जलप्रवाह-निर्गमसाधनभूतः कृत्रिमः सरणिविशेषः, लोके नालीपदवाचः, भवन्ति= प्रवहन्ति। उपमालङ्कारः। स्रग्धरावृत्तम् ॥ १० ॥

(शोषणकारी) हो गया है, चन्द्रमा देह को संतापित करता है (अर्थात् चन्द्रमा देह को संताप-दायक है), मुस्कुराहट तो स्मृति-मात्र रह गई है, दिन में [उदित] चन्द्रकला की तरह अङ्ग पाण्डु वर्णवाले और कान्तिहीन हो गए हैं और [उसकी आँखों से] निरन्तर बहनेवाले आँसू पनाले (झरना) के समान हो गये हैं ॥ १० ॥[1]

राजा—(निःश्वास के साथ) क्या कहा जाए ? यह तो कविता करने में भी तुम्हारी बड़ी बहिन है।

---

१. पूर्ववत् 'सुहअ' शब्द का प्रयोग है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्तर भारत वेद वेदांग विद्यालय ग्रन्थालय

विदूषकः—एसा विअक्खणा महीअलसरस्सई। एदाए उण जेट्ठबहिणिआ तिहुअणसरस्सई। ता एदाहिं समं पाडिसिद्धिं ण करिस्सं। किं पुण पिअवअस्सस्स पुरदो मअणावत्थं अत्तणो उइदेहिं अक्खरेहिं णिवेदेमि।

राजा—पढ। एदं सुणीअदि।

विदूषकः—

परं जोण्हा उण्हा गरलसरिसो चंदणरसो

खअक्खारो हारो रअणिपवणा देहतवणा।

विदूषकः—एषा विचक्षणा महीतलसरस्वती। एतस्याः पुनर्ज्येष्ठभगिनिका त्रिभुवनसरस्वती। तदेताभ्यः समं प्रतिस्पर्धां न करिष्यामि। किं पुनः प्रियवयस्यस्य पुरतो मदनावस्थामात्मन उचितैरक्षरैर्निवेदयामि।

राजा—पठ। एतच्छ्रूयते।

विदूषकः—

परं ज्योत्स्ना उष्णा गरलसदृशश्चन्दनरसः

क्षतक्षारो हारो रजनिपवना देहतपनाः।

अन्वयः—जं सा कमलवअणा सुणअणा वरिट्ठा दिट्ठा जोण्हा परं उण्हा, चदणरसो गरलसरिसो, हारो खअक्खारो, रअणिपवणा देहतवणा, मुणाली वाणाली, जलद्दा तणुलआ जलइ अ॥ ११॥

व्याख्या—यत्=यत्समयमारभ्य, कमलमिव वदनं=मुखं यस्याः सा कमल-

विदूषक—यह विचक्षणा महीतल की सरस्वती है और इसकी बड़ी बहिन त्रिभुवन की सरस्वती है। अतएव मैं इनके साथ प्रतिस्पर्धा नहीं करूँगा। किन्तु प्रिय मित्र के समक्ष अपने उचित अक्षरों में [प्रिय मित्र की] मदनावस्था का निवेदन करता हूँ।

राजा—पढ़ो। यह भी सुनते हैं।

विदूषक—जब से कमल के समान मुखवाली तथा सुन्दर नेत्रोंवाली उस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुणाली बाणाली जलइ अ जलद्दा तणुलआ
वरिट्ठा जं दिट्ठा कमलवअणा सा सुणअणा ॥११॥

मृणाली बाणालिर्ज्वलति च जलार्द्रा तनुलता
वरिष्ठा यद्दृष्टा कमलवदना सा सुनयना ॥ ११ ॥

वदना, शोभने नयने=नेत्रे यस्याः सा सुनयना, वरिष्ठा=वरेण्यतमा सर्वाङ्ग-सुन्दरीति भावः, सा=कर्पूरमञ्जरी, दृष्टा=दृष्टिपथमायाता, ततः परं ज्योत्स्ना=चन्द्रिका, उष्णा=संतापकारिणी जाता। चन्दनस्य रसः चन्दनरसः, गरलेन सदृशः गरलसदृशः=विषमिव अप्रियमित्यर्थः। हारः=मुक्तामाला, क्षते=व्रणे, क्षारः=लवणमिव कष्टं वर्धयतीति। रजन्याः पवनाः रजनिपवनाः=शीतलाः रात्रिवायवः, देहतपनाः=शरीरं सन्तापयन्तीति। मृणाली=मृणालवल्ली, बाणाली इव=बाणावली इव विध्यति। जलेन आर्द्रा जलार्द्रा=नीरेण सिच्यमाना अपि, तनुलता=शरीरवल्ली, विरहतापेन ज्वलति। उपमोत्प्रेक्षा-रूपकादयोऽर्थालङ्काराः। छेकलाटानुप्रासादयश्च शब्दालङ्काराः। शिखरिणी-वृत्तम् ॥ ११ ॥

सर्वाङ्गसुन्दरी (वरिष्ठा) को देखा है तभी से चाँदनी अत्यन्त उष्ण लगने लगी है, चन्दन का रस विष के समान [अप्रिय हो गया है], हार घाव पर नमक की तरह [कष्टवर्धक हो गया है], रात्री की [ठण्डी] हवायें शरीर को तपाने वाली हो गई हैं, मृणाली (कमल नाल) बाणों के समान हो गई है तथा जल से भीगी भी देहलता जलती रहती है ॥ ११ ॥[१]

---

१. यहाँ उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और अनुप्रास अलंकार हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा—वअस्स ! तुम पि थोएण चंदणरसेण समालिहिज्जसि । ता कहेसु (कधेहि) तग्गदं किं पि वुत्तंतं । अध अंतेउरं णइअ देवीए किं किदं तिस्सा ?

विदूषकः—विअक्खणे ! किं किदं ?

विचक्षणा—देव ! मंडिदा टिक्किदा भूसिदा तोसिदा अ ।

राजा—कध विअ !

विचक्षणा—घणमुव्वट्टिदमंगं कुंकुमरसपंकपिंजरं तिस्सा ।

राजा—वयस्य ! तत् त्वमपि स्तोकेन चन्दनरसेन समालभ्यसे । तत्कथय तद्गतं किमपि वृत्तान्तम् । अथान्तःपुरं नीत्वा देव्या किं कृतं तस्याः ?

विदूषकः—विचक्षणे ! किं कृतम् ?

विचक्षणा—देव ! मण्डिता तिलकिता भूषिता तोषिता च ।

राजा—कथमिव ?

विचक्षणा—घनमुद्वर्तितमङ्गं कुङ्कुमरसपङ्कपिञ्जरं तस्याः ।

राजा—मित्र ! तुम्हें भी थोड़ा सा चन्दन का रस लगाया जाएगा ।[१] उस (कर्पूरमञ्जरी) के बारे में कोई जानकारी हो तो बतलाओ । देवी ने उसे अन्त पुर में ले जाकर क्या किया ?

विदूषक—विचक्षणे ! बतलाओ [देवी ने] क्या किया ?

विचक्षणा—श्रीमान् ! [देवी ने उसे स्नान-विलेपन आदि से] मण्डित किया, टीका लगाया, (वस्त्र एवं अलङ्कारों से) भूषित किया तथा [भोजन आदि के द्वारा] सन्तुष्ट किया ।

राजा—कैसे ?

विचक्षणा—कुंकुम के रस के समान पीले उसके शरीर पर गाढ़ा उबटन किया गया ।

---

१. यह राजा की व्यङ्ग्योक्ति है क्योंकि विदूषक की उक्ति में कठोर वर्ण हैं जबकि ऐसे वर्णन में कोमल वर्ण होना चाहिए । अतः थोड़े चन्दन-रस के लेप की बात कही गई है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा-रोसाणिअं फुडं ता कंचणमअबालिआ-(पंचालिआ) रूवं ॥१२॥
विचक्षणा- मरगअमंजीरजुअं चरणा से लंभिआ वअंसीहिं ।

राजा—उज्ज्वलीकृतं स्फुटं तत्काञ्चनमयबालिका (पाञ्चालिका)-रूपम् ॥१२।
विचक्षणा—मरकतमञ्जीरयुगं चरणावस्या लम्भितौ वयस्याभिः ।

अन्वयः—कुंकुमरसपंकपिंजरं तिस्सा अंगं घणमुव्वट्टिदं । ता कंचणमअ-बालिआरूवं फुडं रोसाणिअं ।। १२ ।।

व्याख्या–कुङ्कुमरसवत् पिञ्जरं कुङ्कुमरसपिञ्जरं = कुङ्कुमरसवत् पीतवर्णं, तस्याः=कर्पूरमञ्जर्याः, अङ्गं=शरीरं, घनमुद्वर्तितं=सान्द्रमभ्यङ्गितम् । काञ्चनस्य इयं काञ्चनमयी=स्वर्णमयी सा चासौ बालिका तस्याः रूपं काञ्चनमयबालिकारूपं=सुवर्णमिव सुन्दरमित्यर्थः, उज्ज्वलीकृतं=कान्तिमत् कृतम् । काञ्चनमयेत्यस्य प्रकृतिपीतं तस्याः रूपमिदानीं कुङ्कुमलेपनात् पीततरं शोभातिशययुक्तं जातमित्यर्थः । समुच्चयालङ्कारः । आर्या-वृत्तम् ।। १२ ।।

राजा—तब तो निश्चय ही [प्रकृति से] सोने के समान रूप वाली बालिका (पाठान्तर में पुत्तलिका) का रूप और भी चमका दिया गया ॥१२॥[1]

विचक्षणा—सखियों ने उसके चरणों में मरकतमणि की पायजेबें पहिनाई ।

१. प्रकृति से पीतवर्णा कर्पूरमञ्जरी को कुंकुमरस के लेप से और भी अधिक पीत किया गया । इससे उसका शोभातिशय ध्वनित होता है । 'रोसाणिअं' यह देशी शब्द है । अर्थात् रोशनीयुक्त कर दिया । यहाँ 'बालिआरूवं' ठीक नहीं है क्योंकि राजा नायिका कर्पूरमञ्जरी को प्रियतमा के रूप में देख रहा है । अतः बालिका कहना उचित नहीं है । प्रो० एन० जी० सुरु ने 'पंचालिआ रूवं' पाठ दिया है जिसकी संस्कृत छाया है 'पाञ्चालिकारूपं' तथा अर्थ किया है—doll (पुत्तलिका) । यह अर्थ भी चिन्त्य है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा—भमिअ्रमहोमुहपंकअजुअलं ता भमरमालाहिं ।। १३ ।।
विचक्षणा—राअसुअपिच्छणीलं पट्टंसुअजुअलअं णिअत्था सा ।
राजा-कअलीअ कंदली ता खर (दर)-पवणपणोल्लिअदलग्गा ।।१४।।

राजा—भ्रमितमधोमुखपङ्कजयुगलं तद्भ्रमरमालाभिः ।। १३ ।।
विचक्षणा—राजशुकपिच्छनीलं पट्टांशुकयुगलकं निवसिता सा ।
राजा—कंदलयाः कन्दली तत्खर (दर)-पवन-प्रणुन्न-दलाग्रा ।। १४ ।।

अन्वयः—वअंसीहिं से चरणा मरगअमंजीरजुअं लंभिआ । ता भमरमालाहिं अहोमुहपंकअजुअलं भमिअं ।। १३ ।।

व्याख्या—वयस्याभिः=सखीभिः, अस्याः=कर्पूरमञ्जर्याः, चरणौ=पादौ, मरकतस्य मञ्जरी मरकतमञ्जरी तयोः युगं मरकतमञ्जीरयुगं = मरकतमणि (-हरिन्मणि)-निर्मितनूपुरयुगलं, लम्भितौ=प्रापितौ । तत् = तस्माद्, अधोमुखपङ्कजयुगलम् = अधोमुखकमलद्वयं, भ्रमरमालाभिः = षट्पदपङ्क्तिभिः, भ्रमितं=परितः आवेष्टितमिव जातम् । मञ्जीरयुगलस्य भ्रमरमालया सह सादृश्यं जातमित्यर्थः । वाक्यार्थरूपकं वाक्यार्थनिदर्शनावालङ्कारः । आर्यावृत्तम् ।। १३ ।।

अन्वयः—राअसुअपिच्छणीलं पट्टंसुअजुअलअं सा णिअत्था । ता कदलीअ कंदली खरपवण-पणोल्लिअदलग्गा [सा जाता] ।। १४ ।।

व्याख्या—राजशुकपिच्छ इव नीलं राजशुकपिच्छनीलं=शुकपंखमिव हरित्वर्णं,

---

राजा—तब तो अधोमुख वाले कमल युगल को मानों भ्रमरों ने घेर लिया ।। १३ ।।

विचक्षणा—राजशुक (तोता) के पंख के समान हरे रंग के वस्त्रयुगल उसे पहिनाये गये ।

राजा—तब तो तीव्र वायु से उड़ते हुए पत्तों के अग्रभाग से युक्त केले की कदली के समान लगी होगी ।। १४ ।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विचक्षणा– तीए णिअंबफलए णिवेसिआ पोम्मराअमणिकंची ।
राजा—कंचणसेलसिलाए ता बरिही कारिओ णट्टं ॥ १५ ॥

विचक्षणा—तस्या नितम्बफलके निवेशिता पद्मरागमणिकाञ्ची ।
राजा—काञ्चनशैलशिलायां तद्बर्ही कारितो नृत्यम् ॥ १५ ॥

पट्टांशुकयुगलं=वस्त्रद्वयं, सा=कर्पूरमञ्जरी, निवसिता=परिधापिता । तदा [तदूर्वोः] कदल्याः कंदली = कदलीस्तम्भः, खर (-ईषत्)-पवनेन प्रणुन्नानि=विलोलितान्यान्दोलितानि दलानि=पत्राणि अग्रे यस्याः सा खरपवनप्रणुन्नदलाग्रा = तीव्र (-मृदु) - वायुप्रकम्पितपल्लवाग्रभागा सा जाता । तीव्रवायुना कम्पितैः दलैरग्रभागे परिवृत्ता कदल्या कंदलीव सुशोभिता जाता सा । हरिद्वासोद्वयपरिवृत्तोरूः सा पवनप्रेरितपत्रपरिवेष्टितकदलीस्तम्भवदावभादित्यर्थः । उपमालङ्कारः । वाक्यार्थरूपकं वाक्यार्थनिदर्शना वालङ्कारः । आर्यावृत्तम् ॥ १४ ॥

अन्वयः—तीए णिअंबफलए पोम्मराअमणिकंची णिवेसिआ । ता कंचणसेलसिलाए बरिही णट्ट कारिओ ॥ १५ ॥

व्याख्या–तस्याः=कर्पूरमञ्जर्याः, नितम्बफलके=नितम्बस्थले, पद्मरागमणिभिः=रक्तमणिभिः निर्मिता काञ्ची=रशना (कटिसूत्रं) पद्मरागमणिकाञ्ची, निवेशिता=परिधापिता । तदा काञ्चनस्यैव शैलः तस्य शिला तस्यां काञ्चनशैलशिलायां = सुवर्णपर्वतशिलाखण्डे, बर्हिः=मयूरः, नृत्यं कारितः=नर्तित इति । अत्र नितम्बस्य पीवरत्वात् शिलासाम्यं, काञ्च्याश्च बर्हिसाम्यं जातमिति । वाक्यार्थरूपकं वाक्यार्थनिदर्शना वालङ्कारः । आर्यावृत्तम् ॥ १५ ॥

विचक्षणा—उसके नितम्बों पर पद्मरागमणि की करधनी पहिनाई गई ।

राजा—तब तो सोने की पर्वत-शिला पर मयूर का नृत्य कराया गया ॥ १५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विचक्षणा-दिण्णा वलआवलीउ करकमलपओट्ठणालजुअलम्मि।
राजा-ता भण किं ण रेहइ विपरीअं मअणतोणीरं ॥ १६ ॥
विचक्षणा - कंठम्मि तीअ ठविदो छम्मासिअमोत्तिआण वरहारो।
राजा-सेवइ ता पंतीहिं मुहचंदं तारआणिअरो ॥ १७ ॥

विचक्षणा—दत्ता वलयावल्यः करकमलप्रकोष्ठनालयुगले।
राजा—तद्भण किं न शोभते विपरीतं मदनतूणीरम् ॥ १६ ॥
विचक्षणा—कण्ठे तस्याः स्थापितः षाण्मासिकमौक्तिकानां वरहारः।
राजा—सेवते तत्पङ्क्तिभिर्मुखचन्द्रं तारकानिकरः ॥ १७ ॥

अन्वयः—करकमलपओट्ठणालजुअलम्मि वलआवलीउ दिण्णा। ता भण, विपरीअं मअणतोणीरं किं ण रेहइ ॥ १६ ॥

व्याख्या—करकमलयोः प्रकोष्ठ एव नालयुगलं तस्मिन् करकमलप्रकोष्ठनाल-युगले, वलयावल्यः=कङ्कणद्वयं (द्विवचने बहुवचनस्य प्रयोगः प्राकृतभाषानियमानु-सारम्), दत्ताः=परिधापिताः तत्सम्बद्धाः कृता इति। तद् भण=कथय, विपरीतम्=अधोमुखं, मदनतूणीरं=कामदेवतूणीरमिव किं न शोभते? अपितु तदा तस्याः प्रकोष्ठस्य शोभा अधोमुखस्थमदनतूणीरस्येव जाता। उत्प्रेक्षा-लङ्कारः। आर्यावृत्तम् ॥ १६ ॥

अन्वयः—तीअ कंठम्मि छम्मासिअमोत्तिआण वरहारो ठविदो। ता तारआणिअरो पंतीहिं मुहचंदं सेवइ ॥ १७ ॥

व्याख्या—तस्याः कण्ठे षाण्मासिकमौक्तिकानां=परिपुष्टमौक्तिकानां, वर-

---

विचक्षणा—करकमलों के प्रकोष्ठनाल-युगल (कलाइयों) में चूड़ियां पहिना गईं।

राजा—तब तो कहो [उसके हाथ] कामदेव के अधोमुख तरकस के समान क्यों न सुन्दर लगे होंगे ॥ १६ ॥

विचक्षणा—उसके गले में बड़े-बड़े मोतियों का सुन्दर हार पहनाया।[१]

राजा—तब तो मानों मुखरूपी चन्द्रमा की तारागणों ने पंक्तिबद्धा होकर सेवा की ॥ १७ ॥

---

१. 'छम्मासिअमोत्तिआण=छः महीनों में तैयार हुए मोतियों का। कह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विचक्षणा – उहएसु वि सवणेसुं णिवेसिअं रअणकुण्डलजुअं से ।
राजा – ता वअणमम्महरहो दोहिं वि चक्केहिं चंकमिओ ॥१८॥

विचक्षणा—उभयोरपि श्रवणयोर्निवेशितं रत्नकुण्डलयुगं तस्याः ।
राजा—तद्वदनमन्मथरथो द्वाभ्यामिव चक्राभ्यां चङ्क्रमितः ॥ १८ ॥

हारः=श्रेष्ठमाला, स्थापितः=परिधापितः । तदा तारकानिकरः=नक्षत्रसमूहः, पङ्क्तिभिः=श्रेणिभिः, मुखमेव चन्द्रः तं मुखचन्द्रं सेवते=परिवृत्य तिष्ठतीति । तस्याः मुखस्य चन्द्रेण, मुक्ताहारस्य च तारकानिकरेण साम्यं जातमिति । यथा तारकाणां समुदायः चन्द्रं सेवते तथैव अस्याः मुखचन्द्रं मुक्तामणयः । वाक्यार्थरूपकं वाक्यार्थनिदर्शना वालङ्कारः । उपमाध्वनिः । मुखचन्द्रमित्यत्र रूपकालङ्कारः । आर्यावृत्तम् ॥ १७ ॥

अन्वयः—से उहएसु वि सवणेसुं रअणकुंडलजुअं णिवेसिअं ता वअणमम्महरहो दोहिं वि चक्केहिं चंकमिओ ॥ १८ ॥

व्याख्या–तस्या उभयोरपि श्रवणयोः=कर्णयुगलयोः, रत्नकुण्डलयुगं=रत्नजटितकुण्डलद्वयं, निवेशितं=स्थापितम् । तदा वदनमेव = मुखमेव, मन्मथस्य=कामदेवस्य, रथः द्वाभ्यां चक्राभ्यां चङ्क्रमितः (चङ्क्रम्+इ+क्त यङ्लुगन्त) =चलितः । अत्र कुण्डलयुगलस्य चक्रद्वयेन वदनस्य च मन्मथरथेन साम्यं जातमिति । वाक्यार्थरूपकं वाक्यार्थनिदर्शना वालङ्कारः । आर्यावृत्तम् ॥१८॥

विचक्षणा—उसके दोनों कानों में रत्नजड़ित कुण्डल पहिनाये गये ।

राजा—तब तो मानों उसका मुखरूपी कामदेव का रथ दो पहियों पर चल पड़ा होगा ॥ १८ ॥

जाता है कि स्वाती नक्षत्र के उदित होने पर आकाश से सीप में पड़ा हुआ जल मोती बन जाता है। यदि यह जल छः महीने तक सीप में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विचक्षणा—जच्चंजणजणिदपसाहणाइँ तीए कआइँ णअणाइँ ।
राजा—ता उप्पिउ (उप्पण्णे) णअकुवलअसिलिम्मुहे पंचबाणस्स ॥१९॥
विचक्षणा—कुडिलालआण माला ललाडलेहग्गसंगिणी रइआ ।

विचक्षणा—जात्याञ्जनजनितप्रसाधने तस्याः कृते नयने ।
राजा—तदर्पितौ (उत्पन्नौ) नवकुवलयशिलीमुखौ पञ्चबाणस्य ॥ १९ ॥
विचक्षणा—कुटिलालकानां माला ललाटलेखाग्रसङ्गिनी रचिता ।

अन्वयः—तीए णअणाइं जच्चंजणजणिदपसाहणाइँ कआइँ । ता पंचबाणस्स णअकुवलअसिलिम्मुहे उप्पिउ ॥ १९ ॥

व्याख्या—तस्याः नयने=नेत्रे, जात्यम्=उत्कृष्टञ्च तदञ्जनं=कज्जलं तेन जनितं प्रसाधनम्=अलङ्करणं ययोस्ते जात्याञ्जनजनितप्रसाधने, जाते=कृते, पञ्चबाणस्य=कामदेवस्य, नव-कुवलये एव शिलीमुखौ नवकुवलयशिलीमुखौ=नूतननीलोत्पलसदृशौ नीलकमलबाणौ, अर्पितौ (उत्पुङ्खितौ-उत+पुङ्ख+इ+क्त)=पुञ्जितौ । अत्र तस्याः नयनयोः नवकुवलयेन, अञ्जनस्य च भ्रमरेण साम्यं व्यज्यते । शिलीमुखाविव शिलीमुखाविति रूपकेण च कामिविह्वलत्व-मुक्तम् । नेत्रयोश्च तीक्ष्णत्वं व्यङ्ग्यम् । पूर्ववदालङ्कारः । आर्यावृत्तम् ॥१९॥

विचक्षणा—उसके नेत्रों को बढ़िया काजल से सजाया गया ।

राजा—तब तो मानों कामदेव के नवीन नीलकमलरूपी दो बाण अर्पित किए गये ॥ १९ ॥[१]

विचक्षणा—उसके ललाट के अग्रभाग पर घुंघराले बालों की माला सजाई गई ।[२]

पड़ा रहता है तो वह बहुत बड़े एवं सुन्दर मोती के रूप में बदल जाता है ।

१. उप्पुंखिय (उत्पुङ्खितौ) भी पाठ है ।
२. लोलग्ग (लोलाग्र) और फलअग्ग (फलकाग्र) ये पाठ भी हैं ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा—ता ससिबिंबस्सोवरि वट्टइ मज्झाउ सारंगो ॥ २० ॥
विचक्षणा—घणसारतारणग्रणाइ गूढकुसुमुच्चग्रो चिहुरभारो ।
राजा—ससिराहुमल्लजुज्झं व दंसिदमेणणग्रणाए ॥ २१ ॥

राजा—तच्छशिबिम्बस्योपरि वर्तते मध्ये सारङ्गः ॥ २० ॥
विचक्षणा—घनसारतारनयनाया गूढकुसुमोच्चयश्चिकुरभारः ।
राजा—शशिराहुमल्लयुद्धमिव दर्शितमेणनयनायाम् ॥ २१ ॥

अन्वयः—कुडिलालआण माला ललाडलेहग्गसंगिणी रइआ । ता ससिबिंबस्सोवरि मज्झाउ सारंगो वट्टइ ॥ २० ॥

व्याख्या—कुटिलालकानां=वक्रकेशानां, माला=पङ्क्तिः, ललाटफलकस्य (लेखायाः)=मस्तकस्याग्रसङ्गोऽस्ति यस्याः सा ललाटफलकाग्रसङ्गिनी रचिता । तदा तस्याः शशिविम्बस्य — चन्द्रमण्डलस्योपरि, मध्ये — मध्यभागे, कृष्णश्चासौ सारङ्गः कृष्णसारङ्गः = कृष्णशारमृगः, वर्तते — परिभ्रमन्निव प्रतीयते । अत्र वदनस्य शशिबिम्बेन, अलकमालायाश्च मृगेण साम्यं जातमिति । अलङ्कारः पूर्ववत् । आर्यावृत्तम् ॥ २० ॥

अन्वयः—घणसारतारणअणाइ चिहुरभारो गूढकुसुमुच्चओ [कृतः । ता] एणणअणाए [शिरसि] ससिराहुमल्लजुज्झं व दंसिदं ॥ २१ ॥

व्याख्या—घनसारवत् तारे=उत्कृष्टे शीतले नयने यस्याः तस्याः घनसारतारनयनायाः-कर्पूरमञ्जर्याः, चिकुरभारः=केशपाशः, गूढः=गुम्फितः, कुसुमानां =पुष्पाणामुच्चयः=समुदयः यस्मिन् सः गूढकुसुमोच्चयः । तदा एणस्य नयने

राजा—तब तो [मुखरूपी] चन्द्रबिम्ब के ऊपर मध्यभाग में [कृष्ण] मृग सा विराज रहा होगा ॥ २० ॥

विचक्षणा—कर्पूर की तरह चमकीली आँखों वाली (उस कर्पूरमञ्जरी) के बालों को खूब फूलों से सजाया ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विचक्षणा—इअ देवीअ जहिच्छं पसाहणेहिं पसाहिआ कुमरी।
राजा—ता केलिकाणणमही विहूसिआ सुरहिलच्छीए॥ २२॥
विदूषकः—देव ! इदं परमत्थं विण्णवीअदि—

विचक्षणा—इति देव्या यथेच्छं प्रसाधनैः प्रसाधिता कुमारी।
राजा—तत्केलिकाननमही विभूषिता सुरभिलक्ष्म्या॥ २२॥
विदूषकः—देव ! एतत्परमार्थं विज्ञाप्यते—

इव नयने यस्याः सा तस्याम् एणानयनायां=मृगाक्ष्यां, शशिराहुमल्लयुद्धमिव=चन्द्रराह्वोः द्वन्द्वयुद्धमिव दर्शितम्=अभवत्। अत्र कुसुमनिचयस्य चन्द्रेण, चिकुरनिकुरस्य च राहुणा साम्यमुक्तम्। 'मल्लयुद्धम्' इत्यनेन तयोः समबलत्वं तेन च तुल्यशोभाजनकत्वं व्यज्यते। उपमोत्प्रेक्षे। आर्यावृत्तम्॥ २१॥

अन्वयः—इअ देवीअ [सा] कुमरी जहिच्छं पसाहणेहिं पसाहिआ। ता केलिकाणणमही सुरहिलच्छीए विहूसिआ॥ २२॥

व्याख्या—इति इत्थं, देव्याः=महिष्याः, इच्छामतिक्रम्य यथेच्छम्=इच्छानुसारं, सा कुमारी=कर्पूरमञ्जरी, प्रसाधनैः=अलङ्कारादिभिः, प्रसाधिता=अलङ्कृता। तदा तस्याः कान्तिः परमरमणीया जाता। केलीनां=क्रीडानां, काननं=समूहस्तत्संबन्धिनी मही=उत्पत्तिभूमिः, सुरभिलक्ष्म्या=वसन्तश्रिया सुगन्धलक्ष्म्या वा, विभूषिता=अलङ्कृता। अत्र कुमार्याः साम्यं वसन्तलक्ष्म्या प्रकटितम्। अलङ्कारः पूर्ववत्। आर्यावृत्तम्॥ २२॥

राजा—तब तो मानों उस मृगनयना में शशि और राहु का मल्ल-युद्ध देखा गया॥ २१॥

विचक्षणा—इस तरह देवी ने इच्छानुसार कुमारी (कर्पूरमञ्जरी) को [अलङ्कारादि] प्रसाधनों से सजाया।

राजा—तब तो मानों क्रीडा-उद्यान-भूमि वसन्त-लक्ष्मी से विभूषित की गई॥ २२॥

विदूषक—स्वामिन् ! मैं इस परमार्थ का निवेदन करता हूँ—

जिसकी (नायिका की) दृष्टि सरल और धवल है उसी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिस्सा दिट्ठी सरलधवला कज्जलं तीअ जोग्गं
जा वित्थिण्णत्थणकलसिणी रेहइ तीअ हारो।
चक्काआरे रमणफलए को वि कंचीमरट्टो
जिस्सा तिस्सा पुण वि भणिमो भूसणं दूसणं च ॥२३॥

यस्या दृष्टिः सरलधवला कज्जलं तस्या योग्यं
या विस्तीर्णस्तनकलशिनी शोभते तस्या हारः।
चक्राकारे रमणफलके कोऽपि काञ्च्याडम्बरो
यस्यास्तस्याः पुनरपि भणामो भूषणं दूषणं च ॥ २३ ॥

अन्वयः—जिस्सा दिट्ठी सरलधवला कज्जलं तीअ जोग्गं। जा वित्थिण्णत्थणकलसिणी तीअ हारो रेहइ, चक्काआरे रमणफलए को वि कंचीमरट्टो, पुण वि जिस्सा तिस्सा भूसणं दूसणं च भणिमो ॥ २३ ॥

व्याख्या—यस्याः = नायिकायाः, दृष्टिः = नेत्रव्यापारः, सरला धवला= उज्ज्वला चास्ति, तस्याः नयनयोः एव कज्जलम् = अञ्जनं, योग्यम् = उचितम्। या खलु विस्तीर्णौ च तौ स्तनौ विस्तीर्णस्तनौ तौ कलशाविव यस्याः अस्ति सा विस्तीर्णस्तनकलशिनी तस्याः (तस्यामेव) हारः शोभते। या खलु लम्बकुचा संकुचितकुचा वा न तस्याः इति भावः। किञ्च चक्राकारे= मण्डलाकारे, रमणफलके=जघनस्थले काञ्च्याडम्बरः=रशनाकलापः, कामपि अनिर्वचनीयां शोभां जनयति। यस्याः जघनस्थलमेतादृशं नास्ति न तस्या-

---

की [आँखों में] कज्जल शोभा-वर्धक होता है। जो विशाल स्तनकलशवाली है उसी के [गले में] हार शोभा देता है। जिसका रमणफलक (जघन-प्रदेश) चक्राकार होता है उसी पर काञ्ची-दाम (करधनी) कोई अनिर्वचनीय शोभा को प्राप्त करता है। और भी, मैं कहूँगा कि जिस किसी पर धारण किया गया आभूषण भूषण और दूषण (दुर्गुण) दोनों हो सकता है। अर्थात् प्राकृतिक सुन्दरता रहने पर ही आभूषण शोभा जनक होते हैं अन्यथा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा—(पुनस्तामनुसंधाय)

तिवलिवलिअणाहीबाहुमूलेसु लग्गं

राजा—(पुनस्तामनुसन्धाय)

त्रिवलिवलितनाभिवाहुमूलेषु लग्नं

मित्यर्थः । पुनरपि भूषणम्=अलङ्कारः [एकत्र प्रकृतिसुन्दरीणामङ्गेषु] भूषणं भवति, [अन्यत्र असुन्दरीणामङ्गेषु] दूषणं भवति । रूपकालङ्कारः । मन्दाक्रान्तावृत्तम् ॥ २३ ॥

वे शोभाजनक तथा दोषजनक दोनों हो सकते हैं अथवा निरर्थक हो सकते हैं ॥ २३ ॥[१]

राजा—(पुनः उसी का स्मरण करते हुए)

१. इस श्लोक का अर्थ चौ० सं० में कुछ भिन्न किया गया है जो अनुचित है क्योंकि यह विदूषक की उक्ति है जिसकी दृष्टि में अलङ्कार स्वभाव-सुन्दर कामिनी के सौन्दर्य में चार चाँद लगा देते हैं । प्रथम जवनिकान्तर में विचक्षणा से विवाद होने पर विदूषक तथा विचक्षणा लम्बकुचा आदि स्त्रियों के द्वारा धारण किए गये अलंकारों को दूषण रूप मानते हैं । विदूषक वहाँ पर इतना तक कह देता है कि 'गोरंगीए विअ चंदणचच्चा ण चारुत्तणमवलंवेदि ।' (देखें पृ० १, टि० ३) । अतः यहाँ 'किम्' ? पद का अध्याहार करके अर्थ करना अनुचित है । यदि यह राजा की उक्ति होती तव ऐसा अर्थ करना उचित हो सकता था ।

इस श्लोक का अंतिम चरण भी बड़ा सन्दिग्ध है कि विदूषक को उसका क्या अर्थ अभीष्ट है ? इस चरण का कई तरह से अर्थ किया जा सकता है । जैसे—(१) सुन्दर दृष्टि आदि के रहने पर भूषणों के अभाव में भी सौन्दर्य स्वाभाविक रूप से प्रतिभासित होता रहता है । (२) विशेष प्रयोजन के न होने से स्वभाव-सुन्दर युवतियों को भूषण तो दूषण के समान होते हैं; और इस तरह दूषण और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

थणकलसणिअंबाडम्बरेसूससंतं ।
जलणिविडमिमीए लण्हअं ण्हाणपोत्तं
पिसुणदि तणुलट्ठी-(लच्छी)-लंगिमं चंगिमं च ॥ २४ ॥

स्तनकलशनितम्बाडम्बरेषूच्छ्वसत् ।
जलनिबिडमेतस्याः श्लक्ष्णं स्नानवस्त्रं
पिशुनयति तनुयष्टि(-लक्ष्मी)-तारुण्यं चङ्गिमानं च ॥ २४ ॥

अन्वयः—तिवलिवलिअणाहीबाहुमूलेसु लग्गं थणकलसणिअंबाडम्बरेसूससंतं जलनिविडं इमीए लण्हअं ण्हाणपोत्तं तणुलट्ठी लंगिमं चंगिमं च पिसुणदि ॥ २४ ॥

व्याख्या—तिस्रश्च ताः वलयः त्रिवलयः ताभिः वलिता नाभिः, बाहुमूले (बाहोर्मूले बाहुमूले) सा च ते च तानि, तेषु त्रिवलिवलितनाभिबाहुमूलेषु=त्रिवलिशोभितनाभिकक्षेषु, लग्नं = सम्पृक्तं, स्तनौ कलशौ इव स्तनकलशौ=कलशोपमौ स्तनौ, स्तनकलशौ च नितम्बौ चेति स्तनकलशनितम्बाः तेषामाडम्बरा विस्तराः तेषु; यदि वा स्तनकलशौ च नितम्बाडम्बरौ चेति—स्तनकलशनितम्बाडम्बरास्तेषु स्तनकलशनितम्बाडम्बरेषु = कुचघटनितम्बप्रान्तेषु, उच्छ्वसत्=उल्लसत्, जलेन निविडं जलनिबिडं=नीरसिक्तम् (जलार्द्रम्), अस्याः=नायिकायाः, श्लक्ष्णं=नितान्तसूक्ष्मं चिक्कणं च, स्नानवस्त्रं=स्नानशाटिका, चङ्गस्य भावः चङ्गिमा, तनुयष्टेः चङ्गिमा तं तनुयष्टिचङ्गिमानं=शरीरसौन्दर्यं, तरुणस्य भावः तारुण्यं=यौवनं च पिशुनयति=

त्रिवली से युक्त नाभि तथा बाहुमूलों (कंधों) से चिपका हुआ, कलशों के समान उन्नत स्तनों तथा नितम्बों के ऊपर उभरा हुआ, जल से भीगा

भूषण में साम्यता होती है। (३) अलंकार आदि न धारण करना रूप दूषण भी भूषण के समान होता है। विदूषक के इस कथन की तुलना कविकुलशिरोमणि कालिदास की निम्न पंक्ति से की जा सकती है—'किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्। (शाकुन्तल १.२०)।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदूषकः—(सक्रोधमिव) भो ! मए सव्वालंकारसहिदा वण्णिदा। तुमं पुण जलविलुत्तपसाहणं ज्जेव सुमरसि। ता किं ण सुदं देवेण ?

णिसग्गचंगस्स वि माणुसस्स सोहा समुम्मीलदि भूसणेहिं।
मणीण जच्चाण वि कंचणेण विहूसणे लब्भदि का वि लच्छी ॥२५॥

विदूषकः—[सक्रोधमिव] भोः ! मया सर्वालंकारसहिता वर्णिता। त्वं पुनर्जलविलुप्तप्रसाधनामेव स्मरसि। तत्किं न श्रुतं देवेन ?

निसर्गचङ्गस्यापि मानुषस्य शोभा समुन्मीलति भूषणैः।
मणीनां जात्यानामपि काञ्चनेन विभूषणे लभ्यते कापि लक्ष्मीः ॥२५॥

सूचयति। कर्पूरमञ्जर्याः तनुलतायामुपरिभागे अतिसूक्ष्ममार्द्रञ्च स्नानपरिधानमासीत् अतः तस्या नाभिः बाहुमूले कलशाकारौ स्तनौ नितम्बौ च सुस्पष्टं व्यक्ता आसन्। एतेन तस्याः निरतिशयं सौन्दर्यं यौवनं च प्रकटीक्रियते। उपमालङ्कारः। मालिनीवृत्तम् ॥ २४ ॥

अन्वयः—णिसग्गचंगस्स वि माणुसस्स सोहा भूसणेहिं समुम्मीलदि। जच्चाणं मणीणं वि कंचणेण विहूसणे का वि लच्छी लब्भदि ॥ २५ ॥

व्याख्या—निसर्गेण (निसर्गतः) चङ्गस्य=प्रकृत्या सुन्दरस्य, मानुषस्य=पुरुषस्य, शोभा=कान्तिः, भूषणैः=केयूरादिभिरलङ्कारैः, समुन्मीलति=परि-

हुआ इसका महीन स्नान-वस्त्र इसके कृशशरीरा (तनुलता) के यौवन तथा लावण्य को प्रकट कर रहा है ॥ २४ ॥[१]

विदूषक—[क्रोधित सा होकर] अजी ! मैंने तो उसे सभी अलङ्कारों से अलङ्कृत बतलाया और आप स्नान से विलुप्त प्रसाधनों वाली नायिका का स्मरण कर रहे हैं। क्या श्रीमान् ने सुना नहीं है—

प्रकृति से सुन्दर भी मनुष्यों की शोभा आभूषणों से निखर जाती है। उत्तम मणियाँ भी सोने के आभूषणों के योग से अनिर्वचनीय लक्ष्मी को प्राप्त कर लेती हैं ॥ २५ ॥[२]

---

१. 'लंगिमं' यह देशी शब्द है।

२. 'कंचणेण' के स्थान पर 'हीरएँहिं' (हीरकैः) पाठ भी है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा—

मुद्धाण णाम हिअआइं हरंति हंत
णेवच्छकप्पण-(कम्मण-) गुणेण णिअंबिणीओ ।
छेआ पुणो पअइचंगिमभावणिज्जा
दक्खारसो ण महुरिज्जइ सक्कराए ॥ २६ ॥

राजा—

मुग्धानां नाम हृदयानि हरन्ति हन्त
नेपथ्यकल्पन-(कार्मण-) गुणेन नितम्बिन्यः ।
छेकाः पुनः प्रकृतिचङ्गिमभावनेया
द्राक्षारसो न मधुरीयते शर्करया ॥ २६ ॥

प्रकाश्यते । जात्यानाम्=उत्कृष्टानां मणीनां=रत्नानामपि, काञ्चनैः=सुवर्ण-निर्मितैः भूषणैः कापि=अपूर्वा, लक्ष्मीः=शोभा, लभ्यते=वृद्धिमेति । यथा रत्नानि सुवर्णसंयोगेन अनिर्वचनीयां शोभां धारयन्ति तथैव प्रकृत्या सुन्दराः नराः नार्यः चापि अलङ्कारसंयोगेन अपूर्वं शोभाविशेषं धारयन्तीत्यर्थः । दृष्टान्तोऽत्रालङ्कारः । उपजातिवृत्तम् ॥ २५ ॥

अन्वयः—हंत ! णिअंबिणीओ णेवच्छकप्पणगुणेण मुद्धाण हिअआइं हरंति णाम । छेआ पुणो पअइचंगिमभावणिज्जा । दक्खारसो सक्कराए ण महुरिज्जइ ॥ २६ ॥

व्याख्या—हन्त=खेदे, नितम्बास्सन्ति आसामिति नितम्बिन्यः=प्रशस्तौ नितम्बौ यासां ताः कामिन्यः, नेपथ्यकल्पनस्य गुणस्तेन नेपथ्यकल्पनगुणेन=मनोज्ञवेषरचनादिकृत्रिमसौन्दर्येण, मुग्धानाम्=अविदग्धानां नराणां, हृदयानि=

राजा—बड़े दुःख की बात है कि नितम्बिनियाँ बाह्य वेषभूषा के द्वारा मुग्धों (मूर्खों) के हृदय को हर लेती हैं परन्तु जो चतुर हैं वे प्राकृतिक सौन्दर्य पर ही आकृष्ट होते हैं। द्राक्षारस को चीनी (शक्कर) के द्वारा मधुर नहीं किया जाता है। अर्थात् जैसे द्राक्षारस को मिठास हेतु शर्करा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विचक्षणा—जधा देवेण आदिट्ठं—

थोराणं थणआण कण्णकलिआलंघीण अच्छीण वा
भूचंदस्स मुहस्स कंतिसरिआसोत्तस्स गत्तस्स अ।
को णेवच्छकलाअ कीरदि गुणो जं तं पि सव्वं पिअं
सुत्तव्वं (संजुत्तं) सुण तत्थ कारणमिमं रूढीअ का खंडणा ॥२७॥

विचक्षणा—यथा देवेनादिष्टम्—

स्थूलयोः स्तनयोः कर्णकलिकालङ्घिनोरक्षणोर्वा
भूचन्द्रस्य मुखस्य कान्तिसरित्स्रोतसो गात्रस्य च।
को नेपथ्यकलाभिः क्रियते गुणो यत्तदपि सर्वं प्रियं
श्रोतव्यं (संयुक्तं) शृणु तत्र कारणमिदं रूढेः का खण्डना ॥२७॥

मनांसि, हरन्ति=आवर्जयन्ति ; परन्तु ये नराः खलु छेकाः=विदग्धाः ते प्रकृत्या यः चङ्गिमा तेन भावनीयाः प्रकृतिचङ्गिमभावनीयाः=नैसर्गिकसौन्दर्येणाकृष्टाः भवन्ति। यथा द्राक्षारसः शर्करया न मधुरीयते=माधुर्यार्थं शर्करां नापेक्षते तथैव स्वभावसुन्दराणां कृते कस्या अपि वेषरचनायाः आवश्यकता न भवति। विनैव भूषणं ते नैसर्गिकीं शोभां दधते। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥२६॥

अन्वयः—थोराणं थणआण कण्णकलिआलंघीण अच्छीण वा, भूचन्दस्स मुहस्स कंतिसरिआसोत्तस्स गत्तस्स अ णेवच्छकलाअ को गुणो कीरदि? जं तं पि सव्वं पिअं तत्थ इमं सुत्तव्वं कारणं सुण—'रूढीअ का खंडणा' ॥२७॥

की आवश्यकता नहीं होती है वैसे ही प्रकृति से सुन्दर युवतियों को आभूषणों की आवश्यकता नहीं होती है ॥ २६ ॥[1]

विचक्षणा—जैसा महाराज ने कहा—

जिनके स्थूल स्तन हैं, कानों तक व्याप्त आँखें हैं। मुख पृथ्वी का चन्द्रमा है, अङ्ग-अङ्ग से कान्ति की सरिता प्रवाहित होती है उनको

१. यहाँ द्राक्षा-रस के रूप से प्रस्तुत किया गया है—स्वाभाविक सौन्दर्य तथा शर्करा का साम्य बाह्य अलङ्कार (वेष रचना) से बतलाया है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा—(विदूषकमुद्दिश्य) सुप्पंजल कविंजल ! एस सिक्खा-वीअसि ।

राजा—(विदूषकमुद्दिश्य) सुप्राञ्जल कपिञ्जल ! एष शिक्ष्यसे—

व्याख्या—स्थूलानां=विशालानां स्तनानाम्=उरोजानां, कर्णौ च ते कलिके कर्णकलिके तयोः लङ्घिनोः कर्णकलिकालङ्घिनोः=कर्णपर्यन्तमायतयोः, अक्ष्णोः=नेत्रयोः, भुवः चन्द्रः भूचन्द्रः तस्य भूचन्द्रस्य=पृथिवीतलस्थसुधाकरस्य चन्द्रोपमस्य मुखस्य, कान्तिरेव सरित्स्रोतः तस्य कान्तिसरित्स्रोतसः=लावण्य-नदीप्रवाहस्य तद्रूपस्य गात्रस्य=शरीरस्य, नेपथ्यस्य कला ताभिः नेपथ्य-कलाभिः=विविधकृत्रिमवेषरचनाभिः को गुणः क्रियते=किं वैशिष्ट्यमुत्पाद्यते न किमपि 'व्यर्थं' इत्यर्थः । एवं स्थितेऽपि सर्वेषां कृते प्रसाधनं प्रियं किमर्थं भवति ? अत्र श्रोतव्यं कारणं शृणु—रूढेः=परम्परायाः, का खण्डना ? प्रसाधनानां गुणानुत्पादकत्वेऽपि तत्र जनानां या अभिरुचिर्दृश्यते तत्र कारणमस्ति अखण्डनीया रूढिरेव । [यथा यौगिकशब्दजन्योऽर्थः रूढ्यर्थस्य समक्षं नाद्रियते तथैव नैसर्गिकसौन्दर्यं किमपि प्रसाधनादिकं नापेक्षते ।] निसर्गसौन्दर्यस्य सत्त्वेऽपि जना रूढिवशात् भूषणानि धारयन्तीति भावः । वस्तुतस्तु निसर्गसौन्दर्यं न कमप्यन्यं भूषणमपेक्षते । प्रसाधनैः पुनः प्रकृतिसौन्दर्यं परिच्छाद्यत एवेति भावः । उपमालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम् ॥ २७ ॥

साजसज्जा से कोई लाभ नहीं होता है । ऐसा होने पर भी साजसज्जा जो सबको प्रिय है उसका श्रोतव्य कारण सुनें—'परम्परा का बहिष्कार नहीं हो सकता है; अर्थात् परम्परा के कारण ही आभूषणों के प्रति रुचि है ॥२७॥[1]

राजा—[विदूषक को उद्देश्य करके] अरे, भोले कपिञ्जल ! यह सीख लो—

१. इस पद्य में 'सुत्तव्वं' के स्थान पर संजुत्तं (संयुक्तं) पाठ भी मिलता है । तदनुसार यह अर्थ किया जाता है कि जैसे योगार्थ की अपेक्षा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किं कज्जं क्त्तिमेणं विरअणविहिणा सो णडीणं विडंबो
तं चगं जं णिअंगं (णिसग्गं) जणमणहरणं तेण सीमंतिणोओ।
जस्सि सव्वंगसंगो सअलगुणगणो सो अदंभो अलंभो (सो अ संभोअलंभो)
तस्सि णेच्छंति काले परमसुहअरे किं पि णेवच्छलच्छि ॥२८॥

किं कार्यं कृत्रिमेण विरचनविधिना स नटीनां विडम्ब-
स्तच्चङ्गं यन्निजाङ्गं (निसर्गं) जनमनोहरणं तेन सीमन्तिन्यः।
यस्मिन् सर्वाङ्गसङ्गः सकलगुणगणः सोऽदम्भोऽलभ्यः (स च संभोगलम्भः)
तस्मिन्नेच्छन्ति काले परमसुखकरे कामपि नेपथ्यलक्ष्मीम् ॥२८॥

अन्वयः—कित्तिमेणं विरअणविहिणा किं कज्जं? सो णडीणं विडंबो। जं णिसग्गं तं चगं तेण सीमंतिणीओ जणमणहरणं [कुर्वन्ति]। जस्सि सअलगुणगणो सव्वंगसंगो सो अदंभो अलंभो तस्सि परमसुहअरे काले किं पि णेवच्छलच्छि णेच्छन्ति ॥ २८ ॥

व्याख्या—कृत्रिमेण=बाह्येन, विरचनविधिना=आभूपणादिविन्यासेन किं कार्यं=प्रयोजनं न किमपीत्यर्थः। सः=कृत्रिमविरचनाविधिः, नटीनां= नर्तकीनां वेश्यानां वा, विडम्बः=वञ्चनाप्रकारः। वेश्याः खलु मुग्धान् प्रतारयितुं कृत्रिमप्रसाधनैः स्वाङ्गानि विभूषयन्ति। मुग्धाः=मूर्खा एव कृत्रिमालङ्का-

कृत्रिम साजसज्जा से क्या लाभ? यह तो वेश्याओं का स्वांग (दूसरों को ठगने का तरीका) है। जो स्वाभाविक अंग-सौष्ठव है वही सुन्दरता है और उसी [सुन्दरता] के द्वारा कुलाङ्गनायें मनुष्यों के मन को आकृष्ट करती हैं। जिस [यौवनावस्था] में सम्पूर्ण गुणों का समुदाय प्रत्येक अङ्ग में उभर आता है वह नैसर्गिक (अदम्भ=दम्भरहित) सौन्दर्य दुर्लभ

रूढि अर्थ प्रधान होता है वैसे ही अलङ्कारादि-योगज-सौन्दर्य की अपेक्षा स्वाभाविक (रूढि) सौन्दर्य श्रेष्ठ होता है। उस स्वाभाविक सौन्दर्य का कोई अपलाप नहीं कर सकता है। परन्तु ऐसा अर्थ करने पर 'जं तं पि सव्वं पिअं' के साथ ठीक समन्वय नहीं होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रैराकर्षिता भवन्तीत्यर्थः। यत् निसर्ग=स्वाभाविकं (निजाङ्ग=स्वशरीरम् इति पाठान्तरे) सुन्दरं शरीरं तेन सीमन्तोऽस्याः अस्ति यास्ताः सीमन्तिन्यः= कुलाङ्गनाः, जनानां विदग्धपुरुषाणां, मनोहरणं=चित्ताकर्षणं कुर्वन्ति, मनांसि आवर्जयन्तीति भावः। (जनानां मनांसि हरतीति जनमनोहरणं=सर्वलोकाऽ-ह्लादकारकं निसर्गचङ्गं शरीरम् इत्यन्वयोऽपि बोध्यः)। यस्मिन् काले सकलानां गुणानां गणः सकलगुणगणः=शीलसौन्दर्यादीनां संपूर्णगुणसमुदयः, सर्वेषु अङ्गेषु सङ्गो यस्य सः सर्वाङ्गसङ्गः=सकलशरीरव्यापृतः, न विद्यते दम्भो यत्र असौ अदम्भः=स्वाभाविकः, अलभ्यः=अप्राप्योऽस्ति। एतस्मिन् परमसुखकरे काले=अत्यानन्दजनके काले रत्यावस्थायां युवावस्थायां वा विदग्धाः कामपि नेपथ्यलक्ष्मीं=प्रसाधनशोभां, नेच्छन्ति-नाभिलषन्ति। युवावस्थायां सीमन्तिन्यः स्वत एव मनोहराः भवन्ति तत्र वेषभूषादिजनित शोभायाः कापि आवश्यकता न भवति रत्यवस्थायामपि नेपथ्यरचनायाः नास्ति आवश्यकता तदा तु सर्वाङ्गानां संस्पर्श एव मुख्यः। इत्थं नटीनां कृत्रिमविभूषणादिभिरापाततः सौन्दर्यमुल्लसति, न पुनः सीमन्तिनीनामिति व्यतिरेको व्यज्यते। स्रग्धरावृत्तम् ॥ २८ ॥

(अलम्भ=पर्याप्त) हैं। उस परमसुखदायी काल में (रत्यावस्था में) किसी भी प्रकार की बाह्य साजसज्जा की (विदग्ध लोग) इच्छा नहीं करते हैं ॥ २८ ॥[1]

---

१. यहाँ नटी और सीमन्तिनी में अन्तर बतलाया गया है जिससे व्यतिरेक अलङ्कार व्यङ्ग्य है। छेकानुप्रास और वृत्यनुप्रास अलङ्कार भी हैं। पं० वासुदेव ने संस्कृत टीका में 'णिसग्गं' के स्थान पर 'णिअंगं' पाठ मानकर व्याख्या की है। यहाँ अङ्ग पद आह्लादकत्वविशिष्ट अङ्ग में संक्रान्त है जिससे अर्थान्तरसंक्रमितवाच्यलक्षणामूल - ध्वनि है। किञ्च, उन्होंने 'जणमणहरणं' को सीमंतिणीओ' का विशेषण बनाया है तथा वहाँ भिन्न लिङ्ग वचन प्रयुक्त दोष की संभावना का समाधान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विचक्षणा—देव ! इदं विण्णवीअदि—ण केवलं देवीणिओएण तिस्सा अणुगद म्हि। तारामेत्तीए वि सहित्तणं उवगदा (पत्ता) कप्पूरमंजरीए। तेण तक्कज्जसज्जा अहं पुण ओलग्गाविआ भविस्सं।

तिस्सा तावपरिक्खिणाअ णिहिदो हत्थो थणुत्थगदो
दाहुड्डामरिदो सहीहि बहुसो हेलाअ कड्ढिज्जइ।

विचक्षणा—देव ! एतद्विज्ञाप्यते—न केवलं देव्या नियोगेन तस्या अनुगताऽस्मि। तारामैत्र्याऽपि सखीत्वं उपगता (प्राप्ता) कर्पूरमञ्जर्याः। तेन तत्कार्ये सज्जाऽहं पुनः सेवाकारिणी भविष्यामि।

तस्यास्तापपरीक्षणाय निहितो हस्तः स्तनोत्सङ्गाद्
दाहोड्डामरितः सखीभिर्बहुशो हेलया कृष्यते।

विचक्षणा—देव ! यह निवेदन है; केवल देवी के आदेश से ही मैं कर्पूरमञ्जरी की अनुचरी नहीं हूँ, अपितु मेरी उससे तारामैत्री (आँखों के तारों के मिलने पर होने वाली स्वाभाविक प्रीति अर्थात् देखते ही होने वाली प्रीति) भी हो गई है। अतएव उसकी परिचर्या में तत्पर रहने वाली मैं पुनः सेवक के रूप में निवेदन करूँगी—

दो प्रकार से प्रस्तुत किया है—(१) वस्तुपद का अध्याहार करेंगे और अजहल्लिङ्ग होने से दोषाभाव होगा। (२) काकाक्षिगोलकन्याय (कौआ की एक आँख होती है परन्तु वह क्रमशः दोनों गोलकों से सम्बन्ध रखती है) से 'जणमणहरणं' का उभयत्र अन्वय करेंगे। 'सीमंतिणीओ' से उत्तमत्वविशिष्ट का बोध करने से यहाँ अर्थान्तर-संक्रमितवाच्यध्वनि होगी। 'परमसुहअरे काले' से परम सुखदायक संभोग काल लेना है। प्रा० सुरू० ने 'अदंभो अलंभो' पाठ के स्थान पर 'संभोअलंभो पाठ' दिया है तदनुसार अर्थ होगा 'जिस संभोग काल में सभी अङ्गों का परस्पर संपर्क हो जाता है और वहाँ नेपथ्यादि की आवश्यकता नहीं रहती है।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किं तेणावि इमं णिसामअ गिरं संतोसणिं तासणिं
हत्थच्छत्तणिवारिदेंदुकिरणा बोलेइ सा जामिणीं ॥२९॥

किं तेनापीमां निशामय गिरं संतोषिणीं त्रासिनीं
हस्तच्छत्रनिवारितेन्दुकिरणातिवाहयति सा यामिनीम् ॥२९॥

अन्वयः—तिस्सा तावपरिक्खिणाअ सहीहि थणुत्थंगदो णिहिदो हत्थो दाहुड्डामरिदो बहुसो हेलाअ कड्ढिज्जइ। किं तेणावि इमं संतोसणिं तासणिं गिरं णिसामअ। सा हत्थच्छत्तणिवारिदेंदुकिरणा जामिणीं बोलेइ ॥ २९ ॥

व्याख्या—तस्याः=कर्पूरमञ्जर्याः, तापस्य परीक्षणाय=किं निमित्तं कीदृशश्चास्याः सन्ताप इति निश्चेतुं, सखीभिः=वयस्याभिः, स्तनयोः=पयोधरयोः उत्सङ्गः तस्मात् स्तनोत्सङ्गतः=पयोधरसमीपतः, निहितः=स्थापितः अपि हस्तः=करः, दाहोड्डामरितः=तापेनात्यर्थमुत्तापितः, बहुशः=वारम्वारं; हेलया=अवज्ञया, कृष्यते=अपनीयते। यदि एतेनापि तस्याः सन्तापस्य स्थितिः सम्यग् न ज्ञायते तर्हि इमां मया विज्ञाप्यमानां, सन्तुष्यति या तां संतोषिणीम् =आनन्दप्रदां, त्रासोऽस्त्यस्यां तां त्रासिनीं=भयोत्पादिकां गिरं=वाणीं, निशामय=शृणु। हस्तौ एव क्षत्रं=करातपत्रं तेन निवारिताः=अपवारिताः, इन्दुकिरणाः=चन्द्रमयूखाः यया सा हस्तक्षत्रनिवारितेन्दुकिरणा सा कर्पूरमञ्जरी यामिनीं=रात्रिमतिवाहयति=यापयति। इत्थं कर्पूरमञ्जर्याः विरहवेदना दुःसहा, विलम्बोऽसह्यः, अतः सा त्वयि गाढमनुरक्ता, त्वया शीघ्रं रक्षणीया आलिङ्गनीया च सा। रूपकानुप्रासौ। शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ २९॥

उसके सन्ताप की परीक्षा के लिए सखियों के द्वारा उसके स्तनों के मध्य में रखा हुआ हाथ अतिताप के कारण शीघ्रता पूर्वक हटा लिया जाता है। इतना कहना यदि पर्याप्त नहीं है तो इस संतोष और भय को उत्पन्न करने वाली वाणी सुनें। वह अपने हाथ रूपी छत्र से [संतापदायिनी] चन्द्रकिरणों का निवारण करती हुई रात्रि गुजारती है ॥ २९ ॥[1]

1. विचक्षणा ने यहाँ कर्पूरमञ्जरी की दशा का वर्णन करते हुए राजा के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कज्जसेसं कविंजलो णिवेदइस्सदि । तं च देवेण तधा कादव्वं । (इति परिक्रम्य निष्क्रामति) ।

राजा—वअस्स ! किं पुण तं कज्जसेसं ?

विदूषकः—अज्ज हिंदोलअचउत्थी । तहिं गोरिं कदुअ देवीए (देवीए पुरदो) कप्पूरमञ्जरी हिंदोलए आरोइदव्वा । ता मरगअ-

---

कार्यशेषं कपिञ्जलो निवेदयिष्यति । तच्च देवेन तथा कर्तव्यम् । (इति परिक्रम्य निष्क्रामति)

राजा—वयस्य ! किं पुनस्तत्कार्यशेषम् ?

विदूषकः—अद्य हिन्दोलनचतुर्थी । तत्र गौरीं कृत्वा देव्या (देवीए पुरदो)

शेष कार्य कपिञ्जल निवेदन करेंगे । उसे भी देव उसके अनुसार करें ।

राजा—मित्र ! वह शेष कार्य क्या है ?

विदूषक—आज हिंदोलन-चतुर्थी है । इस अवसर पर देवी गोरी (पार्वती) का [हिंदोलन=पूजा] करके कर्पूरमञ्जरी को झूले पर झुलायेंगी । तब मरकतपुञ्ज में बैठकर आप कर्पूरमञ्जरी को झूलते हुए देखें । यही वह

लिए 'त्रासदायक' और 'संतोषदायक' दोनों बतलाया है । इसका तात्पर्य है कि तुम्हारी प्रिया तुम्हारे विरह से अत्यन्त पीड़ित है और अपने हाथ से संतापदायी चन्द्रकिरणों का निवारण कर रही है परन्तु हाथ मात्र से यह कार्य संभव नहीं है जिससे उसका मरण संभाव्य है । (अथवा जैसे चन्द्रकिरणें निवारण करने पर भी उसके शरीर का बलात् स्पर्श करती हैं उसी प्रकार आप भी करें) । इस तरह विरह-संताप अत्यन्त असह्य होने से 'त्रासदायक' है । संतोषदायक इसलिए है कि जिसे आप प्रेम करते हैं वह आपको भी बहुत प्रेम करती है तथा उसका आप अपनी इच्छानुसार आलिङ्गन करें । यहाँ रूपक और छेकानुप्रास अलङ्कार हैं । 'विधान' नामक मुखसन्धि का अङ्ग है (विधानं सुखदुःखकृत । दशरूपक १.२८) ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुंजट्ठिदेण ज्जेवं देवेण कप्पूरमञ्जरी हिंदोलअती दट्ठव्वा। एदं तं कज्जसेसं।

राजा- (विचिन्त्य) ता अदिणिउणा वि छलिदा देवी।

विदूषकः—पाइदा जुण्णमज्जारिआ दुद्धं ति तक्कं (कजिअं दुद्धं ति तक्केमि)।

राजा - वअस्स ! को अण्णो तुम्हाहिंतो मे कज्जसज्जो ? को अण्णो चंदाहिंतो समुद्दवड्ढणगिट्ठो (विअड्ढो) ?

(इति परिक्रम्य कदलीगृहप्रवेशं नाटयतः)

विदूषकः—इअं उत्तुंगा फलिहमणिवेदिआ। ता इह उववसिदु पिअवअस्सो।

कर्पूरमञ्जरी हिन्दोलके आरोहयितव्या। तन्मरकतपुञ्जस्थितेनैव देवेन कर्पूरमञ्जरी हिन्दोलयंती द्रष्टव्या। एतत्तत्कार्यशेषम्।

राजा—(विचिन्त्य) तदतिनिपुणापि छलिता देवी।

विदूषकः—पायिता जीर्णमार्जारिका दुग्धमिति तक्रम् (काञ्जिकां दुग्धमिति तर्कयामि)।

राजा—वयस्य ! कोऽन्यो युष्मत्तो मम कार्यसज्जः ? कोऽन्यश्चन्द्रतः समुद्रवर्धननिष्ठः (विदग्धः) ?

[इति परिक्रम्य कदलीगृहप्रवेशं नाटयतः]

विदूषकः—इयमुत्तुङ्गा स्फटिकमणिवेदिका। तदिहोपविशतु प्रियवयस्यः।

कार्य शेष है।

राजा—(विचारकर) तब तो अत्यन्त निपुण भी देवी छली गई।

विदूषक—बूढ़ी बिल्ली ने दूध के भ्रम से मठा पी लिया।

राजा—मित्र ! तुम्हें छोड़कर और कौन मेरे कार्य में इतना तत्पर हो सकता है ? चन्द्रमा के अतिरिक्त और कौन समुद्र की वृद्धि करने वाला हो सकता है ?

[परिक्रमा करके कदली गृह में प्रवेश का अभिनय करते हैं]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(राजा तथा करोति)

विदूषकः —(हस्तमुद्यम्य) भों दीसदु पुण्णिमाचंदो ।

राजा—(विलोक्य) अहो ! दोलारूढाए मह वल्लहाए वअणं पुण्णिमाचंदो त्ति णिद्दिसदि । (सम्यगवलोक्य)

विच्छाअंतो णअररमणीमंडलस्साणणाइं
पच्छालंतो (विच्छालेंतो) गअणकुहरं कंतिजोण्हाजलेण ।

[राजा तथा करोति]

विदूषकः—(हस्तमुद्यम्य) भोः ! दृश्यतां पूर्णिमाचन्द्रः ।

राजा—(विलोक्य) अहो ! दोलारूढाया मम वल्लभाया वदनं पूर्णिमाचन्द्र इति निर्दिशति । (सम्यगवलोक्य)

विच्छाययन्नगररमणीमण्डलस्याननानि
प्रक्षालयन् (विच्छाययन्) गगनकुहरं कान्तिज्योत्स्नाजलेन ।

अन्वय—णअररमणीमंडलस्साणणाइं विच्छाअन्तो, कंतिजोण्हाजलेण गअणकुहरं पच्छालंतो, पेच्छंतीणं हिअअणिहिदं दप्पं अ णिद्दलंतो, दोलालीलासरलतरलो से मुहेंदू दीसए ॥ ३० ॥

विदूषक—यह उन्नत स्फटिकमणि की वेदिका है। अतः प्रियमित्र यहाँ वैठें ।

[राजा वैसा ही करता है]

विदूषक—(हाथ उठाकर) भो ! पूर्णिमा का चन्द्रमा देखिये ।

राजा—(देखकर) अहो ! झूले पर बैठी हुई मेरी प्रियतमा के मुख को पूर्णिमा का चन्द्रमा कह रहा है। (अच्छी तरह देखकर) ।

नगर की रमणियों के मुखमण्डल को मलिन करता हुआ, कान्तिरूपी ज्योत्स्ना के जल से आकाश-मण्डल को प्रक्षालित करता हुआ तथा देखनेवालों के हृदय में निहित दर्प (मैं सबसे अधिक सुन्दर हूँ—अहमेव सुन्दरी नान्येति । ऐसे रमणियों के गर्व तथा मेरी प्रिया ही सबसे अधिक सुन्दर है—'ममैव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पेच्छंतीणं हिअअणिहिइं णिद्दलंतो अ दप्पं
दोलालीलासरलतरलो दीसए से मुहेंदू ॥ ३० ॥

अवि अ—
उच्चेहिं गोउरेहिं धवलधअवडाडंबरिल्लावलीहिं
घंटाहिं विद्दुरिल्लासुरतरुणिविमाणाणुसारं लहंती।

प्रेक्षमाणानां हृदयनिहितं निर्दलयंश्च दर्पं
दोलालीलासरलतरलो दृश्यतेऽस्या मुखेन्दुः ॥ ३० ॥

अपि च—
उच्चेषु गोपुरेषु धवलध्वजपटाडम्बरवहुलावलीषु
घण्टाभिर्विद्राणसुरतरुणिविमानानुसारं लभमाना।

व्याख्या—नगरे या रमण्यस्तासां मंण्डलस्य=नगररमणीमण्डलस्य=नगरकामिनीसमुदायस्य, आननानि=मुखानि, विगता=नष्टा छाया=कान्तिः यस्य तत् विच्छायं, विच्छायं करोतीति विच्छाययन्=म्लानीकुर्वन्, कान्तिरेव ज्योत्स्ना=चन्द्रिका तस्याः जलं=सलिलं तेन कान्तिज्योत्स्नाजलेन, गगनम्=आकाशमेव, कुहरं=विवरं प्रक्षालयन् (प्र+क्षालि+शतृ)=धवलयन्, प्रेक्षन्ते इति प्रेक्षमाणास्तेषां प्रेक्षमाणानां=कर्पूरमञ्जरीमवलोकयतां पश्यन्तीनां वा हृदये निहितं हृदयनिहितं=हृदयस्थं दर्पं 'ममैव भार्या सुन्दरी नान्या' इति नराणां दर्पम् 'अहमेव सुन्दरी नान्या' इति नारीणां दर्पं निर्दलयन्=निःशेषेण उन्मूलयन्, अस्याः=कर्पूरमञ्जर्याः, मुखेन्दुः=मुखचन्द्रः, दोलायाः=हिंदोलनस्य लीलया=सञ्चरणेन सरलः तरलश्च दृश्यते=अवलोक्यते। मुखस्य निर्मलत्वात् सरलत्वं, दोलायाः संचरणात् तरलत्वं चास्ति। दोलाधिष्ठितः अस्याः मुखेन्दुः दोलया सह सन्निकृष्टं विप्रकृष्टं च गच्छन् चाकचक्यं जनयतीति भावः। रूपकालङ्कारः। मन्दाक्रान्तावृत्तम् ॥ ३० ॥

भार्या सुन्दरी नान्या' ऐसे कामियों के गर्व) को चूर-चूर करता हुआ यह झूले में झूलता हुआ इसका मुखरूपी चन्द्रमा दिखलाई पड़ रहा है ॥ ३० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पाश्रारं लंघश्रंती कुणदि रश्रवसा उण्णमंती णमंती
एंती जंती श्र दोला जणमणहरणं बुड्डुणुब्बुड्डुणेहिं ।।३१।।
श्रवि श्र–

प्राकारं लङ्घयन्ती करोति रयवशादुन्नमन्ती नमन्ती
आयान्ती यान्ती च दोला जनमनोहरणं मज्जदुन्मज्जनैः ।। ३१ ।।

अपि च—

अन्वयः— धवलधअवडाडंबरिल्लावलीहिं उच्चेहिं गोउरेहिं घंटाहिं विदुरिल्लासुरतरुणिविमाणाणुसारं लहंती, पाआरं लंघअंती रअवसा उण्णमंती णमंती, एंती जंती अ बुड्डणुव्बुड्डुणेहिं दोला जणमणहरणं कुणदि ।।३०।।

व्याख्या— धवलानां=श्वेतानां ध्वजपटानां=पताकावस्त्राणां ये आडम्बराः =विस्ताराः तैः वहलाः=पूर्णाः आवल्यः=पङ्क्तयः येषु तादृशेषु धवलध्वजपटाडम्बरवहलावलीषु, उच्चेषु = उन्नतेषु गोपुरेषु=पुरद्वारेषु, घण्टाभिः = घण्टारवैः विद्राणं (वि+द्रा+क्त)=वेगेन गच्छत् यत् सुरतरुणीनां= देवाङ्गनानां विमानं तस्यानुरूपं=सदृशं विद्राणसुरतरुणिविमानानुरूपं, वहन्ती = चलन्ती, प्राकारं=प्राचीरं, लङ्घयन्ती=उत्क्रामन्ती, रयस्य वशः तस्मात् रयवशात्=तीव्रवेगत्वात्, उन्नमन्ती=उर्ध्वं गच्छन्ती, नमन्ती=पुनरधो यान्ती,

और भी–स्वच्छ और शुभ्र वस्त्र की पताकाओं की पंक्तियों से युक्त उन्नत गोपुरों में स्थित घंटियों के मञ्जुल शब्द से वेगपूर्वक जाते हुए देवकन्या के विमान के समान मालूम पड़ता है। प्राकार (चहारदीवारी) को लांघता हुआ, वेगपूर्वक ऊपर और नीचे होता हुआ, [पास] आता हुआ और [दूर] जाता हुआ, तथा कभी डूबता हुआ (दृष्टि से ओझल होता हुआ) और कभी उतराता हुआ (दृष्टिगोचर होता हुआ) यह झूला मनुष्यों के मन को हरण कर रहा है ।। ३१ ।।[1]

1. झूला के स्वरूप का वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलङ्कार है। उपमा और अनुप्रास अलङ्कार भी हैं। 'बुड्डुणुब्बुड्डुणेहिं' के स्थान पर पं० वासुदेव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रणंतमणिणेउरं झणझणंतहारच्छडं
कणक्कणिदकिंकिणीमुहरमेहलाडंबरं ।
विलोलवलआवलोजणिदमञ्जुसिंजारवं
ण कस्स मणमोहणं ससिमुहीअ हिंदोलणं ॥ ३२ ॥

रणन्मणिनूपुरं झणझणायमानहारच्छटं
कणक्वणितकिङ्किणीमुखरमेखलाडम्बरम् ।
विलोलवलयावलीजनितमञ्जुसिञ्जारवं
न कस्य मनोमोहनं शशिमुख्या हिन्दोलनम् ॥ ३२ ॥

समीपमायान्ती, दूरं यान्ती — गच्छन्ती चेयं दोला मज्जदुन्मज्जनैः (पाठान्तरे कर्षणानि उत्कर्षणानि तैः कर्षणोत्कर्षणैः=ऊर्ध्वाधः संचालितैः) कामिनो मनोहरणं=हृदयावर्जनं करोति । कर्पूरमञ्जर्याधिष्ठिता दोला कर्षणेन यदा समीपमागच्छति तदा तया कामिजनाः मज्जिताः भवन्ति, यदा च उत्कर्षणेन दूरं गच्छति तदा उन्मज्जिताः भवन्तीति । सर्वेषां जनानां मनांसि संमोहयतीति भावः । अनुप्रासः । स्रग्धरावृत्तम् ॥ ३१ ॥

अन्वयः—रणंतमणिणेउरं झणझणन्तहारच्छडं कणक्कणिदकिंकणीमुहरमेहलाडंबरं विलोलवलआवलीजणिदमंजुसिंजारवं ससिमुहीअ हिंदोलणं कस्स मणमोहणं न [करोति] ॥ ३२ ॥

व्याख्या—रणन्तौ—शब्दायमानौ मणिनूपुरौ = मणिनिर्मितौ नूपुरौ यस्मिन् तत् रणन्मणिनूपुरं, झणझणायमाना हारस्य छटा यस्मिन् तत्

मणिनूपुरों की झङ्कार से युक्त सुन्दर हार की झनझनाहट से पूर्ण करधनी की छाटी-छोटी घंटिकाओं के शब्द से मुखर, चञ्चल चूड़ियों की

'कट्टुणुक्कट्टुणेहिं' (कर्षणोत्कर्षणैः) पाठ माना है । तदनुसार 'झूला के खींचने से और छोड़ने से पास आता हुआ और दूर होता हुआ' अर्थ होगा । 'गोउरेहिं' के स्थान पर 'चामरेहिं' (चामरैः) पाठ भी मिलता है । 'विदुरिल्ल' देशी शब्द है इसके दो अर्थ हो सकते हैं— 'शीघ्रगमन' और 'मधुर ध्वनि' ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदूषकः—भो ! सुत्तआरो तुवं । अहं पुण वित्तिआरो भविय वित्थरेण वण्णेमि ।

विदूषकः—भोः ! सूत्रकारस्त्वम् । अहं पुनर्वृत्तिकारो भूत्वा विस्तरेण वर्णयामि ।

झणझणायमानहारच्छटं, कलम्=अव्यक्तमधुरं क्वणन्त्यः=ध्वनन्त्यः याः किङ्किण्यः=क्षुद्रघण्टिकाः ताभिः मुखरः=सशब्दः यः मेखलायाः=रशनायाः आडम्बरः=विलासो यस्मिन् तत् कलक्वणितकिंकणीमुखरमेखलाडम्बरं, विलोलाभिः=चञ्चलाभिः वलयावलीभिः=किङ्कण्यावलीभिः, जनितः=उत्पन्नः यो मञ्जु=मनोहरः शिञ्जारवः=झङ्कारशब्दः यस्मिन् तत् विलोलवलयावलीजनितमञ्जुशिञ्जारवं, शशिवत् मुखं यस्याः सा तस्याः शशिमुख्याः=चन्द्राननायाः कर्पूरमञ्जर्याः, हिन्दोलनं=दोला कस्य=कामिनो, मनसः मोहनं मनोमोहनं=चित्ताकर्षणं न करोति अपितु सर्वस्यैव मनांसि मोहयतीति भावः । अर्थात् यदा कर्पूरमञ्जरी हिन्दोलति तदा तस्याः नूपुरादयः मधुरं शब्दायन्ति । अतः हिन्दोलनस्य आह्लादकरत्वं जातमिति । शशिमुख्या इत्यत्रोपमा । पृथ्वीवृत्तम् ॥ ३२ ॥

मधुर ध्वनि से झंकृत चन्द्रमुखी (कर्पूरमञ्जरी) का झूलना किसके मन को आकर्षित नहीं कर रहा है अर्थात् सभी को आकृष्ट कर रहा है ॥३२॥[1]

विदूषक—महाराज ! आप सूत्रकार हैं । मैं वृत्तिकार बनकर विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूँ ।[2]

---

१. यहाँ स्वभावोक्ति और अनुप्रास अलङ्कार हैं । काकु से सर्वप्रियत्व की प्रतीति हो रही है ।

२. यहाँ से श्लोक ४६ तक मनमोहनघोष तथा पोद्दार जी के संस्करण में अर्धांश राजा कहता है और शेषांश विदूषक कहता है । यह प्रक्रिया इसी अङ्क की विचक्षणा एवं राजा (श्लोक १२–२) की परिचर्चा के समान ही है । श्लोक संख्या ३३ से ३६ तक उत्प्रेक्षालंकार है । सूत्र का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उवरिट्ठिअथणप्पब्भारचंपिअं (-पीडिअं)
चरणपंकआण जुअं (पंकजजुअं से)।
हक्कारइ (पुक्कारइ) व्व मअणं
रणंतमणिणेउररवेण ॥ ३३ ॥

उपरिस्थितस्तनप्राग्भारपीडितं चरणपङ्कजयोर्युगं तस्याः।
आह्वयतीव (पुक्कारयतीव) मदनं रणन्मणिनूपुररवेण ॥ ३३ ॥

अन्वयः—उवरिट्ठिअथणप्पब्भारचंपिअं चरणपंकआण जुअं रणंतमणिणेउररवेण मअणं पुक्कारई व्व ॥ ३३ ॥

व्याख्या—तस्याः=कर्पूरमञ्जर्याः उपरि स्थितयोः स्तनयोः=समुन्नतयोः पयोधरयोः, प्राग्भारेण पीडितं=भाराक्रान्तम् उपरिस्थितस्तनप्राग्भारपीडितं, चरणपङ्कजयोर्युगं=पादपद्मयुगलं तत् रणन्तौ=शब्दं कुर्वन्तौ यौ मणिनूपुरौ तयोः रवेण = शब्देन रणन्मणिनूपुररवेण, मदनं=कामदेवं पुक्कारयति =आह्वयतीव। कर्पूरमञ्जर्याः मणिजटितनूपुरशब्दश्रवणसमकालमेव कामिनां मदनावेशो जायते। चरणपङ्कजयोः फूत्कारं प्रति विशालस्तनानां भारः कारणमस्ति। यथा कोऽपि भाराक्रान्तः पुरुषः स्वरक्षार्थमन्यमाह्वयति तथैव

ऊपर स्थित स्तनों के भार से दबे हुए (चपे हुए) उसके दोनों चरण मणिमयनूपुरों के शब्द के द्वारा मानो [करुण स्वर में रक्षार्थं] कामदेव को पुकार रहे हैं ॥ ३३ ॥[1]

लक्षण है—'स्वल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतो मुखम्। 'अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः' मेरी दृष्टि में यह कथन क्रमशः विदूषक और राजा के मध्य मानना उचित होता, विचक्षणा और राजा के कथन (२.१२-२२ के समान। विदूषक जो अच्छी कविता करने में निपुण नहीं है, वह कैसे इतनी अच्छी कविता कर सकता है।

१. 'चंपिअं' यह देशी शब्द है और इसका अर्थ है 'चांपा हुआ, दबाया हुआ'। 'पुक्कार' शब्द पुकारने के अर्थ में है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हिंदोलणलीलाललणलंपडं रहचक्कवक्कलं रमणं।
किलकिलइ व्व सहरिसं कंचीमणिकिंकिणिरवेण ।। ३४ ।।
दोलं (तारं)-दोलणहेलासरंतसरिअच्छलेण से हारो।
विक्किरइ (विक्खरइ) व्व कुसुमाउहणरवइणो कित्तिवल्लीओ ।।३५।।

हिन्दोलनलीलाललनलम्पटं रथचक्रवर्तुलं रमणम्।
किलकिलायतीव सहर्षं काञ्चीमणिकिङ्किणिरवेण ।। ३४ ।।
दोलान् (तारान्) दोलनहेलासरत्सरिक-च्छलेनास्या हारः।
विकार्यतेत्र (विक्षरतीव) कुसुमायुधनरपतेः कीर्तिवल्लीः ।।३५ ।।

अत्रापि । उत्प्रेक्षालंकारः । आर्यावृत्तम् ।। ३३ ।।

अन्वयः—हिंदोलणलीलाललणलंपडं रहचक्कवक्कलं रमणं कंचीमणिकिंकिणिरवेण सहरिसं किलकिलइ व्व ।। ३४ ।।

व्याख्या—हिंदोलनस्य=दोलायाः या लीला=विलासः तस्याः ललने=चलने लम्पटं=लुब्धं हिन्दोलनलीलालालनलम्पटं, चक्रवत् वर्तुलं=गोलाकारं, तस्याः=कर्पूरमञ्जर्याः, रमणं=जघनस्थलं काञ्ची=रशना तत्र या मणिकिङ्किण्यः=मणिजटितक्षुद्रघण्टिकाः तासां रवेण=शब्देन काञ्चीमणिकिंकणीरवेण, सहर्षं=सानन्दं किलकिलयतीव=किलकिलेति शब्दं करोति। हिन्दोलने कर्पूरमञ्जर्याः नितम्बोपरिस्थिताः काञ्चीकिङ्किण्यः किलकिलेति गुञ्जन्ति। यथा कोऽपि क्रीडालम्पटः क्रीडोपयुक्तं स्थानं लब्ध्वा रमते तथैव अत्रापि। उत्प्रेक्षालङ्कारः । आर्यावृत्तम् ।। ३४ ।।

अन्वयः—दोलांदोलणहेलासरंतसरिअच्छलेण से हारो कुसुमाउहणरवइणो कित्तिवल्लीओ विक्किरइ व्व ।। ३५ ।।

झूला (हिंडोला) की लीला के साथ लीला करने का लालची तथा रथ के चक्र के समान गोल नितम्ब, करधनी में लगी हुई मणिमय किंकिणियों (क्षुद्र घण्टिकायें) के शब्द द्वारा मानों हर्षपूर्वक किलकिला रहा है ।। ३४ ।।

झूला के आन्दोलन से विलासयुक्त एवं चञ्चल इस (कर्पूरमञ्जरी)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संमुहपवणपणोल्लिअवरिल्लदरदाविआइँ अंगाइं ।
हक्कारिऊण मअणं पासम्मि णिवेसअंति व्व ।। ३६ ।।

संमुखपवनप्रेरितोत्तरीयदरदर्शितान्यङ्गानि ।
आकार्य मदनं पार्श्वे निवेशयन्तीव ।। ३६ ।।

व्याख्या—अस्याः = कर्पूरमञ्जर्याः, हारः, दोलायाः = हिन्दोलनस्य आन्दोलनलीला=दोलान्दोलनलीला तया सरन्ती = प्रसर्पन्ती या सरित् = मुक्तामाला नदी वा (देशी शब्दोऽयम्) तस्याः छलेन=व्याजेन, कुसुमायुध एव नरपतिस्तस्य कुसुमायुधनरपतेः=कामदेवभूपतेः, कीर्तिवल्लीः=कीर्ति-परम्पराः, विकिरतीव = प्रसारयतीव विस्तारयतीव । कर्पूरमञ्जर्याः शुभ्रा मुक्तामाला कामदेवस्य कीर्ति प्रसारयतीव अर्थात् जनाः कामाभिभूताः भवन्तीति । उत्प्रेक्षालङ्कारः । आर्यावृत्तम् ।। ३५ ।।

अन्वयः—संमुहपवणपणोल्लिअवरिल्लदरदाविआइं अंगाइं मअणं हक्का-रिऊण पासम्मि णिवेसअंति व्व ।। ३६ ।।

व्याख्या—संमुहेन = सम्मुखादागतेन पवनेन=वायुना प्रणुन्नं = प्रेरितं सञ्चालितं यदुत्तरीयम् = उपरिवस्त्रं तस्मिन् सम्मुखपवनप्रणुन्नोत्तरीयवस्त्रे; दरदर्शितानि=ईषत् प्रकाशितानि अङ्गानि=अवयवाः स्तनप्रभृतीनि, मन्ये तदा मदनं=कामदेवम्, आकार्य=आहूय, पार्श्वे=निकटे, निवेशयन्ती=स्थापयन्तीव । यदा पवनेन सा ईषदुद्घाटिताङ्गी कृता तदा कामिनां कामोद्रेकः जात इत्यर्थः । उत्प्रेक्षालङ्कारः । आर्यावृत्तम् ।। ३६ ।।

का मुक्ताहार मानों कामदेव राजा की कीर्तिलता को सिञ्चित (विस्तारित) कर रहा है ।। ३५ ।।[1]

सामने से आते हुए हवा के झोंके से उड़ते हुए उत्तरीय वस्त्र से कुछ-कुछ दिखलाई देते हुए उसके अंग मानों कामदेव को बुलाकर पास में बैठा रहे हों ।। ३६ ।।

१. 'दोलंदोलण' की जगह 'तारंदोलण' पाठ भी मिलता है । 'हेला' के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ताडंकजुअं गंडेसु बहलघुसिणेसु घडणलीलाहिं ।
देइ व दोलंदोलणरेहाओ गणणकोड्डेण ।। ३७ ।।
णअणाइँ पसइसरिसाइँ झत्ति फुल्लाइँ कोउहल्लेण ।
अप्पेंति व कुवलअसिलिम्मुहे पंचबाणस्स ।। ३८ ।।

ताटङ्कयुगं गण्डयोर्बहलघुसृणयोर्घटनलीलाभिः ।
ददातीव दोलान्दोलनरेखा गणनकौतुकेन ।। ३७ ।।

नयने प्रसृतिसदृशे झटिति फुल्ले कौतूहलेन ।
अर्पयत इव कुवलयशिलीमुखे पञ्चबाणस्य ।। ३८ ।।

अन्वयः—तडंकजुअं गंडेसु बहलघुसिणेसु घडणलीलाहिं गणणकोड्डेण दोलंदोलणरेहाओ देइ व ।। ३७ ।।

व्याख्या—कर्पूरमञ्जर्याः ताटङ्कयोर्युगं ताटङ्कयुगं=कर्णाभूषणयुगलं, बहलं=प्रभूतं, घुसृणं=कुङ्कुमं ययोः तयोः बहलघुसृणयोः=सान्द्रकुङ्कुमरसलिप्तयोः अतिशयकोमलयोर्वा, गण्डयोः=कपोलयोः, घटनलीलाभिः=घर्षणविलासैः, गणनकौतुकेन=कति वारान् हिन्दोल्यते अनया इति गतिगणनाकुतूहलेन, दोलायाः= हिन्दोलनस्य, आन्दोलनस्य=गतागतस्य याः रेखाः= चिह्नविशेषा ताः ददातीव । ताटङ्कयुगलेन तस्याः कपोलद्वये लीलाविलासः चित्रितः । उत्प्रेक्षालङ्कारः । आर्यावृत्तम् ।। ३७ ।।

अन्वयः—पसइसरिसाइं कोउहल्लेण झत्ति फुल्लाइं णअणाइं पञ्चबाणस्स

[उसके] दोनों कर्णाभूषण (ताटङ्क युगल) कुङ्कुम लगे हुए कपोलों पर [झूलने के क्रम में] बारम्बार घर्षण करने से मानों झूले के झूलने को गिन लेने की उत्कण्ठा से रेखायें खींच रहे हों ।। ३७ ।।

स्थान पर 'लीला', विक्किरइ के स्थान पर 'विक्खरई' तथा 'वित्थारइ' पाठ भी मिलते हैं । 'सरिआ' शब्द का अर्थ 'सरिका' (मुक्तामाला) है । इस अर्थ में वह देशी शब्द होगा । अर्थ होगा—'सरकती हुई मुक्तामाला के छल से' ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दोलारअविच्छेओ कहं पि मा होहिइ त्ति पडइ व्व ।
पिट्ठिम्मि (पुट्ठीअ) वेणिदंडो मम्महचम्मट्ठिआअंतो ।।३९।।

दोलारयविच्छेदः कथमपि मा भवत्विति पततीव ।
पृष्ठे वेणिदण्डो मन्मथचर्मयष्टिकायमानः ।। ३९ ।।

कुवलअसिलिम्मुहे अप्पेंति व ।। ३८ ।।

व्याख्या—प्रसृतेः सदृशं प्रसृतिसदृशं ते प्रसृतिसदृशे=वितस्तिपरिमाणे अतिविशाले, कौतुहलेन = कौतुकेन, झटिति = सत्वरं, फुल्ले=विकसिते तस्याः नयने = नेत्रे एवं प्रतीयते यत् पञ्चवाणस्य=कामदेवस्य, कुवलयशिलीमुखे= नीलकमलवाणे अर्पयत इव=मुञ्चत इव । कर्पूरमञ्जर्याः विकसिते नीलोत्पल-सदृशे नयने दृष्ट्वा कामिनः कामवाणप्रहारात् कामाभिभूताः भवन्तीति । रूपकोत्प्रेक्षे । आर्यावृत्तम् ।। ३८ ।।

अन्वयः—दोलारअविच्छेओ कहं पि मा होहिइ त्ति मम्महचम्मट्ठिआअंतो वेणिदंडो पिट्ठिम्मि पडइ व्व ।। ३९ ।।

व्याख्या—दोलायाः रसः दोलारसः तस्य दोलारसस्य=हिन्दोलनरसस्य आनन्दस्य विच्छेदः=विरामः अवरोधः कथमपि न भवेदिति ज्ञापनार्थं मन्मथस्य= कामदेवस्य, चर्मयष्टिकायमानः = चर्मेण विनिर्मिता यष्टिरिवाचरन्, वेणी-दण्डः=केशकलापः, पृष्ठे=पृष्ठभागे, पततीव=प्रहारं करोतीव । कर्पूरमञ्जर्याः आनन्ददायकः दोलनव्यापारः सततं प्रसरेत् तदर्थं मन्ये वेणीदण्डः अस्याः पृष्ठे वारम्वारं पततीव । उत्प्रेक्षालङ्कारः । आर्यावृत्तम् ।। ३९ ।।

तज़हत्थी प्रमाण तथा कुतूहल के कारण शीघ्र प्रफुल्लित दोनों नेत्र ऐसे लग रहे हैं मानों कामदेव के नीलकमल रूपी बाण [कामीजनों पर] छोड़ दिए गये हैं ।। ३८ ।।

झूला झूलने का क्रम न टूटने पाए इसीलिए कामदेव की चर्मयष्टि (चमड़े का बना कोड़ा) के समान [उस कर्पूरमञ्जरी] का वेणीदण्ड पीठ पर पड रहा है ।। ३९ ।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इअ एआइ विलासुज्जलाइँ दोलापवंचचरिआइं ।
कस्स ण लिहइ व चित्ते णिउणो कंदप्पचित्तअरो ॥ ४० ॥

राजा—(सविषादम्) कधं अवइण्णा कप्पूरमंजरी ? रित्ता दोला, रित्तं अ मज्झ चित्तं, रित्ताइं दंसणुस्सुअजण-(मह)णअ णाइं ।

विदूषकः—ता विज्जुल्लेह व्व खणदिट्ठणट्ठा (विज्जुल्लेहाइदं खणदिट्ठणट्ठाए ताए) ।

इत्येतानि विलासोज्ज्वलानि दोलाप्रपञ्चचरितानि ।
कस्य न लिखतीव चित्ते निपुणः कंदर्पचित्रकरः ॥ ४० ॥

राजा—[सविषादम्] कथमवतीर्णा कर्पूरमञ्जरी ? रिक्ता दोला, रिक्तं च मम चित्तम्, रिक्तानि दर्शनोत्सुकानि जननयनानि ।

विदूषकः—तद्विद्युल्लेखेव क्षणदृष्टनष्टा (विद्युल्लेखायितं क्षणदृष्टनष्टया तया) ।

अन्वयः—णिउणो कंदप्पचित्तअरो इअ एआइ विलासुज्जलाइं दोलापवंचचरिआइं कस्स चित्ते ण लिहइ व ॥ ४० ॥

व्याख्या—निपुणः=कुशलः, कन्दर्प एव चित्रकरः=आलेख्यकरः, इत्येतानि पूर्वोक्तानि, विलासेन उज्ज्वलानि=रमणीयानि, दोलायाः प्रपञ्चचरितानि=दोलान्दोलनस्य विलासान् कस्य कामिजनस्य चित्ते=हृदयपटले, लिखति=न चित्रयति, अपि तु सर्वेषामिति । रूपकालङ्कारः । आर्यावृत्तम् ॥ ४० ॥

कामदेव रूपी चतुर चित्रकार इसके इस विलास से उज्ज्वल झूला झूलने की क्रीड़ाओं को किसके चित्त पर चित्रित नहीं कर रहा है ? अर्थात् प्रत्येक पुरुष के हृदय पटल पर वह आसीन है ॥ ४० ।

राजा—[दुःख के साथ] कर्पूरमञ्जरी [झूले से] उतर गई। झूला खाली हो गया । मेरा चित्त भी रिक्त (निष्क्रिय या शून्य) हो गया । देखने के लिए उत्सुक मनुष्यों के (अथवा मेरे) नेत्र भी रिक्त (शून्य) हो गये ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा—मा एवं भण। हरिअंदपुरिव्व दिट्ठा पणट्ठा अ। (स्मृतिनाटितकेन)

राजा—मैवं भण! हरिश्चन्द्रपुरीव दृष्टा प्रनष्टा च। (स्मृतिनाटितकेन)

विदूषक—वह बिजली की चमक की तरह दिखलाई देकर अन्तर्हित हो गई (क्षणभर के लिए दिखलाई दी इसने विद्युत की रेखा के समान आचरण किया)।

राजा—ऐसा मत कहो। हरिश्चन्द्रपुरी की तरह[1] दिखी और तिरोहित हो गई। [स्मृति का अभिनय करते हुए]

१. हरिश्चन्द्रपुरीव—राजा हरिश्चन्द्र सूर्य वंश के २८ वें राजा थे। ये त्रिशंकु के पुत्र थे। ये अपने अनेक गुणों के लिए प्रसिद्ध थे और इनके नगर में अनेक उत्सव होते रहते थे। ऐतरेय ब्राह्मण, महाभारत आदि में इसकी चर्चा है। मार्कण्डेय पुराण में एक कथा आती है कि मुनि विश्वामित्र ने राजा के पुरोहित वशिष्ठ से जब इनकी तारीफ सुनी तो उन्होंने इनकी परीक्षा ली जिसमें राजा हरिश्चन्द्र को अपनी पत्नी, पुत्र, सम्पत्ति सभी से हाथ धोना पड़ा। भगवान् विष्णु की कृपा से ये अपनी प्रजा के साथ स्वर्ग में रहने लगे। वहाँ भी नारद ने इनके आत्मश्लाघी गुणों (दर्प) को उभार दिया जिससे इन्हें स्वर्ग से वापिस आना पड़ा। जब ये नीचे आ रहे थे तो इन्हें पश्चात्ताप हुआ जिससे इन्हें क्षमा कर दिया गया और इनके लिए एक मायानगरी (Aerial city) में रहने की अनुमति दी गई। लोगों का विश्वास है कि कभी-कभी हवा में वह दिखलाई पड़ती है। राजशेखर ने अपनी विद्धशालभञ्जिका में भी ऐसा ही कहा है 'दृष्टा हरिश्चन्द्रपुरीव नष्टा च'। अमरकोष में आया है—'रात्रौ दृश्यं दृशोस्तेजो हरिश्चन्द्रपुरी मता।'

यहाँ विदूषक के इस वक्तव्य पर 'विज्जुल्लेह व्व खणदिट्ठणट्ठा'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मंजिट्ठी ओट्ठमुद्दा णवघडणसुवण्णुज्जला अंगलट्ठी
दिट्ठी बालेंदुलेहाधवलिमजइणी कुंतला कज्जलाहा ।
इत्थं वण्णाण रेहा विहरइ हरिणीचंचलच्छीअ एसो
कंदप्पो जीअ (दीह-) दप्पी जुअजणजअणे पुण्णलक्खो विभाइ ॥४१

माञ्जिष्ठी ओष्ठमुद्रा नवघटनसुवर्णोज्ज्वलाङ्गयष्टि-
र्दृष्टिर्बालेन्दुरेखाधवलिमजयिनी कुन्तलाः कज्जलाभाः ।
इत्थं वर्णानां रेखा विहरति हरिणीचञ्चलाक्ष्या एषः
कंदर्पो यया (दीर्घ-) दर्पी युवजनजये पूर्णलक्ष्यो विभाति ॥४५॥

अन्वयः—हरिणीचंचलच्छीअ ओट्ठमुद्दा मंजिट्ठी, अंगलट्ठी णवघडण-सुवण्णुज्जला, दिट्ठी बालेंदुलेहाधवलिमजअणी, कुन्तला कज्जलाहा, इत्थं वण्णाण रेहा विहरइ। जीअ एसो दप्पी कंदप्पो जुअजणजअणे पुण्णलक्खो विभाइ ।। ४१ ।।

हरिण की आँखों के समान चञ्चल नेत्रवाली [इस कर्पूरमञ्जरी] के ओष्ठ मञ्जिष्ठ के समान (लाल) हैं, कृश शरीर नवीन सुवर्ण की तरह कान्तिमान् (पीला) है, दृष्टि बालचन्द्र (द्वितीया के चन्द्रमा) की कान्ति को जीतनेवाली (शुभ्र) है और केश काजल के समान (काले) हैं—इस तरह रङ्गों की आभा विहार करती है जिससे यह घमण्डी कामदेव इसके शरीर में मानों युवकों को जीतने के लिए पूर्णलक्ष्य वाला (सफल मनोरथ वाला) होकर

राजा का यह वक्तव्य 'मा एवं भण हरिअंदपुरि व्व दिट्ठा पणट्ठा अ' स्पष्ट नहीं है कि क्यों विदूषक के वक्तव्य का खण्डन किया गया है।' ये संभव है कि राजा का दृष्टिकोण मायापुरी से न होकर राजा हरिश्चन्द्र की श्रीसम्पन्न नगरी से हो जो विश्वामित्र द्वारा नष्ट कर दी गई थी। अतः राजा ने 'खणदिट्ठणट्ठा न कहकर 'दिट्ठा पणट्ठा अ' इस विग्रहवाक्य-द्वारा कहा है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदूषकः—एदं तं मरगअपुंजं। इह उवविसिअ पिअवअस्सो पडिवालेदु तं। संज्झा वि संणिहिदा वट्टदि। (उभौ तथा कुरुतः)

विदूषकः—एतत्तन्मरकतपुञ्जम्। इहोपविश्य प्रियवस्यः प्रतिपालयतु ताम्। संध्यापि संनिहिता वर्तते। (उभौ तथा कुरुतः)

व्याख्या—हरिण्याः अक्षिणी इव चञ्चले अक्षिणी यस्याः तस्याः हरिणीचञ्चलाक्ष्याः=कर्पूरमञ्जर्याः ओष्ठयोः मुद्रा ओष्ठमुद्रा=ओष्ठभङ्गीः, मंजिष्ठे भवा माञ्जिष्ठी=मञ्जिशष्ठरागरक्ता, अङ्गयष्टिः=शरीरलता, नवं=नूतनं घटनं=निर्माणं यस्य तत् नवघटनं, नवघटनं च तत् सुवर्णं नवघटनसुवर्णम्=अभिनवतप्तसुवर्णं तद्वद् उज्ज्वला=निर्मला नवघटनसुवर्णोज्ज्वला, दृष्टिः=नेत्रे नेत्रव्यापारो वा, बालायाः=नूतनायाः, इन्दुरेखायाः=चन्द्रकलायाः धवलिमानं=शुभ्रतां जयतीति=अपहारिणीति बालेन्दुरेखाधवलिमजयिनी; कुन्तला=केशाः, कज्जल इव आभा येषां ते कज्जलाभः=कज्जलसदृशाः अतिशयनीलाः, इत्थं वर्णानां रेखा=कान्तिः, विहरति=शोभते। अतः एषः दर्पी (पाठान्तरे—दीर्घो दर्पो यस्य सः दीर्घदर्पः)=अहंकारयुक्तः, कन्दर्पः=कामदेवः, युवजनजयने=युवकानां मनांसि जेतुं, पूर्णलक्ष्यः=सफलमोरथ इव भाति=शोभते। उपमोत्प्रेक्षे। स्रग्धरा वृत्तम्॥ ४१॥

सुशोभित हो रहा है॥ ४१॥[1]

विदूषक—यह वही मरकतकुञ्ज है। यहाँ बैठकर प्रिय मित्र उसकी प्रतीक्षा करें। सन्ध्याकाल भी सन्निकट है। [दोनों वैसा करते हैं]

१. इस श्लोक में यदि 'हरिणीचंचलच्छी अ एसा' (हरिणीचञ्चलाक्षी चैषा) ऐसा पाठ माना जायेगा तो अर्थ होगा 'हरिण के समान चञ्चल नेत्र वाली यह (कर्पूरमञ्जरी)', परन्तु यह पाठ प्रामाणिक मानने पर भग्नप्रक्रम दोष उपस्थित होता है तथा यह वाक्य अलग सा प्रतीत होता है। '…लच्छीअ एसा' पाठ मानने पर 'एसा' का अन्वय नहीं बनता है। अतः तंजोर की पाण्डुलिपि के अनुसार 'एसो' पाठ मानकर मैंने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा—अइसिसिरं पि हिमाणि (०सिसिरा वि जामिणी) संतावदाइणिं गिम्हमज्झण्णवेलं अणुहवामि (अणुहरदि)।

विदूषकः—ता लच्छीसहअरो खणं चिट्ठदु देवो, जाव अहं सिसिरोवआरसामग्गिं संपादेमि। (इति नाटयेन निष्कम्य पुरोऽवलोक्य च) किं पुण एसा विअक्खणा इदो णिअडिआ आअच्छदि।

राजा—अतिशिशिरामपि हिमानीं (अतिशिरापि यामिनी) संतापदायिनीं ग्रीष्म-मध्याह्नवेलां अनुभवामि (अनुहरति)।

विदूषकः—तल्लक्ष्मीसहचरः क्षणं तिष्ठतु देवः, यावदहं शिशिरोपचार-सामग्रीं संपादयामि। [इति नाटयेन निष्क्रम्य पुरोऽवलोक्य] किं पुनरेषा विचक्षणा इतो निकटिता आगच्छति।

राजा—अत्यन्त शीतल भी इस संध्या में संतापदायक गर्मी के मध्याह्न-काल का अनुभव कर रहा हूँ।

विदूषक—देव ! लक्ष्मी (राजलक्ष्मी) के साथ आप यहाँ एक क्षण के

इसका अन्वय 'कंदर्प' के साथ किया है जो सुन्दर प्रतीत होता है। इस श्लोक में 'दीहदप्पो' (दीर्घदर्पः) तथा 'जाअदप्पो' (जातदर्पः) भी पाठ मिलता है। 'पुण्णलक्खो व्व भादि' (पूर्णलक्ष्य इव भाति) ऐसा पाठ मानने पर उत्प्रेक्षा वाच्य हो जायेगी।

'मंजिट्ठी' से ओष्ठ में रक्ततातिशयत्व, 'णवघडण' से शरीर की अतिशय चाकचक्यता, 'लट्ठी' पद से शरीर में कृशता' एवं 'इंदुलेहा' से अकलङ्कित्व ध्वनित हो रहा है। इस श्लोक में कर्पूरमञ्जरी के अनिन्द्य-सौन्दर्य का उद्घाटन किया गया है। उसमें लाल, पीला, सफेद और काला इन चार रंगों का क्रमशः ओष्ठ, शरीर, दृष्टि तथा बालों में सुन्दर सन्निवेष बतलाया गया है। 'दीहदप्पो' से ध्वनित होता है कि लक्ष्यभेदन करने में थोड़ी भी परेशानी नहीं हो रही है। अतः उसका गर्व अक्षुण्ण है। रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा और अनुप्रास ये अलङ्कार हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा—संणिहिदो संकेदकालो कधिदो सहीहिं (मंतीहि) । (स्मृत्वा मदनाकूतमभिनीय)

किसलअकरचरणा वि हु कुवलअणअणा मिअंकवअणा वि ।
अहह नवचंपअंगी तह वि हु तावेइ अच्चरिअं ॥ ४२ ॥

राजा—संनिहितः संकेतकालः कथितः सखीभिः (मंत्रिभिः) । (स्मृत्वा, मदनाकूतमभिनीय)

किसलयकरचरणापि खलु कुवलयनयना मृगाङ्कवदनापि ।
अहह नवचम्पकाङ्गी तथापि खलु तापयत्याश्चर्यम् ॥ ४२ ॥

अन्वयः—किसलअकरचरणा वि कुवलअणअणा मिअंकवअणा वि णवचंपअंगी तह वि [इयं कर्पूरमञ्जरी] हु तावेइ अहह अच्चरिअं ॥ ४२ ॥

व्याख्या—किसलयौ = नवपल्लवौ तद्वत् करौ चरणौ च यस्याः सा किसलयकरचरणा, कुवलये = नीलकमले इव नयने=नेत्रे यस्याः सा कुवलयनयना, मृगाङ्क इव वदनं=मुखं यस्या सा मृगाङ्कवदना = चन्द्रमुखी, नवानि= नूतनानि चम्पकानि=चम्पकपुष्पाणि इव अङ्गानि शरीरावयवानि यस्याः सा नवचम्पकाङ्गी, तथापि – एवम्भूतापि सा मां तापयति=संतापं जनयतीति । अहह=खेदे ! इत्याश्चर्यम् । विपरीतकार्यत्वात् विरोधालङ्कारः । कर्पूरमञ्जर्याः अङ्गानि संतापनिवर्तकानि प्रतिपादितानि तथापि सन्तापस्य निवृत्तिर्नास्ति (अपितु संतापवृद्धिरेव), तस्मात् विशेषोक्तिरलङ्कारः; किञ्च संतापहेतुविनैव सन्तापोत्पत्तिरिति विभावनालङ्कारः, तयोः संदेहसंकरश्च । अर्यावृत्तम् ॥ ४२ ॥

लिए प्रतीक्षा करें जब तक मैं शिशिरोपचार की सामग्री तैयार करता हूँ । [अभिनयपूर्वक बाहर जाकर और सामने देखकर] क्या यह विचक्षणा मेरे निकट आ रही है ?

राजा—संकेतकाल सन्निकट है । मित्रों ने कहा भी है [स्मरण करके मदनावेश के साथ]—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदूषकः—(सम्यगवलोक्य) अहो विअक्खणा सिसिरोवआरसामग्गीसहिदा आअदा ।

(ततः प्रविशति शिशिरोपचारसामग्रीसहिता विचक्षणा)

विचक्षणा—(परिक्रम्य) अहो, पिअसहीए महंतो खु विरहदाहज्जरो ।

विदूषकः—(उपसृत्य) भोदि ! किं एदं ?

विचक्षणा—सिसिरोवआरसामग्गी ।

विदूषकः—[सम्यगवलोक्य] अहो विचक्षणा शिशिरोपचारसामग्रीसहितागता । [ततः प्रविशति शिशिरोचारसामग्रीसहिता विचक्षणा]

विचक्षणा—(परिक्रम्य) अहो, प्रियसख्या महान्खलु विरहदाहज्वरः ।

विदूषकः—(उपसृत्य) भवति ! किमेतत् ?

विचक्षणा—शिशिरोपचारसामग्री ।

किसलय (नवीन पल्लव) के समान हाथ एवं चरणों वाली, नीलकमल के समान नेत्रोंवाली, चन्द्रमा के समान मुखवाली और नवीन चंपा के समान अङ्गोंवाली होकर भी सन्ताप कर रही है, यह बड़ा आश्चर्य है ।। ४२ ।।[१]

विदूषक—[अच्छी तरह देखकर] अरे ! विचक्षणा शिशिरोपचार की सामग्री के साथ आ रही है ।

[इसके बाद शिशिरोपचार की सामग्री के साथ विचक्षणा प्रवेश करती है]

विचक्षणा—(घूमकर) अहो ! प्रिय सखी को बहुत विरह-संताप है ।

विदूषक—[पास में जाकर] बहिन जी ! यह क्या है ?

---

१. यहाँ विरोध अलङ्कार है । संताप के कारणों का अभाव होने पर भी संताप हो रहा है, अतः 'विभावना' अलंकार भी संभव है 'विभावना विनापि स्यात् कारणं कार्यं जन्म चेत्) । शीतलता के कारणों के रहने पर भी शीतलता न होने से विशेषोक्ति अलङ्कार भी संभव है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदूषकः—कस्स किदे ?
विचक्षणा—पिअसहीए किदे ।
विदूषकः—ता मह वि अद्धं देहि ।
विचक्षणा—किं णिमित्तं ?
विदूषकः—महाराअस्स किदे ।
विचक्षणा—किं पुण कारणं तस्स ?
विदूषकः—कप्पूरमंजरीए वि किं ?
विचक्षणा - किं ण जाणासि महाराअस्स दंसणं ?

विदूषकः—कस्य कृते ?
विचक्षणा—प्रियसख्याः कृते ।
विदूषकः—तन्ममाप्यर्धं देहि ।
विचक्षणा—किं निमित्तम् ?
विदूषकः—महाराजस्य कृते ।
विचक्षणा—किं पुनः कारणं तस्य ?
विदूषकः—कर्पूरमञ्जर्या अपि किम् ?
विचक्षणा—किं न जानासि महाराजस्य दर्शनम् ?

विचक्षणा—शिशिरोपचार की सामग्री ।
विदूषक—किसके लिए ?
विचक्षणा—प्रिय सखी के लिए।
विदूषक—तो मुझे भी आधा दे दो ।
विचक्षणा—किसलिए ?
विदूषक—महाराज के लिए ।
विचक्षणा—उन्हें क्या हो गया है ?
विदूषक—कर्पूरमञ्जरी को भी क्या हो गया है ?
विचक्षणा—क्या नहीं जानते हो उसने महाराज का दर्शन किया है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदूषकः—तुवं पि किं ण जाणासि महाराअस्स कप्पूरमंजरीए दंसणं ? (इत्युभौ हसतः)

विचक्षणा—ता कहिं महाराओ ?

विदूषकः—तुह वअणेण मरगअपुंजे चिट्ठदि।

विचक्षणा—ता महाराएण सह मरगअपुंजदुआरे चिट्ठ खणं, जेण उहअदंसणे जादे सिसिरोवआरसामग्गीए जलंजली दिज्जइ।

विदूषकः—(तामुपसृत्य) तहिं गच्छ जदो णागच्छसि। (इति क्षिपति। पुनस्तां प्रति) ता कीस दुआरदेसे भविदव्वं ?

विदूषकः—त्वमपि किं न जानासि महाराजस्य कर्पूरमञ्जर्या दर्शनम् ?

[इत्युभौ हसतः]

विचक्षणा—तत्कुत्र महाराजः ?

विदूषकः—तव वचनेन मरकतपुञ्जे तिष्ठति।

विचक्षणा—तन्महाराजेन सह मरकतपुञ्जद्वारे तिष्ठ क्षणम्, येनोभयदर्शने जाते शिशिरोपचारसामग्र्या जलाञ्जलिर्दीयते।

विदूषकः—[तामुपसृत्य] तत्र गच्छ यतो नागच्छसि। [इति क्षिपति। पुनस्तां प्रति] तत्किमर्थं द्वारदेशे भवितव्यम् ?

विदूषक—क्या तुम भी नहीं जानती हो ?ाजहरा ने कर्पूरमञ्जरीम को देख लिया है। [दोनों हँसते हैं]

विचक्षणा—तो महाराब कहाँ हैं ?

विदूषक—तुम्हारे कथनानुसार मरकतकुञ्ज में हैं।

विचक्षणा—तो [आप भी] महाराज के साथ मरकतकुञ्ज के द्वार पर क्षणभर रुको जिससे दोनों के परस्पर दर्शन हो जाने पर शिशिरोपचार की सामग्री को जलाञ्जलि दे दी जाए।

विदूषक—(विचक्षणा के पास जाकर तथा शिशिरोपचार की सामग्री को लेकर) वहाँ जाओ जहाँ से फिर न लौटो। [शिशिरोपचार की सामग्री को फेंक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विचक्खणा — देवीए आदेसेण कप्पूरमंजरी समाअच्छदि ।
विदूषकः—किं तीए आदेसो ?
विचक्खणा —तहिं देवीए बालतरुणो तिण्णि आरोविदा ।
विदूषकः—के के ?
विचक्खणा—कुरवअ-तिलअ-असोआ ।
विदूषकः—ता किं तेहिं ?
विचक्खणा—भणिदा सा देवीए । जधा—
कुरवअतिलअअसोआ आलिंगणदंसणग्गचलणहआ ।

विचक्षणा—देव्या आदेशेन कर्पूरमञ्जरी समागच्छति ।
विदूषकः—किं तस्या आदेशः ?
विचक्षणा—तत्र देव्या बालतरवस्त्रय आरोपिताः ।
विदूषकः—के के ?
विचक्षणा—कुरबकतिलकाशोकाः ।
विदूषकः—तत्किं तैः ?
विचक्षणा—भणिता सा देव्या । यथा—
कुरवकतिलकाशोका आलिङ्गनदर्शनाग्रचरणहताः ।

देता है], पुनः [विचक्षणा से] तो [मरकतकुञ्ज] के द्वार पर क्यों ठहरना है ?

विचक्षणा—देवी के आदेश से कर्पूरमञ्जरी आयेगी ।
विदूषक—उसका क्या आदेश है ?
विचक्षणा—वहाँ देवी ने तीन छोटे-छोटे पौधे रोपे हैं ।
विदूषक—कौन-कौन ?
विचक्षणा—कुरवक, तिलक और अशोक ।
विदूषक—तो इससे क्या होगा ?
विचक्षणा—महारानी ने कर्पूरमञ्जरी से कहा है । जैसे—
कुरवक, तिलक और अशोक [क्रमशः] कामिनियों के आलिङ्गन,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विअसंति कामिणीणं ता ताणं देहि दोहलअं ॥ ४३ ॥

विकसन्ति कामिनीनां तत्तेषां देहि दोहदकम् ॥ ४३ ॥

अन्वयः—कुरवअतिलअअसोआ कामिणीणं आलिंगणदंसणग्गचलणहआ विअसंति, ता ताणं दोहलअं देहि ॥ ४३ ॥

व्याख्या—कुरबकस्तिलकोऽशोकश्च कुरबकतिलकाशोकाः=एतन्नामानः वृक्षाः, कामिनीनां=युवतीनाम् आलिङ्गनेन दर्शनेन अग्रचरणेन च हताः=यथाक्रमं स्पृष्टाः अवलोकिताः ताडिताः आलिङ्गनदर्शनाग्रचरणहताः सन्तः विकसन्ति=उत्फुल्ला भवन्ति, तस्मात् तेषां वृक्षाणां दोहदकं=गर्भाभिलाषं, देहि=पूर्णं कुरु । कुरबकादयः वृक्षाः आलिङ्गनादिक्रियाभिः विकसन्तीति कविसमयप्रसिद्धिः । छेकानुप्रासः । आर्यावृत्तम् ॥ ४३ ॥

दर्शन तथा पादप्रहार से विकसित होते हैं, अतः उनका दोहद पूर्ण करो[1] ॥४३।

१. कविसम्प्रदाय में यह प्रसिद्धि है कि कुवरक आदि वृक्ष कामिनियों के आलिङ्गनादि से विकसित होते हैं। कामिनियों द्वारा किए गये ऐसे अलिङ्गनादि को दोहद कहा जाता है। दोहद का अर्थ है—गर्भवती की अभिलाषा अर्थात् कामिनियों के द्वारा आलिङ्गनादि होने से उन-उन वृक्षों की गर्भाभिलाषा पूर्ण होती है और वे फूल-समृद्धि का प्रसव करते हैं। भिन्न-भिन्न वृक्षों के दोहद के बारे में कहा गया है—

"स्त्रीणां स्पर्शात् प्रियङ्गुर्विकसति बकुलः सीधुगण्डूषसेकात् ।
पादाघातादशोकस्तिलककुरवकौ वीक्षणालिङ्गनाभ्याम् ॥
मन्दारो नर्मवाक्यात्पटुमृदुहसनाच्चम्पको वक्त्रवाताच् ।
चूतो गीतान्नमेरुर्विकसति च पुरो नर्तनात् कर्णिकारः ॥

स्त्रियों के स्पर्श से प्रियङ्गु; मदिरा के कुल्ले के सेचन से वकुल (मौलसरी), पादप्रहार से अशोक, देखने से तिलक, आलिङ्गन से कुरवक, नर्मवाक्य से मन्दार, मृदु-हास्य से चम्पक, मुखवायु से आम्र, गान से नमेरु तथा नृत्य करने से कर्णिकार वृक्ष विकसित होते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एण्हि तं संपादइस्सदि ।

विदूषकः—ता मरगअपुंजादो पिअवअस्सं आणिअ तमालविडवंतरिअं ठाविअ एदं पच्चक्खं करिस्सं (कारइस्सं)। (तथा नाटयित्वा राजानं प्रति) भो भो, उट्ठिअ पेक्ख णिअहिअअसमुद्दचंदलेहं।

(राजा तथा करोति)

(ततः प्रविशति विशेषभूषिताङ्गी कर्पूरमञ्जरी)

कर्पूरमञ्जरी—कहिं पुण विअक्खणा ?

विचक्षणा—(तामुपसृत्य) सहि ! कीरदु देवीए समादिट्ठं ।

इदानीं तत्संपादयिष्यति ।

विदूषकः—तन्मरकतपुञ्जात्प्रियवयस्यमानीय तमालविटपान्तरितं स्थापयित्वा एतत्प्रत्यक्षं करिष्यामि (कारयिष्यामि)। (तथा नाटयित्वा राजानं प्रति)। भोः भोः, उत्थाय प्रेक्षस्व निजहृदयसमुद्रचन्द्रलेखाम् ।

[राजा तथा करोति । ततः प्रविशति विशेषभूषिताङ्गी कर्पूरमञ्जरी]

कर्पूरमञ्जरी—कुत्र पुनर्विचक्षणा ?

विचक्षणा—(तामुपसृत्य) सखि ! क्रियतां देव्या समादिष्टम् ।

इस समय वह उसे (दोहद को) पूर्ण करेगी ।

विदूषक—तो प्रिय मित्र को मरकतकुञ्ज से लाकर तमाल वृक्ष की आड़ में बैठाकर यह दृश्य प्रत्यक्ष दिखलाऊँगा। [वैसा अभिनय करके राजा के प्रति], अरे ! अरे ! उठकर अपने हृदयरूपी समुद्र की चन्द्रलेखा को देखो।[1]

[राजा वैसा ही करता है। इसके बाद विशेषरूप से सुसज्जित अङ्गों वाली कर्पूरमञ्जरी का प्रवेश होता है]

---

१. विदूषक का तात्पर्य है कि जैसे चन्द्रदर्शन से समुद्र में विकास होता है वैसे ही तुम्हारे हृदयरूपी समुद्र में कर्पूरमञ्जरी के मुखरूपी चन्द्रदर्शन से प्रसन्नता हो।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा—वअस्स ! किं पुण तं ?

विदूषकः—तमालविडवंतरिदो भविअ जाण।

(राजा तथा करोति)

विचक्षणा—एस कुरवअतरू। (कर्पूरमञ्जरी तमालिङ्गति)

राजा—

णवकुरवअरुक्खो कुंभथोरत्थणीए
रहसविरइएणं णिब्भरालिंगणेणं।
तह कुसुमसमिद्धिं लंभिओ सुंदरीए
जह भसलकुलाणं एत्थ (तत्थ) जत्ता समत्ता (पउत्ता) ॥४४॥

राजा—वयस्य ! किं पुनस्तत् ?

विदूषकः—तमालविटपान्तरितो भूत्वा जानीहि।

[राजा तथा करोति]

विचक्षणा—एष कुरवकतरुः। [कर्पूरमञ्जरी तमालिङ्गति]

राजा—

नवकुरवकवृक्षः कुम्भस्थूलस्तन्या
रभसविरचितेन निर्भरालिङ्गनेन।
तथा कुसुमसमृद्धिं लम्भितः सुन्दर्या
यथा भ्रमरकुलानामत्र (तत्र) यात्रा समाप्ता (प्रवृत्ता) ॥४४॥

कर्पूरमञ्जरी—विचक्षणा कहाँ है !

विचक्षणा—[उसके पास जाकर] सखी, देवी का आदेश पूरा करो।

राजा—मित्र ! वह (आदेश) कैसा है ?

विदूषक—तमाल वृक्ष में छिपकर देखें।

[राजा वैसा करता है]

विचक्षणा—यह कुरवक का वृक्ष है।

[कर्पूरमञ्जरी उसका आलिङ्गन करती है]

राजा—कुम्भ के सदृश स्थूल स्तनों वाली सुन्दरी के द्वारा वेगपूर्वक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदूषकः—भो, पेक्ख पेक्ख महेंदजालं। जेण–

विदूषकः—भोः, प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व महेन्द्रजालम्। येन—

अन्वयः—कुंभथोरत्थणीए सुंदरीए रहसविरइएण णिब्भरालिंगणेणं णवकुरवअरुक्खो तह कुसुमसमिद्धि लंभिओ जह भमलकुलाणं जत्ता एत्थ समत्ता ॥ ४४ ॥

व्याख्या—कुम्भौ=घटौ इव स्थूलौ=विशालौ स्तनौ=पयोधरौ यस्यास्तया कुम्भस्थूलस्तन्या, सुन्दर्या=कर्पूरमञ्जर्या, रभसेन=सहसा विरचितेन=कृतेन रभसविरचितेन, निर्भरालिङ्गनेन=प्रगाढालिङ्गनेन नवकुरवकवृक्षः= बालकुरवकः 'सदाबहार-कटसरैया' इति हिन्दीभाषायां विख्यातः, तथा कुसुमानां=पुष्पाणां, समृद्धि - सम्पदं लम्भितः (लम्भ + इ + क्त)=प्रापितः। यथा=येन प्रकारेण भ्रमरकुलानां=षट्पदानां, तत्र = कुरवकवृक्षे यात्रा = गतिः समाप्ता=संस्थिता अवरुद्धा, अर्थात् तत्रैव सर्वदा तिष्ठन्तीति भावः। प्रवृत्ता इति पाठे तु षट्पदानां तत्रैव आगमनं प्रसक्तमिति। अतिशयोक्तिरलङ्कारः। मालिनीवृत्तम् ॥ ४४ ॥

किये गए गाढ़ आलिङ्गन से कुरबक के वृक्ष ने इतनी फूलों की समृद्धि को प्राप्त कर लिया है जिससे कि भ्रमरसमुदाय की यात्रा यहाँ समाप्त हो गई है ॥ ४४ ॥[१]

१. 'एत्थजत्ता समत्ता' अथवा 'तत्थ जत्ता पउत्ता' ये दोनों पाठ उचित हैं। प्रथम पाठ के अनुसार कहने का तात्पर्य है कि नवीन कुरबक वृक्ष फूलों से इतना लद गया है कि उसकी व्यापक सुगन्धि से आकृष्ट होकर सभी भ्रमर-समुदायों की यात्रा यहाँ समाप्त हो गई है अर्थात् सभी भ्रमर यहाँ आकर रुक गये हैं। द्वितीय पाठ के अनुसार भौरों ने वहाँ आना शुरु कर दिया है। अर्थात् वृक्षान्तर से भौरों का आगमन समाप्त नहीं हुआ है। इससे फूलों का सौरभातिशय ध्वनित होता है। यहाँ उपमा, रूपक तथा छेकानुप्रास अलङ्कारों का सङ्कर है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वालो वि कुरवअतरू तरुणीए गाढमुवगूढो ।
सहस त्ति कुसुमणिअरं मअणसरे विअ समुग्गिरइ ॥४५ ॥

राजा—ईदिसो ज्जेव दोहलस्स पहावो ।

विचक्षणा—अअं तिलअद्दुमो ।

(कर्पूरमञ्जरी चिरं तिर्यगवलोकयति)

राजा—

बालोऽपि कुरवकतरुस्तरुण्या गाढमुपगूढः ।
सहसेति कुसुमनिकरं मदनशरानिव समुद्गिरति ॥ ४५ ॥

राजा—ईदृश एव दोहदस्य प्रभावः ।

विचक्षणा—अयं तिलकद्रुमः । (कर्पूरमञ्जरी चिरं तिर्यगवलोकयति)

राजा—

अन्वयः—(एषः) बालो वि कुरवअतरू तरुणीए गाढमुवगूढो मअणसरे विअ सहस त्ति कुसुमणिअरं समुग्गिरइ ॥ ४५ ॥

व्याख्या—बालोऽपि = शिशुरपि, कुरवकतरुः = कुरवकवृक्षः, तरुण्या = युवत्या, गाढमुपगूढः=निर्भरालिङ्गितः सन्, सहसा = झटिति, मदनस्य = कामदेवस्य, शरानिव, पुष्पाणां=कुसुमानां, निकरं = समुदायं, समुद्गिरति =उद्वमति । एतेन कामाविर्भावो ध्वन्यते । उपमालङ्कारः । उपगीति-वृत्तम् ॥ ४५ ॥

विदूषक—अरे ! देखो ! देखो ! जादू (महेन्द्रजाल), जिससे कि—

[यह] छोटा सा कुरवक का वृक्ष [इस] तरुणी के प्रगाढ़ आलिङ्गन को पाकर अचानक कामदेव के बाणों के समान फूलों के गुच्छों को प्रकट कर रहा है ॥ ४५ ॥

राजा—दोहद का ऐसा ही प्रभाव होता है ।

विचक्षणा—यह तिलक वृक्ष है ।

[कर्पूरमञ्जरी देर तक तिरछी निगाह से देखती है]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तिक्खाणं तरलाणँ कज्जलकलासंवग्गिदाणं पि से
पासे पंचसरं सिलीमुहधरं णिच्चं कुणंताणँ अ ।
णेत्ताणं तिलअद्दुमे णिवडिदा धाडी मअच्छीअ जं
तं सो मंजरिपुंजदंतुरसिरो रोमंचिओ व्व ट्ठिओ ।।४६।।

तीक्ष्णयोस्तरलयोः कज्जलकलासंवल्गितयोरप्यस्याः
पार्श्वे पञ्चशरं शिलीमुखधरं नित्यं कुर्वतोश्च ।
नेत्रयोस्तिलकद्रुमे निपतिता धाटी मृगाक्ष्या यत्
तत् स मञ्जरीपुञ्जदन्तुरशिरा रोमाञ्चित इव स्थितः ।। ४६ ।।

अन्वयः—तिक्खाणं तरलाणं पि कज्जलकला संवग्गिदाणं णिच्चं सिली-मुहधरं पंचसरं पासे कुणंताणं अ से मअच्छीअ णेत्ताणं धाडी जं तिलअद्दुमे णिवडिदा तं मंजरिपुंजदंतुरसिरो सो रोमंचिओ व्व ट्ठिओ ।। ४६ ।।

व्याख्या—तीक्ष्णयोः=तिग्मयोः, तरलयोः=चपलयोरपि, कज्जलकलया= अञ्जनरेखया, संवल्गितयोः = अलङ्कृतयोः, नित्यं=सर्वदा, शिलीमुखान्= बाणान् धरतीति तं शिलीमुखधरं=कार्मुकधरं, पञ्चशराः सन्ति यस्य तं पञ्चशरं=कामदेवं, पार्श्वे=निकटे, कुर्वतोः कामदेवशरसाम्यं दधतोः अस्याः कर्पूरमञ्जर्याः मृगस्य अक्षिणी इव अक्षिणी यस्याः सा मृगाक्षी तस्याः मृगाक्ष्याः नेत्रयोः=नयनयोः, धाटी=दर्शनव्यापारविशेषः कटाक्षो वा, यत्= येन कारणेन यदा वा तिलकद्रुमे=तिलकवृक्षे, निपतिता, तत्=तेन कारणेन तदा एत्र सः=तिलकवृक्षः, मञ्जरीणां पुञ्जैः=समूहैः, दन्तुराणि=सांकुराणि शिरांसि=अग्रभागा यस्य सः मञ्जरीपुञ्जदन्तुरशिराः, सः रोमाञ्चित इव= सञ्जातसपुलक इव स्थितः । शिलीमुखधरं पञ्चशरं पार्श्वे नित्यं कुर्वतोरि-त्यनेन मदनबाणसाम्यं नेत्रयोर्व्यञ्जितम् । उपमोत्प्रेक्षानुप्राससंकराः । शार्दूल-विक्रीडितवृत्तम् ।। ४६ ।।

राजा—तीक्ष्ण एवं चञ्चल (तरल) होने पर भी काजल की हल्की रेखा से अलंकृत तथा हमेशा बाणों को धारण किए हुए कामदेव (पञ्चशर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विचक्षणा—एसो वि असोअसाही।

(कर्पूरमञ्जरी चरणताडनं नाटयति)

राजा—

असोअतरुताडणं रणिदणेउरेणंह्णिा
कअं च मअलंछणच्छविमुहीअ हेलुल्लसं।
सिहासु सअलासु वि त्थवअमंडणाडंबरं
ठिदं च गअणंगणं जणणिरिक्खणिज्जं खणं॥ ४७॥

विचक्षणा—एषोऽप्यशोकशाखी। [कर्पूरमञ्जरी चरणताडनं नाटयति]

राजा—

अशोकतरुताडनं रणितनूपुरेणाङ्घ्रिणा
कृतं च मृगलाञ्छनच्छविमुख्या हेलोल्लासम्।
शिखासु सकलास्वपि स्तबकमण्डनाडम्बरं
स्थितं च गगनाङ्गणं जननिरीक्षणीयं क्षणम्॥ ४७॥

अन्वयः—मअलंछणच्छविमुहीअ रणिदणेउरेणंह्णिा हेलुल्लम असोअतरु-ताडणं कअं च सअलासु सिहासु वि त्थवअमंडणाडंबरं गगणंगणं खणं जणणि-रिक्खणिज्जं ठिदं च॥ ४७॥

व्याख्या—मृगस्य लाञ्छनमस्ति यस्य सः मृगलाञ्छनः=चन्द्रः, तस्य छविरिव छविः यस्य तत् तादृशं मुखं यस्याः तया मृगलाञ्छनच्छविमुख्या=

को पास में रखने वाली इस मृगाक्षी के नेत्रों की दृष्टि जैसे ही तिलक वृक्ष पर पड़ी वैसे ही मंजरियों के समुदाय [के निकलने] से दन्तुरशिरा (नुकीले अग्रभाग) वाला वह (तिलक वृक्ष) रोमाञ्चित सा हो गया॥ ४६॥

विचक्षणा—यह अशोक वृक्ष है।

[कर्पूरमञ्जरी पादप्रहार का अभिनय करती है]

राजा—चन्द्रमुखी (चन्द्रमा की कान्ति के समान मुखवाली) ने शब्द करते हुए नूपरवाले पैर से विलासपूर्वक जैसे ही अशोक वृक्ष पर प्रहार किया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदूषकः—भो वअस्स ! जं सअं ण किदं दोहलदाणं देवीए जाणासि एत्थ किं कारणं ?

राजा—तुवं जाणासि ?

विदूषकः—भणामि जइ देवो ण कुप्पदि।

विदूषकः—भो वयस्य ! यत्स्वयं न कृतं दोहददानं देव्या जानास्यत्र किं कारणम् ?

राजा—ननु त्वं जानासि ?

विदूषकः—भणामि यदि देवो न कुप्यति।

चन्द्राननया कर्पूरमञ्जर्या, रणितः नूपुरः यस्मिन् तेन रणितनूपुरेण = शब्दायमानमञ्जीरेण, अङ्घ्रिणा=पादेन, हेलोल्लासं=सविलासम्, अशोकस्य तरुः तस्य अशोकतरोः=अशोकवृक्षस्य, ताडनं=प्रहारः, कृतं=विहितं, तदा एव सकलासु=संपूर्णासु अपि शिखासु=शाखाग्रभागेषु, स्तवकानां = गुच्छानां मण्डनेन आडम्बरः यस्य तत् स्तवकमण्डनाडम्बरं=स्तवकविकाससमुज्ज्वलं, गगनमेव अङ्गणं गगनाङ्गणम्=आकाशमण्डल, क्षणं=क्षणेनैव, जनैः निरीक्षणीयं =दर्शनीयं जननिरीक्षणीयं, स्थितं = जातम्। चकारद्वयेनात्र पादप्रहारस्य पुष्पविकासस्य च यौगपद्यं द्योत्यते। छेक-लाटानुप्रासोपमादयोऽलंकाराः। पृथ्वीवृत्तम् ॥ ४७ ॥

तत्काल सभी शाखाओं से फूलों के गुच्छे निकल आए जिससे आकाश - प्रदेश क्षणभर में ही दर्शनीय (जननिरीक्षणीय) हो गया ॥ ४७ ॥[1]

विदूषक—हे मित्र ! देवी ने स्वयं दोहद-दान नहीं किया। जानते हो इसमें क्या कारण है ?

राजा—क्या तुम जानते हो ?

विदूषक—कहूँ, यदि आप क्रोध न करें।

---

१. 'गअणंगणे' पाठ के अनुसार अर्थ करना होगा—आकाश में विचरण करने वाले देवताओं के द्वारा भी दर्शनीय हो गया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा— को एत्थ रोसावसरो ? भण उम्मुद्दिआए जीहाए।

विदूषकः—

इह जइ वि कामिणीणं सुंदेरं धरइ अवअवाण सिरी।
अहिदेवअ व्व णिवसइ (विलसइ) तह वि हु तारुण्णए लच्छी ॥४८॥

राजा—मुणिदो (सुणिदो) दे अहिप्पाओ। किं पुण, किं पि भणामो।

बालाओ होंति कोऊहलेण एमेव चवलचित्ताओ।

राजा—कोऽत्र रोषावसरः ? भणोन्मुद्रितया जिह्वया।

विदूषकः—

इह यद्यपि कामिनीनां सौन्दर्यं धारयत्यवयवानां श्रीः।
अधिदेवतेव निवसति विलसति तथापि खलु तारुण्ये लक्ष्मीः ॥ ४८ ॥

राजा—ज्ञातः (श्रुतः) तेऽभिप्रायः। किं पुनः किमपि भणामः।

बाला भवन्ति कौतूहलेनैवमेव चपलचित्ताः।

अन्वयः—इह जइ वि कामिणीणं अवअवाणं सिरि सुंदेरं धरइ तह वि तारुण्णए लच्छी अहिदेवअ व्व णिवसइ हु ॥ ४८ ॥

व्याख्या – इह=संसारे, यद्यपि कामिनीनां=रमणीनाम्, अवयवानाम्=अङ्गानां, श्रीः=कान्तिः, सौन्दर्यं=शोभां धारयति तथापि तारुण्ये=यौवनकाले, लक्ष्मीः=सौन्दर्यम्, अधिदेवता=अधिष्ठात्री देवतेव, निवसति=तिष्ठति। तारुण्ये खलु कामिन्यः अद्भुतं सौन्दर्यं धारयन्तीति। उपमालङ्कारः। आर्यावृत्तम् ॥ ४८ ॥

राजा—यहाँ क्रोध का अवसर कहाँ है ? जुवान खोलकर कहो।

विदूषक—यद्यपि कामिनियों के अवयवों में सौन्दर्य रहता है तथापि यौवनावस्था में [वह सौन्दर्य] अधिदेवता की तरह निवास करता है ॥४८॥

तुम्हारा अभिप्राय जाना। फिर भी कुछ कहता हूँ—

बालायें कौतूहल के कारण यों ही चञ्चलचित्तवाली होती हैं फिर भी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दरोल्लसिअथणीओ पुणो णिवसइ मअरद्धअरहस्सं ॥४६॥

विदूषकः—तरुणो वि रूअरेहारहस्सेण फुल्लंति । ण उणो रइ-रहस्सं जाणंति ।

(नेपथ्ये)

वैतालिकः—सुहसंझा भोदु देवस्स ।

लोआणं लोअणेहिं सह कमलवणं अद्धणिद्दं कुणंतो

दरलसितस्तनीषु पुनर्निवसति मकरध्वजरहस्यम् ॥ ४६ ॥

विदूषकः—तरवोऽपि रूपरेखारहस्येन विकसन्ति । न पुनः रतिरहस्यं जानन्ति ।

[नेपथ्ये]

वैतालिकः—सुखसंध्या भवतु देवस्य—

लोकानां लोचनैः सह कमलवनमर्धनिद्रं कुर्वन्-

अन्वयः—बालाओ कोऊहलेण एमेअ चवलचित्ताओ होंति । पुणो दरोल्लसिअथणीओ मअरद्धअरहस्सं णिवसइ ॥ ४६ ॥

व्याख्या—बालाः = नवयौवनाः, कौतूहलेन = विलासलीलया यौवन-सुखोपभोगोत्कण्ठया वा एवमेव चपलचित्ताः = चञ्चलान्तःकरणा भवन्ति । पुनः यासां तु दरम्=ईषत् लसितौ=उन्मिषितौ स्तनौ = पयोधरौ यासां तासु दरलसितस्तनीषु तु मकरध्वजस्य=मन्मथस्य रहस्यं मकरध्वजरहस्यं रतिसर्वस्वं वा निवसति = विलसति । आर्यावृत्तम् ॥ ४६ ॥

थोड़े-थोड़े उल्लसित स्तनोंवाली (युवतियों) में तो कामदेव (मकरध्वज) का रहस्य ही वास करता है ॥ ४६ ॥

विदूषक—पेड़-पौधे भी सौन्दर्य के रहस्य से विकसित हो जाते हैं यद्यपि वे रति के रहस्य को नहीं जानते हैं ।

[नेपथ्य में]

वैतालिक—देव को सन्ध्या सुखकर हो—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुंचंतो तिव्वभावं सह अ सरहसं माणिणीमाणसेहिं ।
मंजट्ठिारत्तसुत्तच्छविकिरणचओ चक्कवाएक्कमित्तो
जादो अत्थाचलत्थो उवह दिणमणी पक्कणारंगपिंगो ॥५०॥

मुञ्चंस्तीव्रभावं सह च सरभस मानिनीमानसैः ।
मञ्जिष्ठारक्तसूत्रच्छविकिरणचयश्चक्रवाकैकमित्रं
जातोऽस्ताचलस्थः पश्यत दिनमणिः पक्वनारङ्गपिङ्गः ॥ ५० ॥

अन्वयः–मंजिट्ठारत्तसुत्तच्छविकिरणचओ चक्कवाएक्कमित्तो पक्कणारंगपिंगो दिणमणी लोआणं लोअणेहिं सह कमलवणं अद्धणिद्दं कुणंतो, माणिणीमाणसेहिं सह सरहसं तिव्वभावं मुंचंतो अत्थाचलत्थो जादो [इति] उवह ॥ ५० ॥

व्याख्या—मञ्जिष्ठया रक्तं सूत्रं मञ्जिष्ठारक्तसूत्रं तद्वत् छविः=कान्तिः यस्य सः मञ्जिष्ठारक्तसूत्रच्छविः तथाविधः किरणानां चयः=समूहः यस्य सः मञ्जिष्ठारक्तसूत्रच्छविकिरणचयः=मञ्जिष्ठारागेण रक्तानां सूत्राणां कान्त्या युक्तमिव किरणसमूहं धारयन्, चक्रवाकाणाम् एकं मित्रं=मुख्यं सुहृत् चक्रवाकैकमित्रं, पक्वं नारङ्गमिव पिङ्गः पीतरक्तः पक्वनारङ्गपिङ्गः, दिने=दिवसे मणिरिवाचरतीति दिनमणिः=सूर्यः, लोकानां=जनानां, लोचनैः=नयनैः सह, कमलानां वनं कमलवनं=कमलसमूहम्, अर्धं निद्रा यस्य तत् अर्धनिद्रं कुर्वन् = निमीलितप्रायं मुकुलितं वा कुर्वन्, मानिनीनां = प्रणयकुपितानां मानसैः=हृदयैः सह सरभसं=वेगेन, तीक्ष्णभावं = तापं मानं वा, मुञ्चन्=परित्यजन् यथा खलु समुपस्थिते सन्ध्याकाले मानिन्यः प्रणयकोपं परित्यजन्ति तथैव सूर्योऽपि तापं त्यजन् सपदि=सद्य एव, अस्ताचलस्य अर्थी अस्ताचलार्थी =अस्ताचलं जिगमिषुः, जातः=अभवत् । सन्ध्याकालः समुपस्थित इत्यर्थः । स्वभावोक्ति-सहोक्त्युपमालङ्काराः । स्रग्धरावृत्तम् ॥ ५० ॥

मंजिष्ट से रंगे सूत्रों की तरह कान्तिवाली किरणों वाला, चक्रवाक (चकवा) का एक मात्र मित्र तथा पकी नारंगी के समान पिंगल (पीला और लाल का मिश्र) दिनमणि (सूर्य) लोगों के नेत्रों के साथ-साथ कमलवन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा—भो वअस्स ! संणिहिदो संज्झासमओ वट्टदि ।

विदूषकः—संकेदकालो कधिदो वंदीहिं (सहीहिं) ।

कर्पूरमञ्जरी—सहि विअक्खणे ! गमिस्सं दाव । विआलो संवुत्तो ।

विचक्षणा—एवं कीरदु ।

(इति परिक्रम्य निष्कान्ताः सर्वे)

इति द्वितीयं जवनिकान्तरम् ।

राजा—भो वयस्य ! संनिहितः संध्यासमयो वर्तते ।

विदूषकः—संकेतकालः कथितो बन्दिभिः (सखीभिः) ।

कर्पूरमञ्जरी—सखि विचक्षणे ! गमिष्यामि तावत् । विकालः संवृत्तः ।

विचक्षणा—एवं क्रियताम् ।

[इति परिक्रम्य निष्क्रान्ताः सर्वे]

इति द्वितीयं जवनिकान्तरम् ।

को भी अर्धनिद्रित करता हुआ माननियों के मान के साथ-साथ वेगपूर्वक तीव्रभाव (ताप) को छोड़ता हुआ अस्ताचल पर चला गया है; यह देखो[1] ॥ ५० ॥

राजा—हे मित्र ! सन्ध्याकाल सन्निकट है ।

विदूषक—वंदियों ने संकेतकाल बतला दिया है ।

कर्पूरमञ्जरी—सखि विचक्षणे ! अब मैं जाऊँगी । शाम हो गई है ।

विचक्षणा—ऐसा ही करें ।

[घूमकर सब चले जाते हैं]

द्वितीय जवनिकान्तर समाप्त ।

---

१. 'उवह' यह 'पश्यत' अर्थ में देशी शब्द है । स्वभावोक्ति, उपमा और सहोक्ति अलंकार हैं ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तृतीयं जवनिकान्तरम्

(ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च)

राजा—(तामनुसंधाय)

दूरे किज्जउ चंपअस्स कलिआ कज्जं हलिद्दीअ किं
उत्तत्तेण अ कंचणेण गणणा का णाम जच्चेण वि।
लावण्णस्स णवुग्गएंदुमहुरच्छाअस्स तिस्सा पुरो
पच्चग्गेहि वि केसरस्स कुसुमक्केरेहि किं कारणं ॥ १ ॥

[ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च]

राजा—[तामनुसंधाय]

दूरे क्रियतां चम्पकस्य कलिका कार्यं हरिद्रायाः किं
उत्तप्तेन च काञ्चनेन गणना का नाम जात्येनापि।
लावण्यस्य नवोद्गतेन्दुमधुरच्छायस्य तस्याः पुरः
प्रत्यग्रैरपि केसरस्य कुसुमोत्करैः किं कारणम्। १ ॥

अन्वयः—णउग्गएंदुमहुरच्छाअस्स तिस्सा लावण्णस्स पुरो चंपअस्स कलिआ दूरे किज्जउ, हलिद्दीअ किं कज्जं ? जच्चेण वि उत्तत्तेण कंचणेण का णाम गणणा ? पच्चग्गेहि वि केसरस्स कुसुमक्केरेहि किं कारणं ॥ १ ॥

व्याख्या—नवश्चासौ उद्गतः नवोद्गतः तस्य नवोद्गतस्य=अभिनवाभ्युदितस्य, इन्दोः=चन्द्रस्य छाया=कान्ति इव मधुरा=मनोहरा छाया कान्तिः यस्य तस्य नवोद्गतेन्दुमधुरच्छायस्य एवंभूतस्य=कर्पूरमञ्जर्याः लावण्यस्य=

[इसके बाद राजा और विदूषक का प्रवेश होता है]

राजा—[उसकी याद करके] नवोदित चन्द्रमा की तरह मधुर कान्तिवाले उसके लावण्य के समक्ष चम्पा की कली को दूर करो, हल्दी का भी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अवि अ –

मरगअमणिगुत्था (गुच्छा) हारलट्ठि व्व तारा
भमरकवलिअंता (-अद्धा) मालईमालिअ व्व।

अपि च—

मरकतमणिगुम्फिता हारयष्टिरिव तारा
भ्रमरकवल्यमाना मालतीमालिकेव।

सौन्दर्यस्य, पुरः=अग्रे, चम्पकस्य=एतन्नाम्नः पुष्पस्य कलिका चम्पककलिका, दूरे क्रियताम्=अपनीयताम्; नास्ति कापि आवश्यकता चम्पकस्य कलिकायाः। हरिद्रायाः किं कार्यं=नास्ति किमपि प्रयोजनम्। जात्येन=उत्कृष्टेन अपि उत्तप्तेन=अग्निना संशोधितेन, काञ्चनेन=सुवर्णेन अपि का नाम गणना=तुलना, तुच्छत्वात् न कापि आवश्यकता। प्रत्यग्रैः=सद्यः विकसितैः, केसरस्य=वकुलस्य कुसुमोत्करैः=पुष्पसमुदायैः अपि किं कारणं=न किमपि प्रयोजनमिति। उक्तानि अनुक्तानि च सर्वाणि उपमानयोग्यानि वस्तूनि तुच्छानि तस्मात् अस्याः लावण्यं सर्वोत्कर्षेण वर्तते। लावण्यस्य लक्षणमिदम्—मुक्ताफलेषुच्छायायास्तरलत्वमिवान्तरा। प्रतिभाति यदङ्गेषु तल्लावण्यमिहोच्यते॥' व्यतिरेकालङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्॥ १॥

क्या प्रयोजन ? शुद्ध और तपाये हुए सोने की भी क्या गिनती ? ताजे केशर के फूलों के ढेर से भी क्या प्रयोजन ?॥ १॥[1]

१. चम्पा, हल्दी, तप्तसुवर्ण और ताजे केशर की अपेक्षा कर्पूरमञ्जरी का लावण्य अधिक चमकीला है। अतएव चम्पा आदि के उपमानत्व का निराकरण करने से यहाँ 'आक्षेप' अलङ्कार है—प्रतिषेधपुरःसरोक्तिराक्षेपः। उपमा अलङ्कार की ध्वनि होने से अलङ्कार से अलङ्कार ध्वनि भी है। 'उत्तत्तेण' के स्थान पर 'ओल्लोल्लाइ' (आर्द्रार्द्रया) पाठ करने पर भी वही अर्थ निकलेगा क्योंकि सुवर्ण तपाये जाने पर आर्द्र (तरल) हो जाता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रहसवलिअकंठी तीअ दिट्ठी वरिट्ठा
सवणपहणिविट्ठा माणसं मे पविट्ठा ॥ २ ॥

रभसवलितकण्ठी तस्या दृष्टिर्वरिष्ठा
श्रवणपथनिविष्टा मानसं मे प्रविष्टा ॥ २ ॥

अन्वयः—रहसवलिअकंठी तीअ मरगअमणिगुत्था तारा हारलट्ठि व्व, भमरकवलिअंता मालईमालिअ व्व सवणपहणिविट्ठा वरिट्ठा दिट्ठी मे माणसं पविट्ठा ॥२॥

व्याख्या—रभसेन = वेगेन वलितः=परावर्तितः कण्ठो यया सा रभसवलितकण्ठी=सहसाकृष्टध्याना इत्यर्थः, तस्याः=कर्पूरमंजर्याः, मरकतमणिभिः=हरिन्मणिभिः गुम्फिता (जुष्टा)=युक्ता मरकतमणिगुम्फिता, तारा=मनोहरा स्वच्छा, हारयष्टिः=हारलतिका इव, भ्रमरैः=षट्पदैः कवल्यमाना = भक्ष्यमाणा भ्रमरकवल्यमाना (पाठान्तरे—भ्रमरैः कवलितमर्धं यस्याः सा भ्रमरकवलितार्धा) मालतीमालिका इव=मालतीपुष्पस्रगिव, श्रवणयोः = कर्णयोः पन्थाः=मार्गः श्रवणपथः तं निविष्टा = प्रसृता श्रवणपथनिविष्टा= आकर्णकृष्टा, मे = मम, मानसं=अन्तःकरणं, प्रविष्टा = प्रविवेश। कर्पूरमंजर्याः नयने मम मनसि सन्निविष्टे। अहं सततमेव तन्नयने अनुचिन्तयामि विगतान्यकर्त्तव्यः सन्। उपमोत्प्रेक्षे। मालिनीवृत्तम् ॥ २ ॥

और भी—विलासपूर्वक (शब्दानुसार वेगपूर्वक) कण्ठ को घुमाकर देखने वाली उसकी (कर्पूरमञ्जरी की) मरकत मणि से युक्त चमकते हुए हार के समान, भौंरे से भक्षण की जा रही मालती की माला के सदृश, कर्णप्रान्त तक खिची हुई कटाक्षयुक्त सुन्दर दृष्टि मेरे अन्तःकरण में समा गई है ॥ २ ॥[1]

---

१. 'मरगअमणिजुट्ठा' ('''जुष्ठा) पाठ होने पर भी अर्थपरिवर्तन नहीं होगा। 'गुत्था' अथवा 'गुच्छा' पाठ अधिक सुन्दर है। 'भमरकवलिअंता' के स्थान पर 'भमरकवलिअद्धा' भी पाठ मिलता है, तदनुसार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदूषकः—भो वग्रस्स ! किं तुवं भज्जाजिदो विग्र (पइव्व) किं पि किं पि कुरुकुराग्रंतो चिट्ठसि ?

राजा—वग्रस्स ! पिग्रं सिविणग्रं (सुविणग्रं) दिट्ठं । तं ग्रणुसंधामि ।

विदूषकः—ता कीदिसं ? तं कधेदु पिग्रवग्रस्सो ।

विदूषकः—भो वयस्य ! किं त्वं भार्याजित इव (पतिरिव) किमपि किमपि कुरुकुरायमाणस्तिष्ठसि ?

राजा—वयस्य ! प्रियं स्वप्नं दृष्टम् । तमनुसंदधामि ।

विदूषकः—तत् कीदृशं ? तत् कथयतु प्रियवयस्यः ।

विदूषक—हे मित्र ! पत्नी द्वारा जीत हुए की तरह तुम क्या गुनगुना (कुरकुरा) रहे हो ?

राजा—मित्र, स्वप्न देखा है उसी का अनुसन्धान कर रहा हूँ ।

विदूषक—प्रियमित्र ! वह कैसा है ? उसे कहें ।

अर्थ होगा 'भौंरे के द्वारा जिसका आधा हिस्सा भक्षण कर लिया गया है । इसकी अपेक्षा 'अंता' पाठ अधिक सुन्दर है । 'अंता' की यदि संस्कृत छाया 'अन्तः' की जाए तो अर्थ होगा जिसका मध्यभाग भौंरे के द्वारा खाया जा रहा है । वस्तुतः आँव्र के मध्य में जो गोला है वह मरकतमणि और भ्रमर के सदृश है । यहाँ उपमा और उत्प्रेक्षा अलङ्कार हैं । पं० रामकुमार आचार्य ने 'रहसवलिअकंठी' का अर्थ किया है—'वेग से अथवा प्रसन्नता से दर्शकों के ध्यान को अपनी ओर खींचने वाली 'रभसेन वेगेन हर्षेण वा दर्शकानां कण्ठं ध्यानं स्वाभिमुखमाकर्षन्ती ।' यह चिन्त्य है । प्रथम जवनिकान्तर में (इति त्र्यस्रं वीक्षते) तथा द्वितीय जवनिकान्तर में 'कंठो तिरिच्छिट्ठिओ । २.१' पाठानुसार कर्पूरमञ्जरी का वलितकण्ठ के साथ तिर्यक् वीक्षण सिद्ध है । दर्शकों को आकृष्ट करना उसका फलितार्थ है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा—

जाणे पंकरुहाणणा सिविणए मं केलिसेज्जागअं
कंदोट्टेण तडत्ति ताडिउमणा हत्थंतरे संठिदा।
ता कोड्डेण मए वि झत्ति धरिया (गहिदा) ढिल्ले वरिल्लंचले
तं मोत्तूण गदं च तीअ सहसा णट्ठा खु णिद्दा वि मे ॥ ३ ॥

राजा—

जाने पङ्करुहानना स्वप्ने मां केलिशय्यागत-
मिन्दीवरेण तटिति ताडितुमाना हस्तान्तरे संस्थिता।
तत्कौतूहलेन मयापि झटिति धृता (गृहीता) शिथिले उत्तरीयाञ्चले
तन्मुक्त्वा गतं च तया सहसा नष्टा खलु निद्रापि मे ॥ ३ ॥

अन्वयः—जाणे, पंकरुहाणणा [सा] सिविणए केलिसेज्जागअं मं कंदोट्ठेण ताडिउमणा तडत्ति हत्थंतरे संठिदा। ता मए वि कोड्डेण झत्ति ढिल्ले वरिल्लंचले धरिआ। तीअ तं मोत्तूण सहसा गदं। मे णिद्दा वि णट्ठा ॥ ३ ॥

राजा—स्मरण करता हूँ कि पङ्कजमुखी (वह कर्पूरमञ्जरी) स्वप्न में [जब मैं] केलिशय्या पर था मुझे नीलकमल से प्रहार करने की इच्छा से शीघ्रता के साथ एक हाथ की दूरी पर (अथवा हाथों के मध्य में) खड़ी हो गई। तब मैंने भी कौतुहल के कारण शीघ्र ही झूलते हुए (अथवा ढीले) वस्त्राञ्चल को पकड़ लिया। वह उसे छुड़ाकर शीघ्र चली गई और मेरी नींद भी खुल गई ॥ ३ ॥[३]

३. कंदोट्ठं (इन्दीवरम्) तथा ढिल्लं (शिथिलम्) ये दोनों देशी शब्द हैं। 'ढिल्लं' से 'ढीला' हिन्दी में बना है। 'वरिल्लंचले ढिल्लं धरिआ' ऐसा अन्वय करने पर अर्थ होगा 'उत्तरीय वस्त्र को ढीले हाथों से पकड़ा' और तब उसके द्वारा वस्त्र की पकड़ को छुड़ाकर भाग जाना आसान होगा। 'पंकेरुहाणणा' में उपमा अलङ्कार है।

११

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदूषकः—(स्वगतम्) भोदु एवं दाव। (प्रकाशम्) भो वअस्स ! अज्ज मए वि सिविणअं दिट्ठं ।

राजा—(सप्रत्याशम्) ता कहिज्जदु कीदिसं सिविणअं ?

विदूषकः—अज्ज जाणे सिविणए सुरसरिदासोत्ते सुत्तो म्हि ।

विदूषकः—(स्वगतम्) भवतु एवं तावत् । (प्रकाशम्) भो वयस्य ! अद्य मयाऽपि स्वप्नो दृष्टः ।

राजा—(सप्रत्याशम्) तत्कथ्यतां कीदृशः स स्वप्नः ?

विदूषकः—अद्य जाने स्वप्ने सुरसरित्स्रोतसि सुप्तोऽस्मि ।

व्याख्या—जाने=स्मरामि, पङ्के रोहतीति पङ्केरुहः, पङ्केरुह इव आननं यस्याः सा पङ्केरुहानना=कमलमुखी सा कर्पूरमंजरी स्वप्ने=निद्रावस्थायां, केलिशय्यायां गतं केलिशय्यागतं=क्रीडातल्पशायिनं, मां=राजानम्, इन्दीवरेण=नीलकमलेन ताडितुं मनः यस्याः सा ताडितुमनाः ('तुं काममनसोरपि' इति वार्त्तिकेन मकार लोपः)=प्रहर्तुकामा, झटिति=सहसा, हस्तयोः अन्तरे =मध्ये हस्तान्तरे हस्तपरिमाणं अन्तरे=दूरे हस्तान्तरे वा संस्थिता=संन्निषण्णा वर्तमाना, तत्=तदा मया अपि कौतूहलेन=औत्सुक्येन, झटिति=शीघ्रं, शिथिले =लम्बमाने यथा स्यात्तथा वर्तमाने वा उत्तरीयाञ्चले। धृता=गृहीता, वस्त्राञ्चले शिथिलं गृहीता। तया कर्पूरमंजर्या तत् मम वस्त्रग्रहणं मोचयित्वा (मुच् > मोचि+क्त्वा)=पृथक्कृत्य, सहसा=शीघ्रं, गतं=पलायितम् । मे=मम निद्रा अपि नष्टा=त्रुटिता च । 'पङ्केरुहानना' इत्यत्रोपमा । शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम् ॥ ३ ॥

विदूषक—[अपने मन में] अच्छा ऐसा किया जाए। [प्रकाश में] हे मित्र ! आज मैंने भी स्वप्न देखा है ।

राजा—[उत्कण्ठा के साथ] तो कहो वह कैसा स्वप्न था ?

विदूषक—स्मरण है कि आज मैं गङ्गा के प्रवाह में सोया हुआ हूँ ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा—तदो तदो ?

विदूषकः—ता हरसिरोवरि दिण्णलीलावग्राए (चलणाए) गंगाए पक्खालिदो म्हि तोएण ।

राजा—तदो तदो ?

विदूषकः—तदो सरअसमअ-वरिसिणा जलहरेण जहिच्छं पीदो म्हि ।

राजा—अच्छरिअं अच्छरिअं, तदो तदो ?

विदूषकः—तदो चित्ता-(सत्ति) णक्खत्तगदे भअवदि मत्तंडे तंबवण्णीणदीसंगमे समुद्दं गदो सो महामेहो । जाणे अहं पि तस्स

राजा—ततस्ततः ?

विदूषकः—तद्धरशिरस उपरि दत्तलीलापदाय (चरणायाः) गङ्गायाः प्रक्षालितोऽस्मि तोयेन ।

राजा—ततस्ततः ?

विदूषकः—ततः शरत्समयवर्षिणा जलधरेण यथेच्छं पीतोऽस्मि ।

राजा—आश्चर्यमाश्चर्यम् । ततस्ततः ।

विदूषकः—ततः चित्रा (स्वाति)-नक्षत्रगते मार्तण्डे ताम्रपर्णीनदीसंगतं समुद्रं गतः सः महामेघः । जानेऽहमपि तस्य गर्भस्थितो गच्छामि ।

राजा—फिर क्या हुआ ?

विदूषक—तब शिवजी के मस्तक पर लील पूर्वक चरण रखने वाली गङ्गा के जल से मैं स्नान (प्रक्षालित) करा दिया गया ।

राजा—फिर क्या हुआ ?

विदूषक—फिर शरत्काल में बरसने वाले मेघ के द्वारा इच्छानुसार पान कर लिया गया ।

राजा—आश्चर्य है । आश्चर्य है । फिर क्या हुआ ?

विदूषक— तब भगवान् सूर्य के चित्रा (स्वाति) नक्षत्र में चले जाने पर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गब्भट्ठिदो गच्छामि।

राजा—तदो तदो ?

विदूषकः—तदो सो तहिं थूलजलबिंदूहिं वरिसिदुं पउट्टो। अहं च रदणाअरसुत्तिहिं मुत्तासुत्तिणामधेआहिं संपुडं समुप्पडिअ जलबिंदूहिं समं पीदो म्हि। ताणं च दसमासप्पमाणं मोत्ताहलं भविअ गब्भे संठिदो।

राजा—तदो तदो ?

विदूषकः—

तदो चउस्सट्ठिसु सुत्तिसु ट्ठिदो घणंबुबिंदू जिदवंसरोअणो।

राजा—ततस्ततः ?

विदूषकः—ततोऽसौ तत्र स्थूलजलविन्दुभिर्वर्षितुं प्रवृत्तः। अहं च रत्नाकरशुक्तिभिर्मुक्ता- (-शुक्ति) नामधेयाभिः संपुटं समुत्पत्य जलविन्दुभिः समं पीतोऽस्मि। तासां च दशमासप्रमाणं मुक्ताफलं भूत्वा गर्भे स्थितः।

राजा—ततस्ततः ?

विदूषकः—

ततश्चतु षष्टौ शुक्तिषु स्थितो घनाम्बुबिन्दुर्जितवंशरोचनः।

वह महामेघ ताम्रपर्णी नदी के संगमस्थल समुद्र को प्राप्त हो गया। स्मरण पड़ता है कि मैं भी मेघ के गर्भ में चला जा रहा हूँ।

राजा—फिर क्या हुआ ?

विदूषक—इसके बाद वह वहाँ बड़ी-बड़ी बूदों के साथ बरसने लगा; और मैं भी रत्नाकर (समुद्र) की सीपों के द्वारा जिन्हें मुक्तासीप कहा जाता है, आवरण (संपुट) को प्राप्त होकर जल की बूदों के साथ पी लिया गया। पश्चात् दश माषा प्रमाण मोती होकर उनके गर्भ में रहने लगा।

राजा—फिर क्या हुआ ?

विदूषक—इसके बाद चौंसठ सीपों में स्थित वंशरोचन से भी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुवत्तुलं णित्तलमच्छमुज्जलं कमेण पत्तो णवमोत्तिअत्तणं ॥४॥

राजा—तदो तदो ?

विदूषकः—तदो सो हं अत्ताणं सुत्तीणं गब्भगदं मुत्ताहलत्तणेण मण्णेमि ।

राजा—तदो तदो ?

सुवर्तुलं निस्तलमच्छमुज्ज्वलं क्रमेण प्राप्तो नवमौक्तिकत्वम् ॥ ४ ॥

राजा—ततस्ततः ?

विदूषकः—ततः सोऽहमात्मानं तासां शुक्तीनां गर्भगतं मुक्ताफलत्वेन मन्ये ।

राजा—ततस्ततः ?

अन्वयः—तदो चउस्सट्ठिसु सुत्तिसु ट्ठिदो जिदवंसरोअणो घणंबुबिंदू कमेण सुवत्तुलं णित्तलमच्छमुज्जलं णवमोत्तिअत्तणं पत्तो ॥ ४ ॥

व्याख्या—ततः = तदनन्तरं, चतुषष्टौ=चतुःषष्टिसंख्यासु, शुक्तिषु=मुक्ताशुक्तिषु, स्थितः = वर्तमानः घनाम्बुबिन्दुः=स्थूलजलबिन्दुसदृशः, जितं=तिरस्कृतं वंशरोचनं येन सः जितवंशरोचनः = वंशरोचनादप्युत्कृष्टः अहं=विदूषकः, सुवर्तुल=चक्राकारं, निस्तलं=शुद्धम्, अच्छं = निर्मलम्, उज्ज्वलं=कान्तिमत् नवमौक्तिकत्वं क्रमेण=पर्यायेण क्रमशः, प्राप्तः=अभूवम् । अत्र निस्तलमच्छमुज्ज्वलमिति पदत्रयं मौक्तिकस्य निर्मलतां शुद्धतां कान्तिं च प्रकटयति । पृथगुपादानात् तस्यातिशयिता ध्वन्यते । वंशस्थवृत्तम् ॥ ४ ॥

उत्कृष्ट एवं बड़े जलबिन्दु [के समान मैं] क्रमशः गोल (सुवर्तुल), शुद्ध (निस्तल), निर्मल (अच्छ) और चमकीले (उज्ज्वल) नवीन मोतियों में बदल गया ॥ ४ ॥

राजा—फिर क्या हुआ ?

विदूषक—तब ऐसा लगा कि मैं भी उनके गर्भ में स्थित मोती हूँ ।

राजा—फिर क्या हुआ ?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदूषकः—तदो परिणदिकाले समुद्दाओ कड्ढिदाओ ताओ सुत्तिओ फाडिदाओ अ। अहं चदुस्सट्ठिमुत्ताहलत्तणं गदो (०मज्झ) ठिदो। किणिदो (कीदो) अ एक्केण सेट्ठिणा सुवण्णलक्खं देइअ।

राजा—अहो विचित्तदा सिविणअस्स। तदो तदो ?

विदूषकः—तदो तेण आणिअ वेधआरएहिं (वेअडिअं) विद्धाविदा मोत्तिआ। मम वि ईसीसि वेअणा समुप्पण्णा।

राजा—तदो तदो ?

विदूषकः—तदो—

तेणं च मुत्ताहलमंडलेणं एक्केक्कआए दसमासिएणं।

विदूषकः—ततः परिणतिकाले समुद्रात्कर्षितास्ताः शुक्तयः विदारिताश्च। अहं चतुःषष्टिमुक्ताफलत्वं गतः स्थितः। (···फलानां मध्यस्थितः)। क्रीतश्चैकेन श्रेष्ठिना सुवर्णलक्षं दत्त्वा।

राजा—अहो विचित्रता स्वप्नस्य। ततस्ततः ?

विदूषकः—ततस्तेनानीय वेधकारैः (वैकटिकं) वेधितानि मौक्तिकानि। मामपीषद्वेदना समुत्पन्ना।

राजा—ततस्ततः ?

विदूषकः—ततः—

तेन च मुक्ताफलमण्डलेनैकैकतया दशमाषिकेण।

विदूषक—तब परिपक्व हो जाने पर वे सीप समुद्र से निकाली गईं तथा फाड़ी गईं। मैं चौसठ मोतियों के रूप में परिणत हो गया था। पश्चात् एक सेठ ने एक लाख सुवर्ण-मुद्रायें देकर खरीद लिया।

राजा—कैसा विचित्र स्वप्न है ? फिर क्या हुआ ?

विदूषक—तब उसने वेधकारों (जौहरियों) को बुलाकर मोतियों में छेद करवाया। मुझे भी थोड़ी थोड़ी वेदना हुई।

राजा—फिर क्या हुआ ?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक्कावली गंठि (लट्ठि)-कमेण गुच्छा सा संठिदा कोटिसुवण्णमुल्ला।।५

राजा—तदो तदो ?

विदूषकः—तदो तं करंडिआए कदुअ साअरदत्तो णाम वाणिओ गदो पंचालाहिवस्स सिरिवज्जाउहस्स णअरं कण्णउज्जं णाम। तहिं सा विक्किणीदा कोडीए सुवण्णस्स।

एकावली ग्रन्थि (यष्टि)-क्रमेण गुम्फिता सा संस्थिता कोटिसुवर्णमूल्या। ५।।

राजा—ततस्ततः ?

विदूषकः—ततस्तां करण्डिकायां कृत्वा सागरदत्तो नाम वणिक् गतः पाञ्चालाधिपस्य श्रीवज्रायुधस्य नगरं कान्यकुब्जं नाम। तत्र सा विक्रीता कोटया सुवर्णस्य।

अन्वयः—तेण च मुत्ताहलमंडलेणं एक्केक्कदाए दसमासिएणं गंठिकमेण एक्कावली गुच्छा। सा कोटिसुवण्णमुल्ला संठिदा ।। ५ ।।

व्याख्या—तेन (इदं सर्वनामपदं 'श्रेष्ठिना' अर्थे प्रयुक्तं मुक्ताफलस्य-विशेषणार्थेऽपि। 'तेनापि' पाठे सति तु 'श्रेष्ठिना' अर्थे एव प्रयोगोचितः) दश माषाः प्रमाणमस्येति दशमाषिकस्तेन दशमाषिकेण=दशमाषपरिमितेन; मुक्ताफलानां मण्डलानि तेन मुक्ताफलमण्डलेन=चतुःषष्ठिमुक्तासमुदायेन, एकैकतया=प्रत्येकशः, ग्रन्थिक्रमेण=ग्रन्थिसन्धानेन, एकावली=एकसरिका माला, गुम्फिता=रचिता। सा एकावली च कोटिसुवर्णमूल्या संस्थिता= निर्धारिता। इन्द्रवज्रावृत्तम् ।। ५ ।।

विदूषक—तब—

दश माषा परिमाणवाले उन (पाठान्तरानुसार—उस सेठ ने) मोतियों से एक-एक मोती पर गाँठ देने के क्रम से एकावली (एक लड़वाला हार) बनाई गई और उसका मूल्य एक कोटि (करोड़) सुवर्ण-मुद्रायें रखा ।। ५ ।।

राजा—फिर क्या हुआ ?

विदूषक—तब उसे (हार को) करण्डिका (मंजूषा) में रखकर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा—तदो तदो ?

विदूषकः—तदो अ—

दट्ठूण थोरत्थणतुंगिमाणं एक्कावलीए तह चंगिमाणं ।
सा तेण दिण्णा दइआइ कंठे रज्जंति छेआ समसंगमम्मि ॥६॥

राजा—ततस्ततः ?

विदूषकः—ततश्च—

दृष्ट्वा स्थूलस्तनतुङ्गिमानमेकावल्यास्तथा चङ्गिमानम् ।
सा तेन दत्ता दयितायाः कण्ठे रज्यन्ति छेकाः समसंगमे ॥ ६ ॥

अन्वयः—थोरत्थणतुंगिमाणं तह एक्कावलीए चंगिमाणं दट्ठूण तेण सा दइआइ कंठे दिण्णा, [यतः] छेआ समसंगमम्मि रज्जंति ॥ ६ ॥

व्याख्या—तेन=वज्रायुधेन राज्ञा, स्थूलयोः=पीनयोः स्तनयोः=पयोधरयोः, (तुङ्गस्य भावः तुङ्गिमा + इमनिच्) तुङ्गिमानम्=उन्नतिं स्थूलस्तनतुङ्गिमानं तथा एकावल्याः = हारस्य चङ्गिमानं=लावण्यं दृष्ट्वा = अवलोक्य, सा= एकावली, दयितायाः=स्वप्रियायाः कण्ठे=गलप्रदेशे, दत्ता = स्थापिता । हि= यतः, छेकाः=विदग्धाः, समेन=समानेन सह सङ्गमे समसङ्गमे=तुल्यसङ्गतौ, रज्यन्ति=आनन्दिताः भवन्ति । स्तनयोः सह एकावल्याः संगमः प्रीतिदायकः जातः । अर्थान्तरन्यासः । इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ ६ ॥

सागरदत्त नाम का वणिक् (व्यापारी) पाञ्चाल देश के राजा श्री वज्रायुध के कान्यकुब्ज (कन्नौज) नगर को गया । वहाँ वह (एकावली) एक कोटि सुवर्ण मुद्राओं में बेच दी गई ।

राजा—फिर क्या हुआ ?

विदूषक—तब

स्थूल स्तनों के उभार को तथा एकावली की सुन्दरता को देखकर उसने (श्री वज्रायुध राजा ने) उसे (एकावली को) अपनी पत्नी (रानी) के गले में पहना दिया क्योंकि विदग्ध लोग समान का समान के साथ सङ्गम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अवि अ—

णहधवलिअजोण्हाणिब्भरे रत्तिमज्झे
कुसुमसरपहारत्तासमीलिआणं ।
णिहुवणपरिरंभे णिब्भरुत्तुंगपीण-
त्थणकलसणिवेसा पीडिओ हं विबुद्धो ।। ७ ।।

अपि च—

नभोधवलितज्योत्स्नानिर्भरे रात्रिमध्ये
कुसुमशरप्रहारोत्त्राससंमीलितयोः ।
निधुवनपरिरम्भे निर्भरोत्तुङ्गपीन-
स्तनकलशनिवेशात् पीडितोऽहं विबुद्धः ।। ७ ।।

अन्वयः—स्पष्टम् ।। ७ ।।

व्याख्या—नभसि = आकाशे धवलितया = प्रकाशितया ज्योत्स्नया =

होने पर (मणिकाञ्चन योग होने पर) प्रसन्न होते हैं ।। ६ ।।[1]

और भी—

रात्रि के मध्यभाग में जब चांदनी के आधिक्य से आकाश धवलवर्ण का हो गया था (अर्थात् आकाश में जब खूब चांदनी छिटकी हुई थी) तो कामदेव के बाणों के प्रहार से भयभीत होकर परस्पर मिले हुए [राजदम्पती की] रतिक्रीड़ा के प्रसङ्ग में आलिङ्गन किए जाने पर अतिशय उन्नत और पीन-पयोधरकलशों के दबाव से पीड़ित हुआ मैं जाग गया ।। ७ ।।

१. उस एकावली को राजा ने जब अपनी रानी के गले में पहना दिया तो रानी के उन्नत उरोजों के साथ एकावली का संगम मणि-काञ्चन के योग की तरह अतिशय सुन्दर हुआ । इससे उन्नत स्तनों तथा एकावली दोनों की अतिशय-सुन्दरता प्रतिध्वनित होती है । 'रज्जंति छेआ समसंगमम्मि' में सामान्य से विशेष समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा—(किंचिद्विहस्य विचिन्त्य च)
सिविणअमेणमसच्चं तं दिट्ठं मेणुसंधमाणस्स ।
(सिविणअमिणं ण सच्चं तं पाणसमासमाअमं मुणसि।
पडिसिविणएण तस्स वि णिवारणं तुह अहिप्पाओ ।। ८ ।।

राजा—(किञ्चिद्विहस्य विचिन्त्य च)
स्वप्नमेनमसत्यं तद्दृष्टं ममानुसंदधतः ।
(स्वप्नमिमं (स्वप्नोऽयम्) न सत्यं तं प्राणसमासमागमं मन्यसे)
प्रतिस्वप्नेन तस्यापि निवारणं तवाभिप्रायः ।। ८ ।।

चन्द्रिकया निर्भरात्=निरतिशयं परिपूर्णे (यद्वा ज्योत्स्नानां=कौमुदीनां, निर्भरः=पूर्णविस्तारः ज्योत्स्नानिर्भरः नभसि=आकाशे वहलितः=प्रसृतः ज्योत्स्नानिर्भरः यस्मिन् तस्मिन् नभोवहलितज्योत्स्नानिर्भरे=आकाशप्रसृतचन्द्रिकापूर्णे, एतादृशे) रात्रिमध्ये = अर्धनिशायां, कुसुमशरस्य=कामदेवस्य, प्रहारात् = त्रासेन भयेन सम्मिलितयोः=संगतयोः दंपत्योः तयोः राजदम्पत्योः, निधुवनं= संभोगः तस्मिन् यः परिरम्भः तस्मिन् निधुवनपरिरम्भे=सुरतालिङ्गने, निर्भरमुत्तुङ्गौ तयोः निर्भरोत्तुङ्गयोः=अत्युन्नतयोः पीनयोः=स्थूलयोः स्तनकलशयोः= घटसदृशपयोधरयोः, निवेशात् = सम्पातात्, पीडितः=व्यथितः, अहं=विदूषकः विबुद्धः = जागरितः । राजा अर्धरात्रौ यदा स्वप्रियां रन्तुमारब्धवान् तदा प्रगाढालिङ्गनावसरे तस्याः स्तनयोः मध्ये सम्पातादहं पीडितो जातः जागरितवांश्च । उपमालङ्कारः । मालिनीवृत्तम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—तं एणं असच्चं दिट्ठं सिविणअं अणुसंधमाणस्य मे (तं पाणसमासमाअमं इमं सिविणअं ण सच्चं [इति] मुणसि [त्वम्]) पडिसिविणयेण तस्स वि णिवारणं तुह अहिप्पाओ [अस्ति] ।। ८ ।।

राजा—[कुछ हँसकर और विचारकर] तुम्हारे द्वारा देखे गये इस असत्य स्वप्न का अनुसन्धान करते हुए मुझे स्वयं के द्वारा देखे गये स्वप्न का इस प्रतिस्वप्न के द्वारा निवारित करना तुम्हारा उद्देश्य है । [अथवा—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदूषकः— भट्ठो ठक्कुरो, छुहाकिलंतो बंभणो, अविणीदहिअआ बालरंडा, विरहिदो अ माणुसो मणोरहमोदएहिं अत्ताणं विडंबेदि। अवि अ, वअस्स ! पुच्छामि कस्स उण एसो पहावो ?

राजा— पेम्मस्स।

विदूषकः—भ्रष्टो राजा, क्षुधाक्लान्तो ब्राह्मणः, अविनीतहृदया बालरण्डा, विरहितश्च मानुषो मनोरथमोदकैरात्मानं विडम्बयति। अपि च, वयस्य ! पृच्छामि कस्य पुनरेष प्रभावः ?

राजा—प्रेम्णः।

व्याख्या—त्वया दृष्टं तम् इमं=पूर्वोक्तम् असत्यं=मिथ्या दृष्टं स्वप्नमनुसन्दधतः=अनुध्यायतः मम प्रतिस्वप्नेन=स्वप्नतुल्यस्वप्नकथनेन, तस्य=मम दृष्टस्य स्वप्नस्य, निवारणं=निराकरणं, तव – विदूषकस्याभिप्रायः अस्तीति। पाठान्तरे तु त्वं चिन्तयसि यत् मम इमं स्वप्नं यस्मिन् प्राणतुल्यप्रियया कर्पूरमंजर्या सह समागमः अभवत्, तं न सत्यं=मिथ्या। त्वया दृष्टः स्वप्नः खलु मिथ्या। मया यः स्वप्नः दृष्टः सः तु सत्य आसीत्। यदा खल्वहं स्वप्नगतां प्राणतुल्यां स्वप्रियां चिन्तयन्नासम् तदा त्वया प्रतिस्वप्नकथनेन मम ध्यानं दूरीकृतम्। मम ध्यानापकर्षणमेव तवाभिप्रायः अस्तीति भावः। आर्यावृत्तम् ॥ ८ ॥

तुम समझते हो कि मेरा यह स्वप्न जिसमें प्राणतुल्य प्रिया से समागम हुआ था, असत्य है। प्रतिस्वप्न के द्वारा मेरे उस स्वप्न का भी निवारण करना तुम्हारा उद्देश्य है।] ॥ ८ ॥[५]

विदूषक—राज्यपतित राजा (ठाकुर), भूख से पीड़ित ब्राह्मण, अविनीत हृदयवाली (अत्यन्त दंभी स्वभाव वाली) वेश्या युवती और विरही मनुष्य ये मन के लड्डुओं से अपना जी बहलाते हैं। (अपने आपको धोका देते हैं)। और भी, मित्र ! पूछता हूँ—यह किसका प्रभाव है ?

५. 'सिविणअमिणं०' यह पाठ एन० जी० सुरु ने माना है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदूषकः—भो, देवीगदे पणअप्परूढे वि पेम्मे किं णु कप्पूरमंजरिं सव्वंगवित्थारिअलोअणो पिअंतो विअ अवलोएसि (पुलोएसि)? किं तत्तो परिहीअमाणगुणा देवी ?

राजा—मा एवं भण—

कीए (कदा) वि संघडइ कस्स वि पेम्मगंठी
एमेअ तत्थ ण हु कारणमत्थि रूअं।
चंगत्तणं पुणु महिज्जइ जं तहिं पि
तं दिज्जए पिसुणलोअमुहेसु मुद्दा ॥ ६ ॥

विदूषकः—भोः, देवीगते प्रणयप्ररूढेऽपि प्रेम्णि किं नु कर्पूरमञ्जरीं सर्वाङ्गविस्तारितलोचनः पिबन्निवावलोकयसि (प्रलोकयसि)? किं ततोऽपि परिहीयमाणगुणा देवी ?

राजा—मैवं भण—

कयाऽपि (कदापि) संघटते कस्यापि प्रेमग्रन्थि-
रेवमेव तत्र न खलु कारणमस्ति रूपम्।
चङ्गत्वं (सौन्दर्यं) पुनर्मृग्यते यत्तत्रापि
तद्दीयते पिशुनलोकमुखेषु मुद्रा ॥ ६ ॥

अन्वयः—कस्स वि कीए वि पेम्मगंठी एमेअ संघडइ, तत्थ रूअं ण हु कारणमत्थि। तहिं पि जं पुणु चंगत्तणं महिज्जइ तं पिसुणलोअमुहेसु मुद्दा दिज्जए ॥ ६ ॥

राजा—प्रेम का।

विदूषक—देव ! देवी से इतने दिनों का सुदृढ़ प्रेम होने पर भी कर्पूरमञ्जरी के सभी अङ्गों पर आँखें फैलाकर पान करते हुए से उसे क्यों देखते हो ? क्या देवी उससे (कर्पूरमञ्जरी से) कम गुणों वाली है ?

राजा—ऐसा मत कहो—

किसी [पुरुष] का किसी [युवती] के साथ अनायास ही प्रेम हो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदूषकः—भो वअस्स ! किं पुण एदं पेम्मं पेम्मं ति भणंति ?
राजा—अण्णोण्णमिलिदस्स मिहुणस्स मअरद्धअसासणेण पणअ-

विदूषकः—भोः वयस्य ! किं पुनरेतत् 'प्रेम प्रेमे'ति भणन्ति ?
राजा—अन्योन्यमिलितस्य मिथुनस्य मकरध्वजशासनेन प्रणयप्ररूढहृदय-

व्याख्या—कस्यापि=पुरुषस्य, कयापि=नायिकया सह, कदापि=कस्मिन्नपि काले प्रेमग्रन्थिः=प्रेमानुबन्धः, एवमेव=कारणं विनैव अनायासेनैव, संघटते=भवति, तत्र=प्रेमानुबन्धे, रूपं=सौन्दर्यादिकं कारणं नास्ति=न खलु हेतुरस्ति। तत्रापि=प्रेमानुबन्धनेऽपि प्रेम्णः आभ्यन्तरहेतुकत्वेऽपि यत्पुनः चङ्गत्वं=सौन्दर्यं, मृग्यते=अन्विष्यते, तत् पिशुनानां=कुटिलानां निन्दकानां लोकानां=जनानां, मुखेषु मुद्रा=आवरणं दीयते=क्रियते। दुष्टाः निन्दां मा कुर्युरिति तेषां मुखबन्धनाय सौन्दर्यादिगुणाः कीर्त्यन्ते। प्रेमानुबन्धे बाह्यसौन्दर्यादीनि कारणानि न सन्ति, सः तु स्वभावादेव आभ्यन्तरप्रेरणया यया कया नायिकया सह कदापि संघटते। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ९ ॥

जाता है उसमें निश्चय ही रूप कारण नहीं है। फिर भी वहाँ जो सुन्दरता का अन्वेषण किया जाता है वह केवल दुष्ट पुरुषों के मुखों को बन्द करने के लिए है ॥ ९ ॥[१]

विदूषक—हे मित्र ! यह प्रेम किसे कहा जाता है ?

१. 'कीए वि' के स्थान पर 'कया वि' (कदाऽपि) पाठ होने पर अर्थ होगा 'किसी भी समय किसी का (किसी पर) प्रेम यों ही हो जाता है। बाह्य रूपादि उसमें कारण नहीं होते हैं।' उत्तररामचरित में महाकवि भवभूति ने भी ऐसा ही विचार अभिव्यक्त किया है—

व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु-
र्न खलु बहिरुपाधीन प्रीतयः संश्रयन्ते।
विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'परूढहिअअगंठिं पेम्मं ति छइल्ला भणंति ।

विदूषकः—कीदिसो सो ?

राजा—

जस्सि विअप्पघडणाइकलंकमुक्को
अंतो मणम्मि (अत्ताणअस्स) सरलत्तणमेइ भावो ।
एक्केक्कअस्स पसरंतरसप्पवाहो
सिंगारवड्ढिअमणोहवदिण्णसारो ॥ १० ॥

ग्रन्थि प्रेमेति विदग्धा भणन्ति ।

विदूषकः—कीदृशं तत् ?

राजा—

यस्मिन्विकल्पघटनादिकलङ्कमुक्तो-
ऽन्तर्मनसि (आत्मनः) सरलत्वमेति भावः ।
एकैकस्य प्रसरद्रसप्रवाहः
शृङ्गारवर्धितमनोभवदत्तसारः ॥ १० ॥

अन्वयः—जस्सि एक्केक्कअस्स अंतोमणम्मि भावो विअप्पघडणाइ-कलंकमुक्को पसरंतरसप्पवाहो सिंगारवड्ढिअमणोहवदिण्णसारो सरलत्तणं एइ ॥ १० ॥

व्याख्या—यस्मिन्=प्रेम्णि, एकैकस्य=उभयस्य परस्परस्य अन्तर्मनसि=हृदये

राजा—एक दूसरे के सम्पर्क में आये हुए पुरुष और स्त्री के हृदय जो कामदेव के आदेश से एक दूसरे से बंध से जाते हैं उसे ही विदग्ध लोग 'प्रेम' कहते हैं ।

विदूषक—वह कैसा होता है ?

राजा—[प्रेम वह है] जिसमें (प्रेमी और प्रेमिका के) अन्तःकरण में एक दूसरे के प्रति चित्त के भाव सब प्रकार के संदेहों (या कृत्रिमताओं) के कलङ्क से रहित होते हैं; परस्पर आनन्द के रस का प्रवाह प्रवाहित होता है,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदूषकः—कधं विश्र सो लक्खीअदि ?

राजा—

जाणं सहाअपसरंतसलोलदिट्ठी-
पेरंतलुंठिअमणाण परोप्परेण।

विदूषकः—कथमिव तत् लक्ष्यते ?

राजा—

ययोः स्वभावप्रसरत्सलोलदृष्टि-
पर्यन्तलुण्ठितमनसोः परस्परेण।

(पाठान्तरे—आत्मनः = चित्तस्य) विकल्पानां = संशयादीनां घटनादिभिः कलङ्कैः = दोषैः, मुक्तः=शून्यः परस्परसंबन्धे संदेहादिरहितः भावः = अभिप्रायो भवति। प्रसरन्=वृद्धिं गच्छन्, रसस्य = संभोगानन्दरूपरसस्य, प्रवाहः=स्रोतः संचारः प्रसरद्रसप्रवाहः, शृङ्गारेण = आलिङ्गनादिचेष्टाभिः, वर्धितः=विपुलतां गतः यो मनोभवः=कामः तेन दत्तः सारः=उत्कृष्टत्वं यस्मिन् स शृङ्गारवर्धित-मनोभवदत्तसारः, सरलत्वम् = आर्जवम्, एति=प्राप्नोति। अनेन प्रेम्णि कामस्योत्कृष्टता ध्वन्यते। एवं राज्ञा प्रेमपरिभाषा प्रतिपादिता। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ १० ॥

जो शृङ्गारिक चेष्टाओं से निरन्तर बढ़ता है तथा सरलता को प्राप्त हो जाता है ॥ १० ॥*

विदूषक—वह कैसे पहचाना जाता है ?

---

७. इस गाथा में प्रेम के विषय में जो कहा गया है उसके अनुसार चार तथ्य सम्मुख आते हैं—(१) परस्पर संदेहादि के न होने से सरलता का भाव जागृत होता है। (२) परस्पर आनन्द के रस में डूबे रहते हैं। (३) आलिङ्गनादि शृाङ्गारिक चेष्टाओं से यह वृद्धि को प्राप्त होता है। (४) काम का यह सर्वस्व है (कामदेव ने ही इसे प्रसारित किया है) अर्थात् इसका उद्गम कामवासना से होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वड्ढंत (वड्ढंति)-वम्महविइण्ण रसप्पसारो (सरप्पसारा)
ताणं पआसइ लहुं चिअ (विअ) चित्तभावो(भेओ) ॥११॥

वर्धमान-(वर्धन्ते) मन्मथवितीर्णरसप्रसार (शरप्रसारा)-
स्तयोः प्रकाशते लघ्वेव (लघुरिव) चित्तभावः (-भेदः) ॥११॥

अन्वयः—जाणं सहाअपसरंतसलोलदिट्ठी, परोप्परेण पेरंतलुंठिअमणाण वड्ढंतवम्महविइण्णरसप्पसारो ताणं लहुं चिअ चित्तभावो पआसइ ॥ ११ ॥

व्याख्या—ययोः=स्त्रीपुरुषयोः, परस्परेण=अन्योन्येन, स्वभावतः प्रसरन्त्यः=प्रचलन्त्यः, सलोलाः=चञ्चला या दृष्टयः तासां पर्यन्तेषु=अपाङ्गावलोकनेषु सकटाक्षदृष्टिषु, लुण्ठितम्=आतुरं, मनः=चित्तं ययोः तयोः लुण्ठितमनसोः=सतृष्णयोः स्वभावप्रसरत्सुलोलदृष्टिपर्यन्तलुण्ठितमनसोः =सकटाक्षावलोकनाय=सतृष्णचित्तयोः, वर्धमानः=एधमानः असौ मन्मथः=कामदेवः वर्धमानमन्मथस्तेन वितीर्णः=प्रदत्तः रसप्रसारः=रसोद्वेगः बर्धमानमन्मथवितीर्णरसप्रसारः। तयोः=दम्पत्योः, चित्तस्य भावः चित्तभावः=हृदयाभिप्रायः प्रेमाख्यावृत्तिः, लघुः=शीघ्रमेव, प्रकाशते=प्रकटीभवति; तस्मात् प्रेम कथं लक्ष्यत इति न चिन्तनीयम्। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ११ ॥

राजा—जिनकी चंचल दृष्टियां स्वभावतः एक दूसरे को खोजती हैं, मन एक दूसरे में खोये-खोये रहते हैं, काम से प्रसृत रस का प्रवाह बढ़ता रहता है उनके चित्त का यह प्रेम-भाव सहज ही प्रकाशित हो जाता है ॥११ ।[१]

१. इस गाथा में प्रेम की पहचान के तीन सहज चिह्न बतलाये गए हैं— (१) चञ्चल नेत्रों से एक दूसरे को खोजना। (२) मन एक दूसरे में खोया खोया रहना। (३) कामरस में डूबे रहना।

'चित्तभावो' के स्थान पर 'चित्तभेओ' (चित्तभेदः) पाठ होने पर अर्थ होगा 'सामान्य लोगों की अपेक्षा उनके चित्त की भिन्नता उनके प्रेमभाव को शीघ्र ही प्रकाशित कर देता है।' 'लुंठिअ' पद से उनकी एकरसता की ध्वनि निकलती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अवि अ

अंतो णिविट्ठमण (मअण) विब्भमडंबरो जो
सो भण्णए मअणमंडणमेत्थ पेम्मं।
दुल्लक्खअं पि पअडेइ जणो जअम्मि
तं जाणिमो सुबहुलं मअणेंदजालं ॥ १२ ॥

अपि च

अन्तर्निविष्टमनो (मदन)-विभ्रमडम्बरो यः
स भण्यते मदनमण्डनमत्र प्रेम।
दुर्लक्ष्यमपि प्रकटयति जनो जगति
तज्जानीमः सुबहुलं मदनेन्द्रजालम् ॥ १२ ॥

अन्वयः—अंतो णिविट्ठमणविब्भमडंबरो जो सो एत्थ मअणमंडणं पेम्मं भण्णए। दुल्लक्खअं पि जअम्मि जणो पअडेइ। तं सुबहुलं मअणेंदजालं जाणिमो ॥ १२ ॥

व्याख्या—अन्तर्निविष्टस्य=हृदये वर्तमानस्य मनोभवस्य=मदनस्य, प्रियजनं वशीकर्तुं यः विभ्रमडम्बरः=विलासप्रसरः सोऽत्र संसारे मदनस्य=कामस्य मण्डनम्=आभूषणं 'प्रेम' इति भण्यते=ज्ञायते। जगति=संसारे जनः अनेन प्रभावेणैव दुःखेन लक्ष्यं लक्षयितुमशक्यं वा दुर्लक्ष्यमपि=गोपनीयमपि अदृश्यमपि वा प्रकटयति=प्रकाशयति। अतएव अहं तत् सुबहुलं=सुमहत्, मदनस्य इन्द्रजालं=लोकप्रतारिणीं कपटविद्यां जानामि=मन्ये, यद्वा यद्यपि प्रेम्णः आभ्यन्तरभावस्य परिज्ञानं दुष्करं तथापि बाह्यचेष्टादिभिः तदनुमीयते, तस्मात् एषा खलु कामदेवस्य कपटविद्या। वसन्ततिलकावृत्तम् । १२ ॥

विदूषक—अन्तर्मन में मौजूद काम के विलास का जो व्यक्त रूप है उसे यहाँ (संसार में) काम का आभूषण 'प्रेम' कहते हैं। [इसके आभ्यन्तर भाव को जानना] दुर्लक्ष्य (कठिन) होने पर भी [प्रेमी व्यक्ति] संसार में इसे [अपनी बाह्य चेष्टाओं के द्वारा) प्रकट कर देते हैं (अथवा संसार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किं च, जइ चित्तगदं पेम्मं अणराअं उप्पादेदि ता किं किज्जइ (कज्जं) मंडणाडंबरविडंबणाए ?

राजा—वअस्स ! सच्चं इणं—

किं मेहलावलअसेहरणेउरेहिं
किं चंगिमाअ किमु मंडणडंबरीहिं ।

किञ्च यदि चित्तगतं प्रेमानुरागमुत्पादयति तत्किं क्रियते (कार्यम्) मण्डनाडम्बरविडम्बनया ?

राजा—वयस्य ! सत्यमिदम्—

किं मेखलावलयशेखरनूपुरैः
किं चङ्गिमत्वेन किमु मण्डनाडम्बरैः ।

में मनुष्य इसके प्रभाव से रहस्यों को भी प्रकट कर देते हैं) । अतएव इसे हम कामदेव का विशाल इन्द्रजाल (जादू) समझें ॥ १२ ॥[१]

और भी, यदि चित्तगत प्रेम अनुराग को उत्पन्न करता है तो फिर बाह्य साज-सज्जा का आडम्बर क्यों किया जाता है ?

राजा—मित्र । यह सत्य है—

---

१. निर्णय सागर के संस्करण में इसे राजा का कथन बतलाया है जबकि प्रो० सुरु, पोद्दार, घोष तथा कोनो ने विदूषक का कथन माना है । मेरे विचार से इसे राजा का ही कथन मानना अधिक उचित है । यहाँ प्रेम इन्द्रजाल का रूप देकर उसे सामान्य लोगों की बुद्धि से परे बतलाया है । विदूषक प्रेम के रहस्य को नहीं जानता है यह उसके वक्तव्यों से सिद्ध है । इस श्लोक का भाव मैंने दो प्रकार से व्यक्त किया है । (१) प्रेमाभिभूत व्यक्ति गूढ तथ्यों को भी प्रकट कर देता है । अतः प्रेम को कामदेव का इन्द्रजाल समझना चाहिए । (२) इन्द्रजाल की तरह प्रेम के आन्तरिक भाव को जानना कठिन है । हम उसके केवल बाह्य रूप को देखते हैं ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तं अण्णमत्थि इह किं पि णिअंबिणीणं
जेणं लहंति सुहअत्तणमंजरीओ ॥ १३ ॥

तदन्यदस्तीह किमपि नितम्बिनीनां
येन लभन्ते सुभगत्वमञ्जरीः ॥ १३ ॥

अन्वयः—मेहलावलअसेहरणेउरेहिं किं, चंगिमाअ किं, मडणडंवरीहिं किं, इह तं किं पि अण्णं अत्थि जेणं णिअंबिणीणं सुहअत्तणमंजरीओ लहंति ॥ १३ ॥

व्याख्या—मेखलाश्च=रसनाश्च वलयानि च=कङ्कणानि च शेखराणि=शिरोभूषणानि नूपुराणि च तैः मेखलावलयशेखरनूपुरैः, किं=नास्ति किमपि प्रयोजनम्। चङ्गिमत्वेन=सौन्दर्येण अपि किं=न किमपि सिद्धं भवति तेन। मण्डनानां=शृङ्गारप्रसाधनानाम् आडम्बरः=विलासः तैरपि किं=तैरपि कार्यं न सिध्यति, व्यर्थं इत्यर्थः। इह संसारे येन कारणेन प्रशस्तौ नितम्बौ स्तः यासां ताः नितम्बिन्यः=कामिन्यः सुभगत्वस्य=सौभाग्यस्य मञ्जरीः सौभाग्यमंजरीः लभन्ते=प्राप्नुवन्ति, तत् अन्यत् किमपि मेखलादिभिर्भिन्नं=लोकोत्तरं वस्तु कारणमस्ति। व्यतिरेकागर्भाऽन्यत्वाभिधानमूलातिशयोक्तिः। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ १३ ॥

मेखला (करधनी), कङ्कन (वलय), शिरोभूषण और नूपुरों से क्या ? सौन्दर्य से क्या ? [बाह्य] साजसज्जा से भी क्या ? इस संसार में वह कुछ अन्य ही है जिससे नितम्बिनियां (कामिनियां) सौभाग्य की मञ्जरी को प्राप्त करती हैं अर्थात् अतिशय आकर्षक लगती हैं ॥ १३ ॥[१]

१. नितम्बिनियों में अतिशय सौभाग्य आभूषणादि के धारण करने से नहीं आता है, अपितु इसका कारण 'तारामैत्री' है। जिसकी जिससे आंख लग जाये उसे उसी में सौन्दर्य दिखलाई देने लगता है। इसी तथ्य को अगले पद्य में राजा कहता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अवि अ—

किं गेअणट्टविहिणा किमु वारुणीए
धूवेण किं अगुरुणो किमु कुंकुमेण।
मिट्ठत्तणे महिअलम्मि ण किं पि अण्णं
रुच्चिस्स अत्थि सरिसं पुणु माणुसस्स ॥ १४ ॥

अपि च—

किं गेयनृत्यविधिना किमु वारुण्या
धूपेन किमगुरोः किमु कुङ्कुमेन।
मिष्टत्वे महीतले न किमप्यन्यद्
रुचेरस्ति सदृशं पुनर्मानुषस्य ॥ १४ ॥

अन्वयः—गेअणट्टविहिणा किं, वारुणीए किमु, अगुरुणो धूवेण किं; कुंकुमेण किमु, महिअलम्मि माणुसस्स रुच्चिस्स सरिसं मिट्ठत्तणे पुणु किं पि अण्णं ण अत्थि ॥ १४ ॥

व्याख्या—गेयं च नृत्यं च गेयनृत्ये तयोः विधिस्तेन गेयनृत्यविधिना=गाननर्त्तनकलया किं=न किमपि प्रयोजनं सिद्धयति, एवमेव वारुण्या=मदिरया किं=किमपि साध्यं नास्ति। अगुरोः धूपेन किम्? कुङ्कुमेन च किम्? महीतले=पृथिव्यां, मिष्टत्वे=मधुरत्वे, मानुषस्य=पुरुषस्य, रुचेः=कामनायाः सदृशं=तुल्यं किमप्यन्यत् वस्तु नास्ति। कामना एव कमनीयतायाः हेतुरिति; तस्मात् यत्र पुरुषः अनुरक्तो भवति तदेव तस्मै रोचते, तत्र गेयादयः अन्यथासिद्धा एव। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ १४ ॥

और भी—

गान और नृत्य से क्या? मदिरा से भी क्या? अगुरुस की धूप से क्या? कुङ्कुम से भी क्या? पृथ्वी पर मनुष्य की रुचि के सदृश मधुरता का अन्य कोई कारण नहीं है ॥ १४ ॥[१]

१. कौन स्त्री सुन्दर है अथवा आकर्षक है? इसका निर्णय नाच, गान,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अवि अ—

जा चक्कवट्टिघरिणी जणगेहिणी जा
पेम्मम्मि ताण ण तिलं पि विसेसलंभो ।
जाणे सिरीअ जइ किज्जइ को वि भेओ (भावो)
माणिक्कभूसणणिअंसणकुंकुमेहिं ॥ १५ ॥

अपि च—

या चक्रवर्तिगृहिणी जनगेहिनी वा
प्रेम्णि तयोर्न तिलमपि विशेषलाभः ।
जाने श्रिया यदि क्रियते कोऽपि भेदो (भावो)
माणिक्यभूषणनिवसनकुङ्कुमैः ॥ १५ ॥

अन्वयः—जा चक्कवट्टिघरिणी जा जणगेहिणी ताण पेम्मम्मि तिलं पि विसेसलंभो ण [अस्ति] । जइ को वि भेओ सिरीअ किज्जइ माणिक्कभूषण-णिअंसणकुंकुमेहिं [क्रियते इति] जाणे ॥ १५ ॥

व्याख्या—या=कामिनी, चक्रवर्तिनः राज्ञः गृहिणी=महिषी चक्रवर्ति-गृहिणी या वा जनस्य=सामान्यस्य नरस्य गेहिनी=पत्नी जनगेहिनी=सामान्य-

और भी—

जो चक्रवर्ती (सार्वभौम राजा) की गृहिणी है और जो सामान्य पुरुष की गृहिणी है उन दोनों के प्रेम में तिल भर का भी अन्तर (विशेषता) नहीं है । यदि उन दोनों में कोई अन्तर है तो वह माणिक्य, आभूषण वस्त्र, और कुङ्कुम से उत्पन्न बाह्य सौन्दर्य में है । ऐसा मैं जानता हूँ ॥ १५ ॥[1]

मदिरापान आदि से नहीं होता है । इसमें एक मात्र कारण है पुरुष की रुचि । जिस स्त्री में पुरुष की अभिलाषा हो उसे वही आकर्षक लगेगी चाहे वह फटेहाल ही क्यों न हो । अर्थात् कामना ही कमनीयता का करण है ।

१. जब 'को वि भावो' ऐसा पाठ होगा तो अर्थ होगा 'चक्रवर्ती राजा की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अवि अ—

कि लोअणेंहि तरलेहिं किमाणणेण
चंदोवमेण सिहिणेहिं (थणएहिं) किमुण्णएहिं ।

अपि च—

किं लोचनैस्तरलैः किमाननेन
चन्द्रोपमेन स्तनैः किमुन्नतैः ।

नरस्य प्रियतमा, तयोः=उभयोः चक्रवर्तिजनगेहिन्योः, प्रेम्णि-अनुरागे, तिल-मात्रमपि=अणुमात्रमपि, विशेषलाभः=भेदो नास्ति। यदि तत्र कोऽपि भेदः श्रिया=लक्ष्म्या क्रियते, स एतावानेव यत् एका चक्रवर्तिगृहिणी माणिक्यादिभिः विभूषिता भवति अन्या जनगेहिनी खलु निवसनानि=वस्त्राणि कुङ्कुमं=तिलक-द्रव्यं तैः विभूषिता भवति अथवा आभूषणादिभिः निरलंकृता भवतीत्यर्थः, जाने=मन्ये अहमिति शेषः। उत्प्रेक्षालङ्कारः। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ १५ ॥

अन्वयः—तरलेहिं लोअणेहिं किं, चंदोवमेण आणणेण किं, उण्णएहिं थणएहिं किं; इह भूवलए ता किंपि अण्णं णिमित्तं जेण अंगणाउ हिअआहि ण ओसरंति ॥ १६ ॥

और भी चञ्चल नेत्रों से क्या? चन्द्रसदृश मुख से क्या? उन्नत स्तनों से भी क्या? इस संसार में वह कोई दूसरा ही कारण है जिससे अङ्गनायें हृदय से नहीं निकलती हैं ॥ १६ ॥[१]

पत्नी तथा गरीब की पत्नी के प्रेम में कोई अन्तर नहीं है, लक्ष्मी के द्वारा यदि कोई भाव होता है तो वह माणिक्यादि का पहनना ।

१. 'ता किं पि अण्णमिह भूवलए णिमित्तं' पाठ भी मिलता है परन्तु अर्थ में परिवर्तन नहीं होता है। 'सिहिणेहिं' की जगह 'थणएहिं' पाठ मिलता है। 'सिहिण' देशी शब्द है जिसका भी अर्थ 'स्तन' है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ता किं पि अण्णमिह भूवलए णिमित्तं
(अण्णं णिमित्तमिह किं पि तमत्थि मण्णे)
जेणंगणाउ हिअआहि ण ओसरंति ॥ १६ ॥

विदूषकः—एवं णेदं । किं पुण अण्णं पि मे कधेसु, जं कुमारत्तणे माणुसस्स णं मणोज्जं तस्सि पि तारुण्णएण किं पि चंगत्तणं चडदि ।

राजा—

णूणं दुवे इह पआवइणो जअम्मि
जे देहणिम्मवणजोव्वणदाणदक्खा ।

तत्किमप्यन्यदिह भूवलये निमित्तं
(अन्यन्निमित्तमिह किमपि तदस्ति मन्ये)
येनाङ्गना हृदयान्नापसरन्ति ॥ १६ ॥

विदूषकः—एवं न्विदम् । किं पुनरन्यदपि मे कथय, यत्कुमारत्वे मानुषस्य न मनोज्ञमेतस्मिन्नपि तारुण्ये किमपि चङ्गत्वं वर्धते ।

राजा—

नूनं द्वाविह प्रजापती जगति
यौ देहनिर्माणयौवनदानदक्षौ ।

व्याख्या—तरलैः=चञ्चलैः, लोचनैः=नयनैः किं=नास्ति किमपि प्रयोजनम् ? एवमेव चन्द्रः अस्ति उपमा यस्य तेन चन्द्रोपमेन=शशिसदृशेन, आननेन=मुखेन किम् ? उन्नतैः=उच्चैः, स्तनैः=पयोधरैः किम् ? इह भूवलये=पृथिवीमण्डले तत् किमप्यन्यदेव निमित्तं=कारणमस्ति येन कारणेन, अङ्गना=सुन्दर्यः हृदयात्=अन्तःकरणात् न अपसरन्ति=निर्गच्छन्ति यूनामिति शेषः । यूनां हृदयानि कामिन्यः एवमेव वशीकुर्वन्ति, लोचनादिगतं सौन्दर्यं कारणं नास्ति तत्र इत्यर्थः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ १६ ॥

विदूषक—यह ऐसा ही है। कुछ और भी मुझे बतलायें—जिस पुरुष [या स्त्री] में कुमारावस्था में मनोज्ञता नहीं है उसकी इस युवावस्था में मनोज्ञता क्यों बढ़ जाती है ?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक्को घडेइ पढमं कुमरीणमंगं
कंडारिऊण (उक्कारिऊण) पअडेइ पुणो दुईओ ॥ १७ ॥

एको घटयति प्रथमं कुमारीणामङ्ग-
मुत्कीर्य प्रकटयति पुनर्द्वितीयः ॥ १७ ॥

अन्वयः—इह जअम्मि णूणं दुवे पआवइणो जे देहणिम्मवणजोव्वणदाणदक्खा [स्तः]। एक्को पढमं कुमरीणं अंगं घडेइ, दुईओ पुणो उक्कारिऊण पअडेइ ॥ १७ ॥

व्याख्या—इह=अस्मिन् जगति=संसारे, नूनं=निश्चयेन द्वौ प्रजापती=द्वौ विधातारौ ब्रह्मा कामदेवश्च स्तः, यौ देहस्य निर्माणं तस्मिन् देहनिमार्णे=शरीररचनायां, यौवनस्य दाने यौवनदाने=तारुण्यसंपादने च दक्षौ=प्रवीणौ देहनिर्माणयौवनदानदक्षौ । अनयोरेकः=ब्रह्मा (विधाता) प्रथमं=आदौ, कुमारीणां=बालानाम् अङ्गं=शरीरं घटयति=रचयति, पुनः=पश्चात्, द्वितीयः=अपरः कामदेवः अङ्गम् उत्कीर्य – उन्मील्य विकास्य वा प्रकटयति=प्रकाशयति मनोज्ञतां जनयति वा। ब्रह्मा केवलं देहं घटयति कामदेवस्तु देहे सौन्दर्यसृष्टिं विदधाति तस्मात् निपुणतरः खलु कामदेवः। इत्थं ब्रह्मणोऽपेक्षया कामस्याधिक्यं व्यज्यते। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ १७ ॥

राजा—इस संसार में निश्चय ही दो प्रजापति हैं जो [क्रमशः] शरीर-निर्माण में तथा यौवन-प्रदान करने में दक्ष हैं। एक पहले कुमारी के शरीर को बनाता है और दूसरा (कामदेव रूप प्रजापति) उसे उत्कीर्ण (तराश) करके [यौवन के रूप में] प्रकट करता है ॥ १७ ॥[1]

१. 'कंडारिऊण' तथा 'उक्कारिऊण' (उत्+कृ) एक ही अर्थ में प्रयुक्त हैं। इनका अर्थ है—काट छांटकर तराशना। यहां तथा १८ वें पद्य में राजा ने उस कारण का उल्लेख किया है जिसका संकेत १६ वें पद्य में किया था। वह यौवन ही ऐसा कारण है जिससे स्त्रियाँ कामियों के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तेण अ—
समणिवलअकंचीणेउरा वेसलच्छी
मरगअमणिमाला गोरिआ (गेरिआ) हारलट्ठी।
हिअअहरणमंतं (तंतं) जोव्वणं कामिणीणं
जअइ मअणकंडं छट्ठअं वड्ढअं (लट्ठअं) च ॥ १८ ॥

तेन च—
समणिवलयकाञ्चीनूपुरा वेषलक्ष्मी-
र्मरकतमणिमाला गौरिका (गैरिका) हारयष्टिः।
हृदयहरणमन्त्रं (-तन्त्रं) यौवनं कामिनीनां
जयति मदनकाण्डः षष्ठको बलिष्ठश्च (मनोहरश्च) ॥ १८ ॥

अन्वयः—समणिवलअकंचीणेउरा वेसलच्छी मरगअमणिमाला गोरिआ हारलट्ठी [परित्यजतु]। हिअअहरणमंतं कामिणीणं जोव्वणं [अस्ति]। [तत्] वड्ढअं छट्ठअं मअणकंडं जअइ ॥ १८ ॥

व्याख्या—मणियुक्तानि वलयानि=कङ्कणानि काञ्च्यः=कटिसूत्राणि नूपुराणि चेति तेषां वेषेण=वेषविन्यासेन या लक्ष्मीः=शोभा समणिवलयकाञ्ची-

---

इसीलिए—

मणिमय कङ्गन, करधनी, नूपुर, वेषभूषा, मरकतमणियों की माला और [सोने का] निर्मल हार [इनको छोड़ो]। हृदय को आकृष्ट करने वाला मंत्र तो कामिनियों का यौवन है जो कामदेव का छठवां प्रबल (या कमनीय) बाण है; उसकी जय हो ॥ १८ ॥[१]

हृदयों में निवास करने लगती हैं। यहाँ प्रसिद्ध प्रजापति ब्रह्मा से कामदेव-रूप प्रजापति का उत्कर्ष बतलाया गया है।

१. जगत में कामदेव के पांच बाण प्रसिद्ध हैं और वह पञ्चशर कहलाता है। यहाँ राजा ने कामिनियों के यौवन को कामदेव का छठा बाण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तधा अ—

अंगं लावण्णपुण्णं सवणपरिसरे लोअणे फारतारे।
वच्छं थोरत्थणिल्लं तिवलिवलइअं मुट्ठिगेज्झं च मज्झं।

तथा च—

अङ्गं लावण्यपूर्णं श्रवणपरिसरे लोचने स्फारतारे
वक्षः स्थूलस्तनं त्रिवलिवलयितं मुष्टिग्राह्यं च मध्यम्।

नूपुरा वेषलक्ष्मीः (पाठान्तरे—रणितानां=शब्दं कुर्वतां वलयानां काञ्चीनां नूपुराणाम् आवासेन या लक्ष्मीः रणितवलयकाञ्चीनूपुरावासलक्ष्मीः) सा तिष्ठतु तुच्छत्वात्। एवमेव मरकतमणीनां माला=हरिन्मणिमाला) सापि तुच्छत्वात् दूरे तिष्ठतु, गौरिका=सुवर्णनिर्मिता गौरवर्णा वा (पाठान्तरे—गैरिका=सुवर्णरचिता) हारयष्टिः = मुक्ताहारलता सापि दूरे तिष्ठतु। हृदयस्य=अन्तःकरणस्य, हरणाय=वशीकर्तुं स्वायत्तीकर्तुं वा मन्त्रः (पाठान्तरे—तन्त्रम्) = मन्त्रतुल्यं कामिनीनां=नितम्बिनीनां यौवनं=मनोहरं तारुण्यं, जयति =सर्वोत्कर्षेण वर्तते। कामिनीनां कामिनीनां यौवनं खलु बलिष्ठः=प्रबलः; षष्ठकः=प्रसिद्धेभ्यः पञ्चभ्यो वाणेभ्यः भिन्नः षष्ठः मदनस्य=कामदेवस्य; काण्डः=शरः अस्ति। मदनस्य खलु पञ्च शराः प्रसिद्धाः तत्र कामिनीनां यौवनं षष्ठः शरः गणितः अत्र। स च सर्वं जगत् वशीकर्तुं मन्त्र इवाचरति। अनेन कामदेवस्य प्रसिद्धाः पञ्च शराः तुच्छा इति ध्वन्यते। मालिनीवृत्तम्॥ १८॥

बतलाया है तथा उसे सर्वश्रेष्ठ भी बतलाया है। श्रेष्ठ होने से 'जअइ' पद का भी प्रयोग किया है। 'जअइ' पद से यहाँ व्यतिरेक अलङ्कार व्यङ्ग्य है। 'लट्ठ' शब्द 'रम्य' अर्थ में देशी है। 'समणिवलअ' के स्थान पर 'रणिअवलअ' (रणितवलय=शब्दकरते हुए कंगन) पाठ भी मिलता है। 'गोरिआ' निर्मलता का सूचक है। 'गेरिआ' गेरु अथवा लालरंग का बोधक है। गैरिकम्' स्वर्ण का भी बोधक है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चक्काग्रारो णिग्रंबो तरुणिमसमए किं णु ग्रण्णेण कज्जं
पंचेहिं चेग्र बाला मग्रणजग्र (रइरमण) महावेजग्रंतीउ होंति ॥१६

चक्राकारो नितम्बस्तरुणिमसमये किं न्वन्येन कार्यं
पञ्चभिरेव बाला मदनजय(रतिरमण)महावैजयन्त्यो भवन्ति ॥१६॥

अन्वयः—तरुणिमसमए अंगं लावण्णपुण्णं, सवणपरिसरे फारतारे लोअणे, थोरत्थणिल्लं वच्छं, तिवलिवलइअं मुट्ठिगेज्झं च मज्झं चक्काआरो णिअंबो [भवन्ति]। [एभिः] पंचहिं चेअ बाला मअणजअमहावेजअंतीउ होंति, किं णु अण्णेण कज्जं ? ॥ १६ ।।

व्याख्या—तरुणिमा=यौवनं तस्य तरुणिम्नः समये=युवावस्थायां, [कामिनीनाम्] लावण्येन पूर्णं लावण्यपूर्णं=कान्तियुक्तम् अङ्गं=शरीरं भवति; श्रवणयोः परिसरे श्रवणपरिसरे=कर्णपर्यन्तमायते, हारतारे (स्फार तारे)=स्वच्छकानीनिके लोचने=नेत्रे भवतः; स्थूलस्तनं=पीनपयोधरयुक्तं वक्षः=उरःप्रदेशोऽस्तिः, त्रिवलिभिः=तिसृभिः रेखाभिः वलयितं=वेष्टितं त्रिवलिवलयितं, मुष्ट्या ग्राह्यं मुष्टिग्राह्यं=मुष्टिमेयं मध्यं=कटिप्रदेशः; चक्र इव आकारो यस्य सः चक्राकारः तौ चक्राकारौ=सुवर्तुलौ नितम्बौ=काञ्चीस्थानम्। एभिः पञ्चभिरेव बालाः=षोडशवर्षीयाः कामिन्यः मदनस्य=कमदेवस्य जये=जगद्विजये महावैजयन्त्यः=महापताकाः मदनजयमहावैजयन्त्यः भवन्ति, अन्येन=एभिर्भिन्नैः आभूषणादिविविधप्रसाधनैः किं=नास्ति किमपि प्रयोजनम्। युवावस्थाजनितया श्रिया एवं कामिन्यः विश्वं वशीकर्तुं प्रभवन्ति तत्र बाह्यप्रसाधनानां कापि आवश्यकता नास्ति। स्रग्धरावृत्तम् ॥ १६ ॥

और भी—

यौवनावस्था में अङ्ग लावण्य से पूर्ण, नेत्र आकर्ण कान्तिमान्, वक्षस्थल स्थूल स्तनों से युक्त मुष्टिग्राह्य मध्यभाग (कटि) त्रिवलि से युक्त और नितम्ब चक्राकार [हो जाते हैं]। इन्हीं पाँचों साधनों के द्वारा बालायें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(नेपथ्ये)

सहि कुरंगिए ! इमिणा सिसिरोवग्रारेण णलिणि व्व कामं किलिस्सामि ।

विसं व्व बिसकंदली विसहरो व्व हारच्छडा
वग्रस्समिव ग्रत्तणो किरइ तालवेंटाणिलो ।
तहा ग्र करणिग्गग्रं जलइ जंतधाराजलं
ण चंदणमहोसहं हरइ देहदाहं च मे ॥ २० ॥

(नेपथ्ये)

सखि कुरङ्गिके ! अनेन शिशिरोपचारेण नलिनीव कामं क्लाम्यामि ।

विषमिव बिसकन्दली विषधर इव हारच्छटा
वयस्यमिवात्मनः किरति तालवृन्तानिलः ।
तथा च करनिर्गतं ज्वलति यन्त्रधाराजलं
न चन्दनमहौषधं हरति देहदाहं च मे ॥ २० ॥

अन्वयः—बिसकन्दली विसं व्व, हारच्छडा विसहरो व्व, तालवेंटाणिलो अत्तणो वअस्समिव किरइ, तहा अ करणिग्गअं जंतधाराजलं जलइ । चंदण-महोसहं च मे देहदाहं ण हरइ ॥ २० ॥

कामदेव की विजय पताकायें (महावैजयन्ती) हो जाती हैं, फिर अन्य किसी की क्या आवश्यकता है ? ॥ १९ ॥[1]

[नेपथ्य में]

सखि कुरङ्गिके ! इस शिशिरोपचार से कमलिनी की तरह अतिक्लेश का अनुभव कर रही हूँ ।

---

१. यौवनावस्था में कामिनियों के अंगों का विकास हो जाता है और वे आकर्षक लगने लगती हैं । कामिनियों के कामोत्तेजक पाँच अङ्गों को ही यहाँ कामविजय की महापताका बतलाया गया है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदूषकः—सुदं पिअवअस्सेण। भरिआ कण्णा पीऊसगंडूसेण। ता किं अज्ज वि उवेक्खीअदि घणघम्मेण किलम्मंती मुणालिआ,

विदूषकः— श्रुतं प्रियवयस्येन। भृतौ कर्णौ पीयूषगण्डूषेण। तत्किमद्याप्युपेक्ष्यते घनघर्मेण क्लाम्यन्ती मृणालिका, गाढक्वथितदुःसहेन सलिलेन सिच्य-

व्याख्या—विषस्य=कमलमृणालस्य, कन्दली विसकन्दली, विषमिव=गरलमिव घातकं प्रतीयते। एवमेव हारस्य छटा हारच्छटा=हारावली, विषं धरतीति विषधरः=सर्प इव पीडयति, तालवृन्तस्य=तालव्यजनस्य अनिलः=वायुः तालवृन्तानिलः, आत्मनः=स्वस्य वयस्यं=मित्रमग्निमिव, किरति=वर्षति, कराभ्यां निर्गतं=निःसृतं करनिर्गतं, यन्त्रधारायाः जलं=नीरं यन्त्रधाराजलं, ज्वलति=संतापयति, चन्दनमेव महौषधं चन्दनमहौषधं=संतापनिवारणाय कृतः महौषधिस्वरूपः चन्दनलेपः, मे=मम कर्पूरमञ्जर्याः, देहस्य=शरीरस्य, दाहं=सन्तापं, न हरति=न शमयति। एवमुपस्थिते तव विरहे एते शीतोपचाराः विरुद्धमाचरन् मामतीव व्यथयन्ति। विरोधोपमालङ्कारौ। पृथ्वी वृत्तम् ॥ २० ॥

यह कमलनाल (मृणाल=विसकन्दली) विष [लता] के समान है, [यह पुष्प] हार विषधर (सर्प) के समान है। तालवृन्त (ताड़ का पंखा) की हवा अग्नि को वर्षा रही है (शब्दानुसार—अपने मित्र अग्नि के समान आग बिखेर रहा है), हाथ से निकलता हुआ यह पिचकारी का जल तप रहा है और महौषधि रूप चन्दन भी मेरे शरीर के सन्ताप को दूर नहीं कर रहा है ॥ २० ॥[१]

विदूषक—प्रिय मित्र ने सुना ? अमृत रस (पीयूष-गण्डूष) से कान भर गये। तो क्या अब भी तीव्र आतप (धूप, विरह-संताप) से मुरझाई हुई

१. विरहावस्था में शीतल पदार्थ भी संतापदायक होते हैं। यहाँ कर्पूरमंजरी के विरहसंताप का वर्णन किया गया है। वायु से अग्नि उद्दीपित होती है; अतः वायु को अग्नि का मित्र कहा गया है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गाढक्कढिअदूसहेण सलिलेण सिंचिज्जंती केलिकुंकुमत्थली (पुत्तलिआ), छम्मासिअमोत्तिआणं तडित्ति फुडंती एक्कावली, गंठिवण्णकेआरिआ लुंठिज्जंती गंधहरिणेहिं। ता सच्चं सिविणअं दे संपण्णं। ता एहि, पविसम्ह। उट्ठिज्जदु (उब्भिज्जदु) मअरद्धअपडाआ। पअट्टदु कंठकुहरम्मि पंचमहुंकाराणां रिंछोली। थक्कंतु बाहप्पवाहा। संथरिज्जंतु णीसासप्पसरा। लहदु लावण्णं पुणण्णवभावं। ता एहि। खिडिक्किआदुआरेण पविसम्ह।

(इति खिडिक्किकोद्घाटनं नाटयन्ति)

माना केलिकुङ्कुमस्थली (-पुत्रिका), षण्मासिकमौक्तिकानां झटिति (तडिति) स्फुटन्त्येकावली, ग्रन्थिपर्णकेदारिका लुण्ठयमाना गन्धहरिणैः। तत्सत्यः ते स्वप्नः संपन्नः। तदेहि प्रविशावः। उत्थाप्यतां (उत्भ्रियतां) मकरध्वजपताका। प्रवर्ततां कण्ठकुहरे पञ्चमहुंकाराणां रचना (पङ्क्तिः)। तिष्ठन्तु बाष्पप्रवाहाः। मन्थरीक्रियन्तां निःश्वासप्रसराः। लभतांलावण्यं पुनर्नवभावम्। तदेहि, खिडिक्किकाद्वारेण प्रविशावः।

मृणालिका (कमलिनी, कर्पूरमञ्जरी) की उपेक्षा की जायेगी ? खूब खौलते हुए दुःसह पानी से सींची जाती हुई क्रीड़ा कुङ्कुमस्थली कब तक उपेक्षित रहेगी ? छः महीने में तैयार हुए मोतियों (अथवा छह मासा प्रमाण मोतियों) की शीघ्र ही टूटती हुई एकावली [कब तक उपेक्षित रहेगी] ? गन्धहरिणों (कस्तूरी मृगों) के द्वारा लूटी जाती हुई ग्रन्थिपर्णों (पुष्प विशेष) की क्यारी (कब तक उपेक्षित रहेगी) ? आपका स्वप्न साकार (सत्य) हो गया। आओ प्रवेश करें। मकरध्वज (कामदेव) की पताका उठाओ। कोयल पञ्चम स्वर से गूंजें (शब्दानुसार-कोयल के कण्ठ-कुहर में पञ्चम राग प्रवृत्त हो)। आसुओं का प्रवाह रुके। निःश्वासों का प्रसार शिथिल (मंथर) हो। लावण्य पुनः नवीनता को प्राप्त करे। आओ खिड़की के मार्ग से प्रवेश करें।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(ततः प्रविशति नायिका कुरङ्गिका च)

नायिका—(ससाध्वसं स्वगतम्) अम्मो, किं एसो सहसा गअ-णंगणादो अवइण्णो पुण्णिमाहरिणंको ? किं वा तुट्ठेण णीलकंठेण णिअदेहं लंभिदो मणोहओ ? किं वा हिअअस्स दुज्जणो णअणाण सज्जणो मं संभावेदि ? (प्रकाशम्) सहि कुरंगिए ! इदं इंदजालं विअ पेक्खामि ।

विदूषकः—(राजानं हस्ते गृहीत्वा) भोदि ! सच्चं इंदजालं संपण्णं ।

(नायिका लज्जते)

(इति खिडिक्किकोद्घाटनं नाटयति)

(ततः प्रविशति नायिका कुरङ्गिका च)

नायिका—(ससाध्वसं स्वगतम्) अम्मो, किमेष सहसा गगनाङ्ग-नादवतीर्णः पूर्णिमाहरिणाङ्कः ? किं वा तुष्टेन नीलकण्ठेन निजदेहं लम्भितो मनोभवः ? किं वा हृदयस्य दुर्जनो नयनानां सज्जनो मां संभावयति ? (प्रकाशम्) सखि कुरङ्गिके ! इदमिन्द्रजालमिव पश्यामि ।

विदूषकः—(राजानं हस्ते गृहीत्वा) भवति ! सत्यमिन्द्रजालं संपन्नम् ।

(नायिका लज्जते)

[खिड़की खोलते हैं । नायिका और कुरङ्गिका का प्रवेश होता है]

नायिका—[उद्वेग के साथ, मन में] अरे ! क्या यह अचानक आकाश-प्राङ्गण से अवतीर्ण पूर्णिमा का चन्द्रमा है ? अथवा सन्तुष्ट हुए नीलकण्ठ (शिवजी) से कामदेव ने अपना शरीर प्राप्त कर लिया है ? अथवा हृदय के लिए दुर्जन (हृदय को चुराने के कारण) और नेत्रों के लिए सज्जन (दर्शनीय होने से) यह पुरुष मेरा सम्मान कर रहा है । [प्रकाश में] सखि कुरङ्गिके ! इन्द्रजाल सा देख रही हूँ ।

विदूषक—[राजा का हाथ पकड़कर] आर्ये ! इन्द्रजाल सच हो गया ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुरङ्गिका—सहि कप्पूरमंजरि ! अब्भुट्ठाणेण संभावेहि भट्टारअं ।

(नायिका उत्थातुमिच्छति)

राजा—(हस्ते गृहीत्वा)

उट्ठिऊण थणभारभंगुरं मा मिअंकमुहि ! भंज मज्झअं ।
तुज्झ ईदिसणिवेसदंसणे लोअणाण मअणो पसीअदु ।। २१ ।।

कुरङ्गिका—सखि कर्पूरमञ्जरि ! अभ्युत्थानेन संभावय भट्टारकम् ।

(नायिका उत्थातुमिच्छति)

राजा—(हस्ते गृहीत्वा)

उत्थाय स्तनभारभङ्गुरं मा मृगाङ्कमुखि ! भञ्जय मध्यम् ।
तवेदृशनिवेशदर्शने लोचनयोर्मदनः प्रसीदतु ।। २१ ।।

अन्वयः—मिअंकमुहि ! उट्ठिऊण थणभारभंगुरं मज्झअं मा भंज । तुज्झ ईदिसणिवेसदंसणे [मम] लोअणाण मअणो पसीअदु ।। २१ ।।

व्याख्या—मृगस्य अङ्कोऽस्ति यस्मिन् स मृगाङ्कः=चन्द्रः स इव मुखं=वदनं यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ हे मृगाङ्कमुखि=चन्द्रानने ! उत्थाय=मम राज्ञः स्वागतार्थमुत्थाय, स्तनयोः=पयोधरयोः भारः स्तनभारस्तेन भङ्गुरं=त्रुटनशीलमा-

---

[नायिका लज्जित होती है]

कुरङ्गिका— सखि कर्पूरमञ्जरि ! उठकर महाराज का सम्मान करो ।

[नायिका उठना चाहती है]

राजा—[हाथ पकड़कर]

हे चन्द्रमुखि ! [मेरे स्वागतार्थ] उठकर स्तनों के भार से टूट रही अपनी कमर को मत तोड़ो । तुम्हें इस रूप में देखने वाली मेरी आखों को कामदेव ही बचाए अथवा मेरे नेत्रों में स्थित मदन प्रसन्न हो ।। २१ ।।[1]

---

१. यहाँ 'मअणो पसीअदु' से ध्वनित होता है कि तुझे मैं इसी रूप में सदा देखता रहूँ यदि कामदेव की कृपा बनी रहे ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अवि अ—

जिस्सा पुरो हरइ णो हरिआललच्छी (हरिदा दलिआ हरिद्दा) रोसाणिअं ण कणअं ण अ चंपआइं।
ताइं सुवण्णकुसुमेहिँ विलोअणाइं
अच्चेमि जेहिँ हरिणच्छि ! तुमं सि दिट्ठा ॥ २२ ॥

अपि च—

यस्याः पुरो हरति न हरितालक्ष्मीः (हरिता दलिता हरिद्रा);
उज्ज्वलीकृतं न कनकं न च चम्पकानि।
ते (तानि) सुवर्णकुसुमैर्विलोचने
अर्चयामि याभ्यां हरिणाक्षि ! त्वमसि दृष्टा ॥२२॥

क्रान्तं वा स्तनभारभङ्गुरं, मध्यं=कटिप्रदेशं, मा भञ्जय=भग्नं न कुरु, मा पीडय इत्यर्थः। तव ईदृशस्य=एतादृशस्य, निवेशस्य=अवस्थायाः दर्शनं तस्माद् ईदृशनिवेशदर्शनात्, आकृष्टयोः मम लोचनयोः=नेत्रयोः, मदनः= कामः मनोरथो वा, प्रसीदतु=मोदतां पूर्णो भवतु रक्षतु वा। त्वामीदृश्याम-वस्थायां विलोक्य मम नेत्रे प्रसादमनुभवत इति। तस्मात् मदनस्य कृपया अहं त्वामग्रेऽपि एवं विलोकनोत्सुकोऽस्मि। अतः स्वागतार्थमुत्थानादिप्रयासो व्यर्थं इति। रथोद्धता वृत्तम् ॥ २१ ॥

अन्वयः—हरिणच्छि ! जिस्सा पुरो हरिआललच्छी णो हरइ, रोसाणिअं कणअं ण, चंपआइं ण अ, तुमं जेहिँ विलोअणाइं दिठ्ठा सि ताइं सुवण्ण-कुसुमेहिँ अच्चेमि ॥ २२ ॥

व्याख्या—हरिणस्य अक्षिणी इवाक्षिणी यस्याः तत्संबुद्धौ हे हरिणाक्षि=

और भी —

हे हरिणाक्षि ! जिसके समक्ष हरिताल (पीली धातु विशेष, पक्षी विशेष) की शोभा कुछ भी नहीं है (शब्दानुसार—आकर्षक नहीं है), चमकता हुआ सोना और चम्पा का फूल भी कुछ नहीं है ऐसी तुम जिन नेत्रों के द्वारा देखी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदूषकः—गब्भघरवासेण सेअसलिलसित्तगत्ता संभूदा तत्थभोदी कप्पूरसंजरी। ता इमं सिचअंचलेण वीजजइस्सं दाव। (तथा

विदूषकः—गर्भगृहवासेन स्वेदसलिलसिक्तगात्रा संभूता तत्रभवती कर्पूरमञ्जरी। तदिमां सिचयाञ्चलेन वीजयिष्यामि तावत्। (तथा कुर्वन्)

मृगनयने। यस्याः=तव, पुरः=अग्रतः, हरितालस्य=पीतधातुविशेषस्य, लक्ष्मीः=शोभा, न हरति=न शोभते नाकर्षयति तुच्छत्वादिति (पाठान्तरे–दलिता=चूर्णीकृता हरिद्रापि न हरिता व्यर्थमिति)। एवमेव उज्ज्वलीकृतम्=अग्निना शोधितं, कनकं=सुवर्णमपि न उज्ज्वलं प्रतिभाति चम्पाकानि=चम्पकपुष्पाणि च न शोभन्ते। इत्थंभूता अनुपमसुन्दरी त्वं कर्पूरमञ्जरी, याभ्यां=मल्लोचनाभ्यां दृष्टा=अवलोकिताऽसि ते (तानि) मदीये विलोचने =नयने सुवर्णनिर्मितैः सुवर्णसदृशैर्वा कुसुमैः=पुष्पैः सुवर्णकुसुमैः, अर्चयामि=पूजयामि। मम लोचनाभ्यां साफल्यं जातं दर्शनीयायास्तव दर्शनेन। व्यतिरेकः। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ २२ ॥

गई हो उनकी मैं स्वर्ण के फूलों से पूजा करता हूँ ॥ २२ ॥[1]

विदूषक—कर्पूरमञ्जरी का शरीर गर्भगृह (अन्तर्गृह) में रहने से

१. इस पद्य से नेत्रों का साफल्य तथा कर्पूरमंजरी का अतिशय सुन्दर होना प्रतिध्वनित होता है। कर्पूरमंजरी के अद्‌भुत सौन्दर्य को प्रत्यक्ष करने में चूंकि नेत्र कारण बने हैं; अतः उनकी पूजनीयता कही गई है। इससे यह भी ध्वनित होता है कि जब नेत्रों की सुवर्ण कुसुमों से पूजा होगी तो कर्पूरमंजरी की पूजा उससे भी कीमती वस्तुओं से होना चाहिए। अतः यहाँ तात्पर्य है, तुम्हें देखकर मेरे नेत्र सफल हो गये क्योंकि जो दर्शनीय था वह उन्होंने देख दिया। 'हरिदा दलिआ हलिद्दा' (हरिता दलिता हरिद्रा) पाठानुसार अर्थ होगा—पीसी गई हल्दी जिसके समक्ष कुछ भी नहीं है (पीली नहीं है)।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुर्वन्) हा हा, कधं वरिल्लपवणेण णिव्वाणो पदीवो। (विचिन्त्य स्वगतम्) भोदु, लीलुज्जाणं ज्जेव गच्छम्ह। (प्रकाशम्) भो, अंधआरणच्चिदं वट्टदि। ता णिक्कमम्ह सुरंगामुहेण ज्जेव पमदुज्जाणं दाव।

(सर्वे निष्क्रमणं नाटयन्ति)

राजा—(कर्पूरमंजरीं करे गृहीत्वा)

मज्झ हत्थठिदपाणिपल्लवा ईस संचरणचंचुरा (बंधुरा) भव।
जं चिराअ कलहंसमंडली भोदु केलिगमणम्मि दूहवा ॥ २३ ॥

हा हा, कथं वस्त्राञ्चलपवनेन निर्वाणः प्रदीपः ? (विचिन्त्य स्वगतम्) भवतु, लीलोद्यानमेव गच्छामः। (प्रकाशम्) भोः, अन्धकारनृत्यं वर्तते। तन्निष्क्रमामः सुरङ्गामुखेनैव प्रमदोद्यानं तावत्।

(सर्वे निक्रमणं नाटयन्ति)

राजा—(कर्पूरमंजरीं करे गृहीत्वा)

मम हस्तस्थितपाणिपल्लवा ईषत्संचरणबन्धुरा (-चञ्चुरा) भव।
यच्चिराय कलहंसमण्डली भवतु केलिगमने दुर्भगा ॥ २३ ॥

अन्वय.—मज्झ हत्थठिदपाणिपल्लवा ईस संचरणबन्धुरा भव। जं कलहंसमंडली चिराअ केलिगमणम्मि दूहवा भोदु ॥ २३ ॥

पसीने से तर हो गया है। अतएव वस्त्र के छोर से इसे हवा कर दूँ। [वैसा करता हुआ] अरे ! अरे ! यह क्या! वस्त्राञ्चल की हवा से दीपक ही बुझ गया। [विचारकर, मन में] अच्छा, लीलोद्यान में ही चलें। [प्रकट] चारों ओर अन्धकार छाया हुआ है। तब तो सुरंगद्वार से ही प्रमदोद्यान में निकल चलें।

[सभी निकलने का अभिनय करते हैं]

राजा—(कर्पूरमञ्जरी का हाथ पकड़कर)

मेरे हाथ में हाथ (पाणिपल्लव) रखकर मन्द मन्द गमन (लीलापूर्वक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(स्पर्शसुखमभिनीय)
जे णवस्स तिउसस्स (तिमिसस्स) कंटआ जे कदंबकुसुमस्स केसरा ।

(स्पर्शसुखमभिनीय)
ये नवस्य त्रपुषस्य(तिमिषस्य) कण्टका ये कदम्बकुसुमस्य केसराः ।

व्याख्या—मम=राज्ञः, हस्ते=करे, स्थितः=धृतो निहितो वा हस्तस्थितः; पाणिरेव पल्लवः पाणिपल्लवः = करकिसलयः हस्तस्थितः पणिपल्लवः यस्याः सा हस्तस्थितपाणिपल्लवा त्वं कर्पूरमञ्जरी ईषत् संचरणेन =मन्द-मन्दगमनेन वा बन्धुरा=मनोहरा ईषत्संचरणवन्धुरा भव=भवतु। यत्=यस्मात् कारणात् तव एतादृशीं गतिमवलोक्य कलहंसानां=केलिगमने प्रसिद्धानां राजहंसानां मण्डली=समुदायः कलहंसमंडली, चिराय=चिरकालं यावत् सततं वा केलिगमने = लीलागतौ, दुर्भगा=श्रीहीना, हतभाग्या अरुचिरा वा, भवतु=भवेत्। जनाः तेषां प्रसिद्धहंसानां मत्तगतिं नाद्रियेरन् मम हस्तगृहीतायाः तव विलासगमनमेव प्रशंसेयुरित्यर्थः। रथोद्धता वृत्तम् ॥ २३ ॥

अन्वयः—जे णवस्स तिउसस्स कंटआ जे कदंबकुसुमस्स केसरा [सन्ति] तुज्झ करफंससविखणो अज्ज ते मह अंगणिज्जिदा हवंतु ॥ २४ ॥

गमन=मस्ती की चाल) से मनोहर बनो जिससे कलहंसों की मण्डली चिरकाल तक (हमेशा के लिए) लीलापूर्वक गमन करने में शोभाहीन हो जाए। ॥ २३ ॥[१]

[स्पर्श सुख का अभिनय करके]

१. 'बंधुरा' के स्थान पर 'चंचुरा' पाठ होने पर अर्थ होगा 'चञ्चल'। कामिनियों की चाल कलहंसगामिनि प्रसिद्ध है। यहाँ राजा ने कर्पूरमंजरी की मस्ती की चाल को कलहंस की चाल का तिरस्कार करने वाली बतलाया है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अज्ज तुज्झ करफंससक्खिणो (संगिहिं)
ते हवंतु मह [अंगसंगिणो (णिज्जिदा) ॥ २४ ॥

(नेपथ्ये)

वैतालिकः—सुहणिबंधणो भोदु देवस्स चंदुज्जोओ ।

अद्य तव करस्पर्शसाक्षिणस्ते (संगिभिः) भवन्तु ममाङ्गसंगिनः (निर्जिताः) ॥ २४॥

(नेपथ्ये)

वैतालिकः—सुखनिबन्धनो भवतु देवस्य चन्द्रोद्योतः ।

व्याख्या—ये = पुरो वक्ष्यमाणाः, नवस्य = नूतनस्य सद्यः प्रसूतस्य, त्रपुषस्य (पाठान्तरे-तिमिषस्य) = त्रपुषाख्यफलविशेषस्य कण्टकास्सन्ति, ये च कदम्बकुसुमस्य (मुकुलस्य) = तदाख्यवृक्षविशेषपुष्पस्य, केसराः = किञ्जलकास्सन्ति, ते = त्रपुषकंटकाः कदम्बकुसुमकेसराश्च अद्य = पाणिग्रहणकाले, मम = राज्ञः, अङ्गसङ्गिनः = रोमाञ्चव्याजेन शरीरसम्पर्किणः सन्तः तव = कर्पूरमञ्जर्याः करस्पर्शस्य=हस्तगृहीतस्य साक्षिणः = प्रत्यक्षद्रष्टारः करस्पर्शसाक्षिणः भवन्तु । इत्थं विवाहसाक्षित्वं द्योतते रोमाञ्चानाम् । पाठान्तरे—तव करस्पर्शसङ्गिभिः सहोत्पन्नैः रोमाञ्चैः निर्जिताः = निःशेषेण पराजिताः ते = त्रपुषकण्टकादयः । अर्थात् अद्य तव करस्पर्शेण मम शरीरे रोमाञ्चाः उद्गताः ते खलु त्रपुषकण्टकादिभ्य. उत्कृष्टा इति । कारणे कार्योपचारात् ममाङ्गनिर्जिता इति साधुप्रयोगः । रथोद्धतावृत्तम् ॥ २४ ॥

जो नवीन त्रपुष के कांटे हैं और जो कदम्ब फूल के केशर हैं, आज तुम्हारे करस्पर्श [जनित रोमाञ्च] के साक्षी वे मेरे अङ्गों (में उत्पन्न रोमाञ्चों) के द्वारा अवश्य से जीत लिए जायें ॥ २४ ॥[१]

[नेपथ्य में]

---

१. 'करफंससंगिहिं' (करस्पर्शसङ्गिनः) पाठ करने पर अर्थ होगा 'आज तेरे हाथ का स्पर्श होने पर ।' 'मह अंगसंगिणो' पाठ करने पर अर्थ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भूगोले तिमिराणुबंधमलिणे भूमिघरे (रुह) व्व ट्ठिदे
संजादा णवभुज्जपिंजरमुही जोण्हाई पुव्वा दिसा।
मुंचंतो मुचुकुंदकेसरसिरी(सिहा)-सोहाणुकारे करे
चंदो एक्ककलाकमेण अ गदो संपुण्णबिंबत्तणं ॥ २५ ॥

भूगोले तिमिरानुबन्धमलिने भूमिगृह (-रुह) इव स्थिते
संजाता नवभूर्जपिञ्जरमुखी ज्योत्स्नया पूर्वा दिशा।
मुञ्चन्मुचुकुन्दकेसरश्री (शिखा)-शोभानुकारान्करां-
श्चन्द्रः एककलाक्रमेण च गतः संपूर्णबिम्बत्वम् ॥ २५ ॥

अन्वयः—तिमिराणुबंधमलिणे भूगोले भूमिघरे व्व ट्ठिदे पुव्वा दिसा जोण्हाइ णवभुज्जपिंजरमुही संजादा। मुचकुंदकेसरसिरीसोहाणुकारे करे मुंचंतो चंदो एक्ककलाकमेण संपुण्णबिंबत्तणं अ गओ ॥ २५ ॥

व्याख्या—तिमिरस्य = अन्धकारस्य अनुबन्धेन = प्रसारेण मलिने = श्यामले तिमिरानुबन्धमलिने, भूगोले = भूमण्डले, भूमिगृह = अन्तस्तलवर्तिगृह इव (भूमिरुह इव = वृक्ष इव), स्थिते = वर्तमाने, पूर्वादिशा, पश्चादुदीयमानचन्द्रस्य ज्योत्स्नया = चन्द्रिकया, नवभूर्जमिव = नवीनभूर्जपत्रमिव पिञ्जरं = पिङ्गलवर्णं मुखम् = अग्रभागः यस्याः सा नवभूर्जपिञ्जरमुखी, सञ्जाता = बभूव। मुचुकुन्दस्य = तदाख्यपुष्पस्य केसराः = किञ्जल्काः

वैतालिक—महाराज के लिए चन्द्रोदय सुखकर हो—भूमिगृह के समान भूमण्डल के घनीभूत अन्धकार से मलिन होने पर पूर्व दिशा चांदनी से नवीन भूर्जपत्र के समान पिङ्गलवर्ण के मुखवाली हो गई है। मुचकुन्द (फूल विशेष) के केशर की शोभा का अनुकरण करने वाली किरणों को प्रसारित करता हुआ चन्द्रमा कलाओं के क्रम से (एक के बाद दूसरी, दूसरी के बाद

होगा 'तेरे करस्पर्श के साक्षी वे मेरे अङ्ग में हों। अर्थात् मेरे शरीर में रोमाञ्च हो। 'मह अंगणिज्जिदा' पाठ करने पर कारण में (शरीर में) कार्य (रोमाञ्च) का उपचार करना पड़ेगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अवि अ—

अकुंकुमम चंदणं   दसदिसावहूमंडणं
अकंकणअकुंडलं   भुवणमंडलीभूषणं ।

अपि च—

अकुङ्कुममचन्दनं दशदिशावधूमण्डन-
मकङ्कणमकुण्डलं भुवनमण्डलीभूषणम् ।

तेषां या श्रीः तस्याः शोभां = कान्तिमनुकुर्वन्ति तान् मुचुकुन्दकेसर-श्रीशोभानुकारान् करान्=किरणान्, मुञ्चन् = प्रसारयन् अधिक्षिपन् वा चन्द्रः = निशाकरः, एककलाक्रमेण = एककलाद्विकलाद्युदयक्रमेण, सम्पूर्णं बिम्वं यस्य सः तस्य भावस्तं सम्पूर्णविम्वत्वं, गतः = प्राप्तः । शनैः शनैः चन्द्रः पूर्णतामुपगत इत्यर्थः । 'पश्य कलाक्रमेण' इति पाठे तु 'अवलोकय' इत्यधिकोऽर्थः । उपमालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ।। २५ ।।

अन्वयः—अकुंकुमं अचंदणं दसदिसावहूमंडणं, अकंकणं अकुंडलं भुवण-

तीसरी इस क्रम से) सम्पूर्ण बिम्बत्व को प्राप्त हो गया है ।। २५ ।।[1]

और भी—

कुङ्कुम नहीं, चंदन भी नहीं, फिर भी दशों दिशाओं रूपी बधुओं का

---

१. 'भूमीरुहेव्व' पाठ होने पर अर्थ होगा 'वृक्ष के समान नीलवर्णवाले भूमण्डल के होने पर।' वासुदेव की व्याख्या में इसका दो प्रकार से अर्थ किया गया है जो उचित है—(१) तिमिरस्यानुबन्धस्तेन मलिने भूगोले भूमिरुह इव स्थिते (घनीभूत अन्धकार से मलिन भूमण्डल के वृक्ष के समान होने पर) । (२) चन्द्रोदयानन्तरं यथा वृक्षमात्रमेव मीलक्ष्यते तथा श्यामे भूगोले स्थिते सति (चन्द्रोदय के बाद जैसे वृक्षमात्र में नीलता देखी जाती है उस प्रकार भूमण्डल के होने पर) । चौ० सं० में 'चन्दो पेक्ख कलक्कमेण' पाठ है तदनुसार अर्थ होगा 'कलाओं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

असोसणममोहणं मग्ररलंछणस्साउहं
मिग्रंककिरणावली णहग्रलम्मि पुंजिज्जदि ॥ २६ ॥

अशोषणममोहनं मकरलाच्छनस्यायुधं
मृगाङ्ककिरणावली नभस्तले पुञ्जीभवति ॥ २६ ॥

मंडनी भूसणं, असोसणं अमोहणं मअरलंछणस्साउहं मिअंककिरणावली णहअलम्मि पुंजिज्जइ ॥ २६ ॥

व्याख्या—नास्ति कुङ्कुमं = गन्धद्रव्यविशेषः यस्मिन् तत् अकुङ्कुमं = कुङ्कुमरहितं, नास्ति चन्दनं यस्मिन् तत् अचन्दनं = चन्दनविरहितं, तथापि दशानां=दशसंख्याकानां दिक्वधूनां = दिगङ्गनानां मण्डनं = लेपनद्रव्यविशेषमाभूषणं वा। यद्वा दश दिशा एव वध्वः तासां मण्डनं दशदिक्वधूमण्डनम्। अकङ्कणं = कङ्कणविहीनम्, अकुण्डलं = कुण्डलरहितं तथापि भुवनमण्डल्या = संसारस्य भूषणम् = अलङ्करणम्। अशोषणं=शोषणरहितं, अमोहनं = मोहनवर्जितं तथापि मकरोऽस्ति लाञ्छनं=चिह्नं ध्वजा यस्य सः तस्य मकरलाञ्छनस्य = कामदेवस्य, आयुधं = शस्त्रम्। मृगाङ्कस्य = चन्द्रस्य किरणानाम् आवली = माला, नभस्तले = आकाशप्रदेशे, पुञ्जीभवति=राशीरभूता भवति। इत्थं चन्द्रोदयवर्णनपुरःसरेण तस्य कामोद्दीपनकारणता प्रकटीकृता। कारणाभावे कार्योत्पत्तिदर्शनात् विभावनालङ्कारः। विरोधश्च। पृथ्वीवृत्तम् ॥ २६ ॥

मण्डन है। कंगन नहीं, कुण्डल भी नहीं, फिर भी भूमण्डल का आभूषण है शोषण नहीं, मोहन भी नहीं फिर भी कामदेव का आयुध है। ऐसी चन्द्रमा की किरणावली आकाश में एकत्रित हो रही है ॥ २६ ॥[1]

के क्रम से चन्द्रमा पूर्ण हो गया है; उसे देखें। उपमा अलङ्कार है।

१. कुङ्कुम और चन्दन ये आलेपन के साधन हैं, कङ्कण और कुण्डल आभूषण हैं, शोषण और मोहन ये कामदेव के शस्त्र हैं। इन प्रसिद्ध साधनों के अभाव में भी चन्द्रमा में अथवा चन्द्रकिरणावली में मण्डनत्व, आभूषणत्व

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदूषकः—भो, एसा कंचणचंडेण वण्णिदा चंदुज्जोअलच्छी। ता संपदं माणिक्कचंडस्सावसरो।

(नेपथ्ये)

द्वितीयो वैतालिकः—

उज्झंतागुरुधूववट्टिवलआ (वत्तिकलिया) दिज्जंतदीवुज्जला
लंबिज्जंतविचित्तमोत्तिअलदा मुच्चंतपारावआ।

विदूषकः—भोः, एषा काञ्चनचण्डेन वर्णिता चन्द्रोद्योतलक्ष्मीः। तत्साम्प्रतं माणिक्यचण्डस्यावसरः।

(नेपथ्ये)

द्वितीयो वैतालिकः—

दह्यमानागुरुधूपवर्तिवलया (कलिका) दीयमानदीपोज्ज्वला
लम्ब्यमानविचित्रमौक्तिकलता मुच्यमानपारावताः।

अन्वयः—उज्झंतागुरुधूववट्टिवलआ, दिज्जंतदीवुज्जला, लंबिज्जंत-

विदूषक—यह कञ्चनचन्द्र ने चन्द्रमा की चांदनी की शोभा का वर्णन किया। अब मणिक्यचन्द्र की बारी है।

[नेपथ्य में]

दूसरा वैतालिक—जिनमें अगुरु और धूपवत्तियां जल रही हैं, दीपक

और आयुधत्व का स्थापन किया है; इससे यहाँ कारण के अभाव में कार्योत्पत्ति रूप विभावना अलङ्कार है। किञ्च भूषणादि से इसका वैचित्र्य प्रतिध्वनित हो रहा है। किञ्च, 'अकुङ्कुम' पद से नवोदित चन्द्रकिरणों का पीतत्व, 'अचन्दन' पद से चन्दन से भी अधिक शीतलता प्रतिध्वनित हो रही है। किञ्च 'दस' शब्द से आभूषण का वैलक्षण्य ध्वनित होता है क्योंकि एक आभूषण एक समय में एक व्यक्ति का आभूषण होता है और यह चन्द्रमा यहाँ एक साथ दश दिशारूपी बधुओं का अलङ्कार है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सज्जिज्जंतमणोज्जकेलिसअणा जंपंतदूईसआ
सेज्जुच्छंगवलंतमाणिणिजणा वट्टंति लीलाघरा ॥ २७ ॥

सज्जीक्रियमाणमनोज्ञकेलिशयना जल्पद्दूतीशताः
शय्योत्सङ्गवलन्मानिनीजना वर्तन्ते लीलागृहाः ॥ २७ ॥

विचित्तमोत्तिअलदा मुच्चंतपारावआ सज्जिज्जंतमणोज्जकेलिसअणा जंपंतदूईसआ सेज्जुच्छंगवलंतमाणिणिजणा लीलाघरा वट्टंति ॥ २७ ॥

व्याख्या—सन्ध्याकाले नायिकानां क्रीडागृहाः = क्रीडामन्दिराणि कथंभूताः ? सौगंन्धसञ्चारार्थं दह्यमानाः = ज्वाल्यमानाः अगुरुधूपानां वर्तय एव वलया (कलिका) = पङ्क्तयः येषु ते दह्यमानागुरुधूपवर्तिवलयाः दीप्यमानैः=प्रज्वाल्यमानैः दीपैः उज्ज्वलाः = प्रकाशिता दीप्यमानदीपोज्ज्वलाः यद्वा दह्यमानेत्यादि "उज्ज्वला इत्यन्तमेकं पदं तदा दह्यमानागुरुधूपयुक्तवर्तिवलयैरेव दीप्यमानदीपोज्ज्वला इति। शोभार्थं लम्बमानाः विचित्राः = रमणीयाः मौक्तिकलताः येषु ते लम्बमानविचित्रमौक्तिकलताः, सुरतोद्दीपनार्थं मुच्यमानाः = स्वनिवासस्थानात् मुच्यमानाः पारावता = कपोताः येषु ते मुच्यमानपारावताः, एते सुरतोद्दीपकाः खलु। शयनार्थं सज्जीक्रियमाणानि = रचितानि मनोज्ञानि=मनोहराणि केलिशय्यानि = पर्यङ्काः येषु ते सज्जीक्रियमाणमनोज्ञकेलिशयना, सेवार्थं जल्पन्ति = अन्योन्यं भाषन्ते दूतीनां = परिचारिकाणां शतानि येषु ते जल्पद्दूतीशताः, प्रियागमनपरि-

जलाये जा रहे हैं, चमकते हुए मोतियों के हार (मौक्तिक लतायें) लटक रहे हैं, पारावत (कबूतर) छोड़े जा रहे हैं, मनोहर केलिशय्यायें सजायी जा रही हैं, सैकड़ों दूतियां बातचीत कर रही हैं और मानिनी स्त्रियां शय्याओं पर करवटें बदल रही हैं ऐसे ये लीलाघर (शय्याघर) हैं ॥ २७ ॥[1]

१. इसमें सायंकाल के लीलागृहों का वर्णन है। जैसे—अगुरु के धूप से सुगन्धित किए गये हैं। दीपों का जलाकर प्रकाश किया गया है, मोतियों की मालायें लटकाकर सजाया गया है, सुरत के उद्दीपनार्थ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अवि अ—

देंता कप्पूरपूरच्छुरणमिव दिसासुंदरीणं मुहेसुं
लण्हं जोण्हं किरंता भुवणजणमणाणंदणं चंदणं व।
जुण्णं कंदप्पकंदं तिहुअण (णिहुवण) कलणाकंदलिल्लं कुणंता
जादा एणंकपादा सरअजलहरुम्मुक्कधाराणुकारा ॥ २८ ॥

अपि च—

ददतः कर्पूरपूरच्छुरणमिव दिक्सुन्दरीणां मुखेषु
श्लक्ष्णां ज्योत्स्नां किरन्तो भुवनजनमनोन्दनं चन्दनमिव।
जीर्णं कंदर्पकन्दं त्रिभुवन (निधुवन)-कलनाकन्दलितं कुर्वन्तो
जाता एणाङ्कपादाः शरज्जलधरोन्मुक्तधारानुकाराः ॥ २८ ॥

पालनार्थं शय्यायाः = पर्यङ्कस्य उत्सङ्गे = प्रान्तभागे वलन् = इतस्ततः परिसरन् मानिनीजनाः येषु ते शय्योत्सङ्गवलन्मानिनीजनाः। एवम्भूतानि उद्दीपनविभावरूपाणि लीलागृहाणि सन्ति। शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ २७ ॥

अन्वयः—दिसासुंदरीणं मुहेसुं कप्पूरपूरच्छुरणमिव देंता, भुवणजणमणाणंदणं चंदणं व लण्हं जोण्हं किरंता, जुण्णं कंदप्पकंदं तिहुअणकलणाकंदलिल्लं कुणंता एणंकपादा सरअजलहरुम्मुक्कधाराणुकारा जादा ॥ २८ ॥

और भी—

दिशारूपी सुन्दरियों के मुख पर कपूर के चूर्ण का लेप करती हुई,

पारावतों (कबूतरों) को पिंजड़ों से छोड़ दिया गया है, मनोज्ञ शय्यायें सोने के लिए बिछाई गई हैं, दूतियां सेवा करने के लिए तैयार हैं, मानिनी नायिकायें अपने प्रियतम के आगमन का क़रवटें बदलकर इन्तजार कर रही हैं। 'डज्झंत' से 'उज्जला' पर्यन्त एक पद मानने पर अर्थ होगा—'जलायी गई अगुरु और धूप की वर्तिकाओं से दीपक प्रकाशित किये जा रहें हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदूषकः—

दिसवहुत्तंसो (गिरिसुत्तंसो) णहसरहंसो।
णिहुअणकंदो वट्टइ (पसरइ) चंदो।। २६ ॥

विदूषकः—

दिग्वधूत्तंसो नभःसरोहंसः।
निधुवनकन्दो वर्तते (प्रसरति) चन्द्रः ॥ २६ ॥

व्याख्या—संप्रति चन्द्रकिरणानां वर्णनम्। दिशासुन्दरीणां=दिगङ्गनानां मुखेषु = अग्रभागेषु, कर्पूरस्य पूरः कर्पूरपूरः तैः छुरणं कपूरपूरच्छुरणं = कर्पूरचूर्णलेपनमिव ददतः (दा + शतृ) = कुर्वन्तः, एणाङ्कस्य = चन्द्रस्य पादाः = रश्मयः एणाङ्कपादा इति पदं सर्वत्र योज्यम्। अनेन सर्वासु दिक्षु धावल्यं प्रतीयते। भुवनस्य = सर्वलोकस्य जनानां = प्राणिनां मनसामानन्दनम् = आह्लादकं भुवनजनमनोनन्दनं। चन्दनमिव श्लक्ष्णां = कोमलां ज्योत्स्नां =चन्द्रिकां किरन्तः=वर्षन्तः जीर्णं = पुरातनं कन्दर्पकन्दं = काममूलं, त्रिभुवनकलनाकन्दलितमिव त्रिभुवनस्य=सर्वलोकस्य कलनया=व्यापनेन कन्दलितं= प्रवृद्धमिव साङ्कुरमिव वा कुर्वन्तः एणाङ्कपादाः। अनेन कामिषु कामातिशयजनकत्वं किरणानां व्यङ्ग्यम्। शारदीयाः=शरत्कालीयाः ये जलधराः=मेघा तैरुन्मुक्ताः या धाराः=वृष्टिधारा ताः अनुकुर्वन्ति=अनुहरन्ति तत्स दृशमनुचरन्ति ते शरज्जलधरोन्मुक्तधारानुकाराः (पाठान्तरे—जलभरितमेघनिःसृतधारानुसारिणः), जाताः=अभवन्। उपमोत्प्रेक्षारूपकानुप्रासाः। स्रग्धरावृत्तम् ॥ २८ ॥

समस्त संसार के मनुष्यों के मन को आनन्दित करने वाले चन्दन की तरह कोमल चांदनी को बिखेरती हुई, जीर्ण कन्दर्प रूपी कन्द को फिर से अङ्कुरित करकर उसे तीनों भुवनों में व्याप्त करती हुई ये चन्द्रमा की किरणें शरद्कालीन मेघ की वृष्टि के समान हो गई हैं ॥ २८ ॥[1]

१. 'सजलजलहर' पाठ करने पर अर्थ होगा 'जल से युक्त मेघ' परन्तु इसमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुरङ्गिका—
ससहररईअमरट्टो माणिणिमाणघरट्टो ।
णवचंपअकोअंडो मअणो जअइ पचंडो ॥ ३० ॥

कुरङ्गिका—
शशधररचितगर्वो मानिनीमानघरट्टः ।
नवचम्पककोदण्डो मदनो जयति प्रचण्डः ॥ ३० ॥

अन्वयः—दिसवहुत्तंसो णहसरहंसो णिहुअणकंदो चंदो वट्टइ ॥ २९ ॥

व्याख्या—दिश एव वध्वो दिग्वध्वः, तासाम् उत्तंसः दिग्वधूत्तंसः = दिग्वधूकर्णाभूषणं, नभ एव=आकाशमेव सरः=तडागः तस्य हंसः = हंससदृशः नभः सरोहंसः, निधुवनस्य=संभोगस्य कन्दः = उद्दीपकः निधुवनकन्दः चन्द्रोऽयं वर्तते=उदयति प्रसरति वा । रूपकालङ्कारः । 'पसरई' पाठे सति शशिवदना-वृत्तम् । 'वट्टइ' (वर्तते) पाठे तु चउरंसावृत्तम् ॥ २९ ॥

अन्वयः—ससहररईअमरट्टो, माणिणिमाणघरट्टो णवचंपअकोअंडो पचंडो मअणो जअइ ॥ ३० ॥

विदूषक—दिशारूपी वधू का आभूषण, आकाशरूपी सरोवर का हंस तथा सुरतक्रीड़ा [रूपी लता] का मूल यह चन्द्रमा [उदित हो रहा] है ॥ २९ ॥[1]

कुरङ्गिका—चन्द्रमा से गर्वयुक्त (मरट्ट) बनाया गया, मानिनियों के मान को चूर-चूर (घरट्ट=चक्की के समान चूर्ण) करने वाला और

चमत्कार उतना नहीं है जितना कि शरद्कालीन मेघों में है क्योंकि शरद्कालीन मेघों के धवल होने से उसका चन्द्रमा के साथ सादृश्य ठीक बन जाता है । स्रग्धरा छन्द है । उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और अनुप्रास अलङ्कार हैं ।

१. 'दिसवहुत्तंसो' (दिग्वधूत्तंसः) पाठ होने पर अर्थ होगा 'दिशारूपी वधू

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(कर्पूरमञ्जरीं प्रति) पिअसहि ! तए किदं चंदवण्णणं महाराअस्स पुरदो पढिस्सं। (कर्पूरमञ्जरी लज्जते। कुरङ्गिका पठति)

मंडले ससहरस्स गोरए दंतपंजरविलासचोरए।

(कर्पूरमञ्जरीं प्रति) प्रियसखि ! त्वया कृतं चन्द्रवर्णनं महाराजस्य पुरतः पठिष्यामि।

(कर्पूरमञ्जरी लज्जते, कुरङ्गिका पठति)

मण्डले शशधरस्य गौरे दन्तपञ्जरविलासचौरे।

व्याख्या—शशधरेण=चन्द्रेण रचितः=उत्पादितः गर्वः=अभिमानः यस्य सः शशधररचितगर्वः, मानिनीनां=स्ववल्लभैः सह प्रणयप्रसङ्गे रुष्टानामङ्गनानां, मानस्य=प्रणयमानस्य घरट्टः=हिन्दीभाषायां चक्कीति प्रसिद्धः पदार्थः घरट्ट इव मानं मर्दयति वा मानिनीमानघरट्टः। नवचम्पकम् एव=तदाख्यपुष्पमेव कोदण्डः=धनुः यस्य सः नवचम्पककोदण्डः प्रचण्डः – उद्धतः, मदनः=कामः, जयति=सर्वोत्कर्षेण शोभते। उपमालङ्कारः। चउरंसावृत्तम् ॥ ३० ॥

अन्वयः—दंतपिंजरविलासचोरए ससहरस्स गोरए मंडले फुरंतओ लांछणमओ केलिकोइलतुलं धरंतओ भादि ॥ ३१ ॥

नवीन चम्पा के फूल के बने धनुष (कोदण्ड) वाला प्रचण्ड कामदेव [संसार को] जीत रहा है ॥ ३० ॥[1]

[कर्पूरमञ्जरी से] प्रिय सखि ! तुम्हारे द्वारा रचित चन्द्रवर्णन महाराज के सामने पढ़ूँगी।

[कर्पूरमञ्जरी लज्जित होती है। कुरङ्गिका पढ़ती है]

का आभूषण'। 'गिरिसुत्तंसो' (गिरिशोत्तंसः) पाठ होने पर अर्थ होगा 'शिवजी का आभूषण'। 'दिसअवअंसो' (दिशावतंसः) पाठ होने पर अर्थ होगा 'दिशाओं का आभूषण'। कामोत्तेजक होने से यहाँ चन्द्र को 'णिहुअणकंदो' कहा गया है। रूपक अलङ्कार है।

१. 'मरट्ट' देशी शब्द है। इसका अर्थ है 'गर्व'। चन्द्रमा कामोत्तेजक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भादि लांछणमओ फुरंतओ केलिकोइलतुलं धरंतओ ॥ ३१ ॥

राजा—अहो, कप्पूरमंजरीए अहिणवअत्थदंसणं, उत्तिविचित्तत्तणं; रमणीओ सद्दो, रसणिस्संदो अ। (तां प्रति)

भाति लाञ्छनमृगः स्फुरन्केलिकोकिलतुलां धारयन् ॥ ३१ ॥

राजा—अहो कर्पूरमञ्जर्या अभिनवार्थदर्शनम्, उक्तिवैचित्र्यं, रमणीयः शब्दो, रसनिष्यन्दश्च। (तां प्रति)

व्याख्या—दन्तस्य = हस्तिदन्तनिर्मितस्य पञ्जरं तस्य दन्तपञ्जरस्य विलासं = सौन्दर्यं चोरयतीति तस्मिन् दन्तपञ्जरविलासचौरे = हस्तिदन्त-निर्मितशुभ्रपञ्जरादप्युत्कृष्ट इति। शशधरस्य = चन्द्रमसः गौरे = धवलवर्णे मण्डले = वलये, लाञ्छनमृगः = कलङ्करूपो मृगः, स्फुरन् केलये कोकिलः केलिकोकिलः तस्य तुलां केलिकोकिलतुलां = क्रीडापिकसादृश्यं धारयन् भाति = शोभते। चन्द्रमण्डलं हस्तिदन्तादपि शुभ्रं, तद्गतकलङ्कश्च क्रीडा-पिक इव भाति। रूपकोपमानुप्रासाः। रथोद्धतावृत्तम् ॥ ३१ ॥

अन्वयः—तुह वअणेण कहिं पि विब्भमो मा होहिइ त्ति इंदुणा णिए बिंबवलए लंछणच्छलमसीविसेसओ कदो णूणं [इति] पेक्ख ॥ ३२ ॥

हाथीदांत के बने पिंजड़े की सुन्दरता को चुरा लेनेवाले चन्द्रमा के गौरमण्डल में परिलक्षित लाञ्छनमृग क्रीडा-कोयल की तरह शोभायमान है ॥ ३१ ॥[1]

राजा—वाह! कर्पूरमञ्जरी का अभिनव-अर्थ दर्शन, उक्ति-वैचित्र्य मनोहर शब्द तथा रस निष्पत्ति [अपूर्व है]। [कर्पूरमञ्जरी से]

माना जाता है। अतः यहाँ कामदेव के गर्व का जनक उसे कहा गया है। घरट्ट' शब्द का अर्थ है 'चक्की' अर्थात् चक्की की तरह मान को पीस देने वाला। घरट्ट शब्द का 'अर्थ' तोप भी होता है जिससे भी यही अर्थ निकलता है—'मान को भून देने वाला'। यहाँ उपमा अलङ्कार है और छन्द चउरंसा है।

१. उपमा, रूपक और अनुप्रास अलङ्कार हैं। चन्द्रमा को हस्तिदन्त से भी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मा कहिं पि वग्रणेण विब्भमो होहिइ त्ति तुह णूणमिंदुणा ।
लंछणच्छलमसी विसेसग्रो पेक्ख बिंबवलए णिए कदो ।। ३२ ।।

ग्रपि च—

पंडुरेण ! जइ रज्जए मुहं कोमलंगि ! खडिग्रारसेण दे ।

मा कथमपि वदनेन विभ्रमो भविष्यतीत्ति तव नूनमिन्दुना ।
लाञ्छनच्छलमषीविशेषकः पश्य बिम्बवलये निजे कृतः ।। ३२ ।।

अपि च—

पाण्डुरेण यदि रज्यते मुखं कोमलाङ्गि ! खटिकारसेन ते ।

व्याख्या—नूनं = निश्चयेन, तव = कर्पूरमञ्जर्याः, वदनेन = मुखेन, कथमपि विभ्रमः = भ्रान्तिः मा भवतु इति विचिन्त्य इन्दुना = चन्द्रेण, निजे = स्वकीये, बिम्बफलके = मण्डले, लाञ्छनस्य = कलङ्कस्य, छलेन = व्याजेन मसीविशेषकः (मस्याः विशेषकः) = कृष्णचिह्नतिलकः कृतः = विहितः; इति त्वं पश्य अवलोकय । रथोद्धतावृत्तम् ।। ३२ ।।

अन्वयः—कोमलंगि जइ पंडुरेण खडिआरसेण दे मुहं रज्जए, पुण कवोलकज्जलं दिज्जए ता ससिणो विडंबणं लहेज्ज ।। ३३ ।।

तुम्हारे मुख के साथ कहीं [चन्द्रमा का] भ्रम न हो जाए इसीलिए निश्चय ही चन्द्रमा ने अपने बिम्बमण्डल [रूपी मुख] पर लाञ्छन (कलंक) के बहाने काजल का डिठौना (मसी विशेषक=काला तिल) लगा दिया है, इसे आप देखें ।। ३२ ।।

और भी

हे कोमलाङ्गि ! यदि सफेद खड़िया का रस तुम्हारे मुख पर लगाया

अधिक शुभ्र कहा है । चन्द्रगत कलङ्क की केलिकोकिल के साथ तुलना करके कर्पूरमञ्जरी ने अभिनवार्थ का प्रयोग किया है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दिज्जए पुण कवोलकज्जलं ता लहेज्ज ससिणो विडंबणं ।। ३३ ।।

(चन्द्रमुद्दिश्य)

मुक्कसंक ! हरिणंक ! किं तुमं सुंदरीपरिसरेण हिंडसे ।
गोरगंडपरिपंडुरत्तणं पेच्छ दिण्णमिमिणा मुहेण दे ।। ३४ ।।

दीयते पुनः कपोलकज्जलं तदा लभेत शशिनो विडम्बनम् ।। ३३ ।।

(चन्द्रमुद्दिश्य)

मुक्तशङ्क ! हरिणाङ्क ! किं त्वं सुन्दरीपरिसरेण हिण्डसे ।
गौरगण्डपरिपाण्डुरत्वं प्रेक्षस्व दत्तमनेन मुखेन ते ।। ३४ ।।

व्याख्या—कोमलं = सुकुमारं मनोहरं वा अङ्गं यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ हे कोमलाङ्गि = हे सुकुमारशरीरे ! यदि पाण्डुरेण = धवलेन, खटिकायाः रसस्तेन खटिकारसेन, ते = कर्पूरमञ्जर्याः मुखं = वदनं, रज्यते = लिप्यते, पुनस्तत्र कपोलयोः कज्जलं कपोलकज्जलं दीयते चेत्तदा शशिनः = चन्द्रमसः, विडम्बनं = सादृश्यं, लभते = प्राप्नोति । अनेन कर्पूरमञ्जर्याः मुखस्य वैशिष्ट्यं ध्वन्यते । अतिशयोक्तिरलङ्कारः । रथोद्धतावृत्तम् ।। ३३ ।।

अन्वयः—मुक्कसंक हरिणंक ! तुमं किं सुंदरीपरिसरेण हिंडसे । इमिणा मुहेण दे गोरगण्डपरिपंडुरत्तणं दिण्णं [इति] पेच्छ ।। ३४ ।।

जाए और फिर गालों पर काजल [का डिठौना] लगा दिया जाए तो चन्द्रमा [तुम्हारे मुख की] समता को प्राप्त कर लेगा ।। ३३ ।।[1]

[चन्द्रमा को उद्देश्य करके]

अरे निर्लज्ज चन्द्र ! तुम क्यों इस सुन्दरी के चारों ओर घूम रहे हो ?

---

१. तुम्हारा मुख निष्कलङ्क है और चन्द्रमा सकलङ्क है । इस तरह व्यतिरेक अलङ्कार व्यङ्ग्य है । अथवा जैसे कोई व्यक्ति दो समान वस्तुओं में होने वाले भ्रम को दूर करने के लिए कोई चिह्न बना देता है वैसे ही चन्द्रमा में किया गया है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(नेपथ्ये महान्कलकलः । सर्वे आकर्णयन्ति)

राजा—किं पुण एसो महाकोलाहलो ?

कर्पूरमञ्जरी—(ससाध्वसम्) पिअसहि ! एदं अवगमिअ आगच्छ ।

(नेपथ्ये महान्कलकलः । सर्वे आकर्णयन्ति)

राजा—किं पुनरेष महाकोलाहलः ?

कर्पूरमञ्जरी—(ससाध्वसम्) प्रियसखि ! एतदवगम्यागच्छ ।

व्याख्या—मुक्ता शङ्का येन सः तत्सम्बुद्धौ हे मुक्तशङ्क = हे निःशङ्क निर्लज्ज ! हे हरिणाङ्क = हे चन्द्र ! त्वं - चन्द्रः किं = किमर्थं, सुन्दर्याः = कर्पूरमञ्जर्याः परिसरेण = सन्निकटेन, हिण्डसे = परिभ्रमसि ? अनेन कर्पूरमञ्जर्याः मुखेन = आननेन, ते = तव, गौरयोः धवलवर्णयोः गण्डयोः = कपोलयोः परिपाण्डुरत्वं = पीतत्वं दत्तमिति पश्य । कर्पूरमञ्जर्याः मुखेन चन्द्रविम्बस्य सौन्दर्यं जितमिति । पराजितः खलु लज्जया पुनः पुरो न आयाति परन्तु त्वं अस्याः मुखस्य विद्यमानत्वेऽपि आकाशे परिभ्रमसि इति निर्लज्जोऽसि त्वमिति । 'न हिण्डसे' इति पाठे तु हे निर्लज्ज हरिणाङ्क ! अमुना कर्पूरमञ्जर्या मुखेन तुभ्यं गौरगण्डपरिपाण्डुरत्वं=धवलिमा दत्तं = संपादितं, पुनः किमर्थं तस्याः परिसरे न हिण्डसे । त्वया खलु कृतज्ञतां प्रकटयितुं परिभ्रमितव्यम् अन्यथा कृतघ्नः त्वं भविष्यसि । व्यतिरेकालंकारः । रथोद्धतावृत्तम् ॥ ३४ ॥

इस (कर्पूरमञ्जरी) के मुख ने तुम्हारे गौर वर्णवाले बिम्ब को पीला बना दिया है (तुच्छ बना दिया है), इसे देखो ॥ ३४ ॥[1]

[नेपथ्य में बड़ा कोलाहल होता है, सभी सुनते हैं]

राजा—यह कैसा कोलाहल है ?

कर्पूरमञ्जरी—[घबड़ाहट के साथ] प्रिय सखि ! इसे पता लगाकर आओ ।

---

१. प० वासुदेव ने इस श्लोक का अर्थ भिन्न प्रकार से किया है । तदनुसार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(कुरङ्गिका निष्क्रम्य प्रविशति)

विदूषकः—देवीए पिअवअस्सस्स वंचणा किदे त्ति तक्केमि ।

(एदं जेव पिअवअस्सं वंचणागदं अवगमिअ आअच्छदि देवी)

कुरङ्गिका—पिअसहि ! भट्टारअस्स वंचणं कदुअ तुए सह संगमं

[कुरङ्गिका निष्क्रम्य प्रविशति]

विदूषकः—देव्या प्रियवयस्यस्य वञ्चना कृतेति तर्कयामि ।

(एतमेव प्रियवयस्यं वञ्चनागतमवगम्यागच्छति देवी)

कुरङ्गिका—प्रियसखि !, भट्टारकस्य वञ्चनां कृत्वा त्वया सह संगमं

[कुरङ्गिका बाहर जाकर पुनः प्रवेश करती है]

विदूषक—देवी ने प्रियमित्र को धोखा दिया, ऐसा समझता हूँ ।[1]

कुरङ्गिका--प्रिय सखि ! धोखा देकर महाराज का तुम्हारे साथ

अर्थ होगा—'हे निर्लज्ज चन्द्र ! जिस सुन्दरी के मुख ने तुम्हारे कपोलों पर सफेदी दी है उस सुन्दरी के पास तुम क्यों नहीं घूमते' इससे यह प्रतिध्वनित होता है कि तुम्हें इसकी सेवा करना चाहिए। संभव है सेवा से और विशेष लाभ हो जाए। परन्तु यह अर्थ चिन्त्य है। 'मुहे ण दे' पाठ होने पर पं० वासुदेव के अर्थ को लगाया जा सकता है। यहाँ रथोद्धता छन्द है। रत्नावली के निम्न श्लोक से इसकी तुलना कीजिए—

'आरुह्य शैलशिखरं त्वद्वदनापहृतकान्तिसर्वस्वः ।
प्रतिकर्तुमिवोर्ध्वकरः स्थितः पुरस्तान्निशानाथः ॥ ३.१२ ॥

१. यहाँ क्रम-प्राप्त कुरङ्गिका का वक्तव्य उचित था पश्चात् विदूषक का कथन होना चाहिए था। मनमोहन घोस तथा पोद्दार जी के संस्करण में कुरङ्गिका का वक्तव्य ही नहीं है। विदूषक ही वहाँ कुरङ्गिका के वक्तव्य को भी कहता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जाणिअ आअच्छदि देवी। ता कुज्जवामणकिरादवरिसधरसोविदल्लाणं एसो हलबोलो।

कर्पूरमञ्जरी—(सभयम्) ता मं पेसेदु महाराओ जेण अहं इमिणा सुरंगामुहेण ज्जेव पविसिअ रक्खाघरं गच्छामि। जाव देवी महाराएण सह संगमं ण जाणादि।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति तृतीयं जवनिकान्तरम्।

ज्ञात्वा आगच्छति देवी। तेन कुब्जवामनकिरातवर्षवरसौविदल्लानामेष कोलाहलः।

कर्पूरमञ्जरी—(सभयम्) तन्मां प्रेषयतु महाराजो येनहमनेन सुरङ्गामुखेनैव प्रविश्य रक्षागृहं गच्छामि। यावद् देवी महाराजेन सह संगमं न जानाति।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति तृतीयं जवनिकान्तरम्।

समागम जानकर देवी आ रही है। इसीलिए कुब्जों (कुबड़ों), वामनों (नाटों), किरातों (अन्तःपुर के रक्षक भिल्ल आदि), वर्षवरों (हिंजड़ों) और सौविदल्लों (अन्तःपुर-रक्षकों) का यह कोलाहल है।

कर्पूरमञ्जरी—[भय के साथ] तो महाराज मुझे जाने की आज्ञा दें जिससे मैं इसी सुरङ्गद्वार से प्रवेश करके रक्षागृह में चली जाऊँ और महाराज के साथ हुए [मेरे] समागम को देवी न जान पायें।

[सभी चले जाते हैं]

तीसरा जवनिकान्तर समाप्त।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चतुर्थं जवनिकान्तरम्

(ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च)

राजा—अहो,

गाढअरुम्हो गिम्हो पबलो मअणो कहं णु सोढव्वो।
सा उण सारंगच्छी एक्कघरे वि दुल्लहा विहिणा ॥ १ ॥

[ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च]

राजा—

गाढतरोष्मा ग्रीष्मः प्रबलो मदनः कथं नु सोढव्यः।
सा पुनः सारङ्गाक्षी एकगृहेऽपि दुर्लभा विधिना ॥ १ ॥

अन्वयः—गाढअरुम्हो गिम्हो [तथा] पवलो मअणो कहं णु सोढव्वो। उण एक्कघरे वि विहिणा सा सारंगच्छी दुल्लहा [जाता] ॥ १ ॥

[राजा और विदूषक का प्रवेश होता है]

राजा—अहो !

तीव्र ऊष्मा वाली गर्मी है और प्रबल मदन [-पीड़ा] है। कैसे सहन किया जाए ? किञ्च, [सहन करने मे सहयोगिनी उस कपूरमञ्जरी के] एक ही घर में रहने पर भी [मेरे] भाग्य ने उस सारङ्गाक्षी (कर्पूरमंजरी) से मिलना दुर्लभ बना दिया है ॥ १ ॥[1]

---

१. निर्णयसागर, घोष तथा पोद्दार जी के संस्करण में यह गाथा नहीं है। वहाँ पाठ है—'अहो ! गाढअरो गिम्हो पवणो अ पअंडो। ता कधं णु सहिदव्वो ? जदो' (अहो। गाढतरो ग्रीष्मः, पवनश्च प्रचण्डः। तत्कथं नु सोढव्यः ? यतः)। तदनुसार अर्थ है—अरे ! भीषणगर्मी है और प्रबल वायु है। कैसे सहन करें ? क्योंकि'।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जदो—

इह कुसुमसरेक्कगोअराणं इदमुभअं पि हु दूसहं ति मण्णे।
जरढरइकरालिओ अ कालो सह अ जणेण पिएण विप्पलंभो ॥ २ ॥

यतः—

इह कुसुमशरैकगोचराणमिदमुभयमपि सुदुःसहमिति मन्ये ।
जरठरविकरालितश्च कालः सह च जनेन प्रियेण विप्रलम्भः ॥२॥

व्याख्या— गाढतरा=प्रबलतरा, ऊष्मा=तापः गाढतरोष्मा, ग्रीष्मः= ग्रीष्मकालः, प्रबलः=प्रचण्डः, मदनः=कामश्च कथं नु सोढव्यः (सोढव्यौ); असह्य इत्यर्थः । पुनश्च एकस्मिन्=एकत्र, गृहे=भवने वर्तमानेऽपि, विधिना= दुर्विपाकेन, सा=प्रसिद्धा, सारङ्गस्य अक्षिणी इव अक्षिणी यस्याः सा सारङ्गाक्षी=कर्पूरमञ्जरी, दुर्लभा=अप्राप्या जाता । आर्यावृत्तम् ॥ १ ॥

अन्वयः—इह कुसुमसरेक्कगोअराणं इदं उभअं पि दूसहं ति मण्णे खु, जरढरइकरालिदो कालो अ पिएण जणेण सह अ विप्पलंभो ॥ २ ॥

व्याख्या—इह=जगति, कुसुमानि एव शराः यस्य सः कुसुमशरः= कामदेवः तस्य एकगोचराणाम्=एकमात्रविषयाणां कामार्तानाम् इदमुभयमपि दुःखेन सोढुं शक्यमिति दुःसहमस्तीति, मन्ये=जानामि; जरठेन=प्रचण्डेन; रविणा=सूर्येण करालितः=कवलितः कालः=ग्रीष्मसमयः, सुभगेन=सुन्दरेण जनेन सुभगसुन्दरेण = सुखदेन वा प्रियेण = दयितेन जनेन सह च विप्रलम्भः= वियोगश्च । पुष्पिताग्रावृत्तम् ॥ २ ॥

क्योंकि—

इस संसार में कामार्तों (शब्दानुसार—कामदेव के बाणों के एकमात्र लक्ष्य) के लिए इन दोनों को ही दुस्सह मानता हूँ—प्रचण्ड सूर्य के आतप से विकराल (भयंकर) ग्रीष्मऋतु तथा सुखदायी प्रियजन से वियोग ।।२।।[१]

१. कामार्तों के लिए ग्रीष्म ऋतु तथा प्रियतमा का वियोग कष्टकर होता है। वस्तुतः प्रियतमाओं का वियोग ही उन्हें कष्टकर है जो गर्मी से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदूषकः—

[एक्के दाव मम्मह बाहणिज्जा अण्णे दाव सोसणिज्जा ।
अम्हारिसो उण जणो ण कामस्स बाहणिज्जो ण तावस्स सोसणिज्जो ।]

विदूषकः—

एके तावन्मदनबाधनीयाः, अन्ये तापशोषणीयाः ।
अस्मादृशः पुनर्जनो न कामस्य बाधनीयो न तापस्य शोषणीयः [॥१॥]

अन्वयः—स्पष्टम् ॥ [१] ॥

विदूषक—कुछ लोग (कामार्त) काम से पीड़ित हैं तथा कुछ लोग (अन्य सुकुमार जन) गर्मी से सूख रहे हैं; परन्तु हमारे जैसे लोगों को न तो काम सताता है और न ताप ही शोषित करता है ।[१]

और अधिक कष्टकर हो जाता है । यदि प्रियतमा का समागम हो जाता है तो गर्मी सह्य हो जाती है । 'सलाहणिज्जो' (श्लाघनीयः) पाठ मानने पर तो गर्मी श्लाघनीय हो जाती है । राजा स्वयं तीसरे श्लोक के बाद कहता है 'णिउणं सेवणिज्जो जइ सुहअसंगमो' । प्रथम गाथा में भी आया है कि उस सारङ्गाक्षी के विना कैसे गर्मी और मदनपीड़ा को सहन किया जाये । किञ्च, सामान्य पुरुषों के लिए न तो ग्रीष्म संतापदायी है और न कामदेव । जैसा कि विदूषक के अगले कथन से स्पष्ट है । 'सह अ जणेण पिएण । (सह च जनेन प्रियेण) पाठ करने पर अर्थ होगा—'और प्रियजन के साथ वियोग' । 'तह अ' (तथा च) पाठ से अर्थ में कोई अन्तर नहीं आता है । 'सह अ' के स्थान पर प्रियजन का 'सुहअ' विशेषण साभिप्राय है—सुभग = सुन्दर (सौभाग्यशाली) प्रियजन का वियोग अथवा सुखदायी प्रियजन का वियोग' । यह प्रतिध्वनित करता है कि इसके रहने पर गर्मी सह्य हो जाती है । साभिप्राय विशेषण होने से परिकरालङ्कार है ।

१. पं० रामकुमार आचार्य ने विदूषक के इस कथन को पद्यबद्ध रूप में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(नेपथ्ये)

ता किं णु (ण) क्खु दे समूलुप्पाडिदचूडियं (चूडिग्राविग्रलं) सीसं करइस्सं (करिस्सं) ।

राजा - (विहस्य) वग्रस्स ! लीलावणसच्छंदचारिणा केलि-सुएण किं भणिग्रं ?

विदूषकः—(सक्रोधम्) ग्रा दासीए पुत्त ! सूलाग्ररण (भुत्थल्ल)-जोग्गो सि ।

(नेपथ्ये)

तत्कि न खलु ते समूलोत्पाटितचूलिकं (चूलिकाविकलं) शीर्षं करिष्ये ।

राजा—[विहस्य] वयस्य ! लीलावनस्वच्छन्दचारिणा केलिशुकेन किं भणितम् ?

विदूषकः—[सक्रोधम्] आः दास्याः पुत्र ! शूलाकरणयोग्योऽसि (मार्जारीभुक्तियोग्योऽसि) ।

व्याख्या—एके=केचिज्जनाः, तावत् मदनेन=कामेन बाधनीयाः= पीडनीयाः मदनबाधनीयाः; अन्ये=अपरे जनाः, तापेन=ग्रीष्मेण सूर्योष्मणा शोषणीयाः=संतप्ताः तापशोषणीयाः; पुनः अस्मादृशः जनः=विदूषकसदृशलोकः न कामस्य (कामेन) बाधनीयो न वा तापस्य (तापेन) शोषणीय इति [॥ १ ॥]

[नेपथ्य में]

तुम्हारे सिर से शिखा (चोटी) को जड़सहित उखाड़ लूँ क्या ? (शब्दानुसार—जड़ सहित शिखा को उखाड़कर तुम्हारे सिर को [कुरूप] क्यों न कर दूँ ?)

राजा—[हंसकर] लीलावन में स्वच्छन्द विचरण करने वाले केलि-शुक (तोता) ने क्या कहा ?

दिया है, अन्य सुरु आदि ने गद्य रूप में दिया है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(नेपथ्ये)

सव्वं तुम्हारिसाहिंतो संभावीअदि, जदि मे ण होंति पक्खावलीओ।

राजा—(विलोक्य) कधं उड्डीणो विम्र। (विदूषकं प्रति)

णिसा तलिणवित्थरा तह दिणस्स वड्ढत्तणं
ससी लहइ खंडणं तह अखंडबिंबो (चंडबिंबो) रई।
णिदाहदिअसेसु विप्फुरइ जस्स एस क्कमो
कहं ण स विही तओ खुरसिहाहि खंडिज्जइ ॥ ३ ॥

(नेपथ्ये)

सर्वं युष्मादृशेभ्यः संभाव्यते, यदि मे न भवन्ति पक्षावल्यः।

राजा—[विलोक्य] कथमुड्डीन एव। [विदूषकं प्रति]

निशास्तलिनविस्तारास्तथा दिनस्य वृद्धत्वं
शशी लभते खण्डनं तथाऽखण्डबिम्बो (चण्डबिम्बः) रविः।
निदाघदिवसेषु विस्फुरति यस्यैष क्रमः
कथं न स विधिस्ततः क्षुरशिखाभिः खण्ड्यते ॥ ३ ॥

अन्वयः—णिसा तलिणवित्थरा तह दिणस्स वड्ढत्तणं। ससी खंडणं तह रई अखंडबिंबो लहइ। णिदाहदिअसेसु जस्स एस क्कमो विप्फुरइ स विही तदो खुरसिहाहि कहं ण खंडिज्जइ ॥ ३ ॥

विदूषक—[क्रोध के साथ] अरे दासीपुत्र (नीच)! फाँसी देने (शूल से वेधन करने) के योग्य हो। (पाठान्तरानुसार—बिल्ली के द्वारा भक्षणीय हो)।

[नेपथ्य में]

तुम्हारे जैसे लोगों से सब कुछ संभव है यदि मेरी पंखावली न हो।

राजा—[देखकर] क्या उड़ गया है ? [विदूषक से]—

रात्रियाँ छोटी तथा दिन बड़े हो जाते हैं। चन्द्रमा ह्रासशील (अल्पकान्ल-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किं च, णिउणं सेवणिज्जो (सलाहणिज्जो) जइ सुहअसंगमो भोदि। जदो—

मज्झण्णे सिरिखंडपंककलणा आसंझमोल्लंसुअं
लीलामज्जणमापओससमअं साअं सुरा सीअला।

किं च निपुणं सेवनीयो (श्लाघनीयः) यदि शुभगसंगमो भवति। यतः—

मध्याह्ने श्रीखण्डपङ्ककलना आसंध्यमार्द्रांशुकं
लीलामज्जनमाप्रदोषसमयं सायं सुरा शीतला।

व्याख्या—ग्रीष्मर्तौ निशा=रात्रिः तलिनं (तल्+इनन्)=सूक्ष्मं विस्तरा=विस्तारा यस्याः सा तथा तलिनविस्तरा, दिनस्य=दिवसस्य वृद्धत्वं= विस्तृतत्वं, दिनानि दीर्घाणि भवन्ति, रात्रयः अल्पकालीनाः भवन्तीति। शशी=चन्द्रः, खण्डनं=ह्रासमल्पकालस्थायित्वं वा लभते=प्राप्नोति, रविः= सूर्यः, न खण्डितं बिम्बं यस्य सः अखण्डबिम्बः=तीव्रातपेन सहितो भवति। सूर्यः दीर्घं तपति चन्द्रश्च स्वल्पं गगने तिष्ठति। निदाघस्य=ग्रीष्मस्य दिवसेषु= दिनेषु निदाघदिवसेषु, यस्य=प्रजापतेः एषः क्रमः=नियमः, विस्फुरति= प्रसरति, सः विधिः=प्रजापतिः, क्षुरस्य शिखाभिः=धाराभिः क्षुरशिखाभिः कथं न खण्ड्यते=भिद्यते। अवश्यमेव छेत्तव्य इति भावः। पृथ्वीवृत्तम् ।। ३ ।।

स्थायी) तथा सूर्य अखण्डबिम्ब (दीर्घकालस्थायी) हो जाते हैं। ऐसे गर्मी के दिनों में जिस विधाता का ऐसा क्रम है उसे क्षुरे की धार से क्यों न काट दिया जाए ? ।। ३ ।।[१]

यदि प्रियजन का समागम हो तो [यह ग्रीष्म काल] अच्छी तरह से सेवनीय है। क्योंकि—

१. ग्रीष्मकाल में दिन बड़े तथा रात्रियां छोटी होने लगती हैं अतः यहाँ कहा गया है कि चन्द्र खण्डित हो जाता है और सूर्य अखण्डबिम्बवाला रहता है। 'चंडबिंबो' पाठ होने पर अर्थ होगा 'प्रचण्डताप-मण्डलवाला सूर्य'।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गिम्हे पच्छिमजामिणीणिहुवणं जं किं पि पंचेसुणो
एदे पंच सिलीमुहा विजइणो सेसा सरा जज्जरा ॥ ४ ॥

ग्रीष्मे पश्चिमयामिनीनिधुवनं यत्किमपि पञ्चेषो-
रेते पञ्च शिलीमुखा विजयिनः शेषाः शरा जर्जराः ॥ ४ ॥

अन्वयः—गिम्हे मज्झण्णे सिरिखंडपंककलणा, आसंझमोल्लंसुअं, आपओससमअं लीलामज्जणं, साअं सीलआ सुरा, जं किं पि पच्छिमजामिणी-णिहुवणं, पंचेसुणो एदे पंच सिलीमुहा विजइणो, सेसा सरा जज्जरा [सन्ति] ॥ ४ ॥

व्याख्या—ग्रीष्मे = निदाघसमये, अह्नोर्मध्यं मध्याह्नस्तस्मिन् मध्याह्ने = दिवसमध्यकाले, श्रीखण्डस्य = चन्दनस्य पङ्कः = रसः तस्य कलना = लेपः श्रीखण्डपङ्ककलना। सन्ध्यायाः आ आसन्ध्यं = सायंकाल-पर्यन्तम् आर्द्रं च तदंशुकमिति आर्द्रांशुकं = जलसिक्तवस्त्रं परिधानीयम्। प्रदोषसमयात् आ आप्रदोषसमयं = प्रदोषकालपर्यन्तं, लीलया = क्रीडया मज्जनं = स्नानं लीलामज्जनं = जलक्रीडा कर्तव्या। सायं = सायंकाले, शीतला सुरा = मदिरा, पेया = पानीयम्। पश्चिमा यामिनी पश्चिम-यामिनी तस्यां पश्चिमयामिन्यां = रात्रिशेषे रात्रेरन्तिमे प्रहरे यत् किमपि = अनिर्वचनीयमलौकिकमानन्ददायकं, निधुवनं = सुरतमुपभोक्तव्यम्। पञ्च इषवः बाणाः सन्ति यस्य तस्य पञ्चेषोः = कामदेवस्य 'अरविन्दमशोकं च चूतं च नवमल्लिका। नीलोत्पलं च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायकाः।' एते चन्दनलेपादयः पञ्चशिलीमुखाः = बाणाः विजयिनः = परकोत्कर्ष-शालिनाः सार्थका वा सन्ति, अन्ये = अरविन्दादिप्रसिद्धशरास्तु, जर्जराः = जीर्णाः निष्फलाः निष्प्रभावाश्च सन्ति। शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ ४ ॥

ग्रीष्मकाल में मध्याह्न (दोपहर) में चन्दन का लेप करना, सायंकाल तक गीले वस्त्र पहनना, प्रदोषकाल (रात्रि का प्रारम्भकाल) तक जल-क्रीड़ा (लीलापूर्वक स्नान) करना, सायंकाल शीतल मदिरा का पान करना तथा रात्रि के उत्तरार्ध में अनिर्वचनीय आनन्ददायी सुरत-भोग करना—ये

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदूषकः —मा एवं भण—
पंडुच्छविच्छुरिदणाअ-लदा-दलाणं
साहारतेल्लपरिपेसलपोप्फलाणं ।
कप्पूरपंसुपरिवासिदचंदणाणं
भद्दं णिदाहदिअहाणं वअस्स ! भोदु (होंउ) ॥ ५ ॥

विदूषकः—मैवं भण—
पाण्डुच्छविच्छुरितनागलतादलानां
सहकारतैलपरिपेशलपूगफलानाम् ।
कर्पूरपांसुपरिवासितचन्दनानां
भद्रं निदाघदिवसानां वयस्य ! भवतु ॥ ५ ॥

अन्वयः—वअस्स ! पंडुच्छविच्छुरिदणाअलदादलाणं, साहारतेल्लपरिपेसलपोप्फलाणं, कप्पूरपंसुपरिवासिदचंदणाणं णिदाहदिअहाणं भद्दं भोदु ॥ ५ ॥

व्याख्या—वयस्य = मित्र, पाण्डुश्चासौ छविः पाण्डुच्छविः पाण्डुच्छ-

ही कामदेव के पाँच वाण उत्कृष्ट (विजयशील) हैं, शेष बाण जर्जर हो गए हैं । ४ ॥[1]

विदूषक—ऐसा न कहिए—

मित्र ! पाण्डुरंग की आभा से व्याप्त पान की लताओं (नाग-लताओं) के पत्तों से युक्त, आम के पराग (मधुरस) के संपर्क से कोमल सुपारियों (पूगफलों) से युक्त तथा कपूर के पराग से सुगन्धित चन्दनों से युक्त गर्मी

१. कामदेव के पाँच वाण प्रसिद्ध हैं जिससे उसे 'पञ्चेषुणः' कहा गया है । वे ५ वाण हैं— अरविन्द, अशोक, आम्र, नवमल्लिका और नीलकमल ये पाँचों ही पुष्प हैं जिससे उसे 'पुष्पधन्वा' भी कहा जाता है । राजा का यहाँ कथन है कि ये जो ५ बाण हैं वे पुराने पड़ गये हैं । लक्ष्यवेधन में समर्थ असली पाँच बाण ये हैं—(१) चन्दन का लेप, (२) आर्द्र वस्त्र, (३) जलक्रीड़ा, (४) सुरापान तथा (५) सुरतक्रीड़ा ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा—एदं पुण एत्थ रमणिज्जं—

सपचमतरंगिणो सवणसीअला वेणुणो

समं सिसिरवारिणा वअणसीअला वारुणी।

राजा—इदं पुनरत्र रमणीयम्—

सपञ्चमतरङ्गिणः श्रवणशीतला वेणवः

समं शिशिरवारिणा वदनशीतला वारुणी।

विभिः = पीतप्रभाभिः छुरितानि = व्याप्तानि नागलतानां = ताम्बूलवल्लीनां दलानि = पर्णानि येषु तेषां पाण्डुच्छविच्छुरितनागदलानां = पक्वताम्बूलपर्णयुक्तानां, निदाघस्य दिवसास्तेषां निदाघदिवसानां = ग्रीष्मदिनानां; कल्याणं = भद्रं. भवतु = संपद्यताम्। अस्मिन् ग्रीष्मसमये नागलतानां दलानि पाण्डुच्छविभिरलङ्कृतानि दृश्यन्ते। सहकाराणाम् = आम्राणां रसालानां तैलै. = पराागजन्यमधुरसैः सम्पर्कात् परिपेशलानि = कोमलानि मृदूनि पूगफलानि = 'सुपाड़ी' इति हिन्दीभाषायां प्रसिद्धानि येषु तेषां सहकारतैलपरिपेशलपूगफलानां कर्पूरस्य पांशवस्तैः कर्पूरपांशुभिः = कर्पूररजोभिः परिवासितानि = सुगन्धितानि चन्दनानि=मलयजानि येषु तेषां कर्पूरपांशुपरिवासितचन्दनानां, निदाघदिवसानां भद्रं भवतु = चिरं तिष्ठतु। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—सवणसीअला सपंचमतरंगिणो वेणुणो, वअणसीअला सिसिर-

के दिनों का कल्याण हो ॥ ५ ॥[1]

राजा—इस काल में यह भी रमणीय है—

कानों को शीतल (मधुर) लगने वाली [कोयल की राग के समान] पञ्चमराग से युक्त वांसुरी की तान, मुख को शीतल (सुवासित) करने वाली

---

१. ग्रीष्मऋतु में पान, सुपाड़ी, आम आदि खाने को मिलते हैं तथा चन्दन की लेप करने को मिलता है। अतः भोजनभट्ट विदूषक ऐसी ही ग्रीष्म ऋतु की अभिलाषा करता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सचंदणघणत्थणी फरिस (सअण)-सीअला कामिणी
णिदाहदिवसोसहं   सअलसीअलं   कस्स वि ॥ ६ ॥

सचन्दनघनस्तनी स्पर्श (शयन)-शीतला कामिनी
निदाघदिवसौषधं सकलशीतलं कस्यापि ॥ ६ ॥

वरिणा समं वारुणी, सअणसीअला सचंदणघणत्थणी कामिणी सअलसीअलं णिदाहदिवसोसहं, [प्राप्तिः] कस्स वि [भवति] ॥ ६ ॥

व्याख्या—पञ्चमेन तरङ्गेण सहिताः सपञ्चमतंरगिणः = पञ्चमस्वर-युक्ताः श्रवणयोः = कर्णयोः शीतलाः = मधुराः श्रवणशीतलाः श्रुतिसुखदाः वेणवः = वंशवाद्यानि; वदनाय = मुखाय शीतलाः = संतापहारिणः वदन-शीतला, शिशिरं च तद्वारि तेन शिशिरवारिणा = शीतलजलेन, समं- = साकं मिश्रितं वा, वारुणी = मदिरा, चन्दनेन सहितौ सचन्दनौ = चन्दनर्चचितौ घनौ च = पीनौ च स्तनौ = पयोधरौ यस्याः सा सचन्दन-घनस्तनी, शयने = शय्यायां, शीतला = सुखदायिका शीतलस्पर्शवती वा, कामिनी = प्रियतमा, एतत् त्रयं सहज (सकलं)-शीतलं=स्वभावतः मधुरं, निदाघस्य = ग्रीष्मस्य, दिवसानां = दिनानाम्, औषधं = भेषजमुपचारः। एतेषां त्रयाणां प्राप्तिः कस्यापि भाग्यवत एव भवति नान्येषाम् । पृथ्वी-वृत्तम् ॥ ६ ॥

शीतल जल से मिश्रित मदिरा, शय्या को शीतल (सुखद) करने वाली चन्दन के लेप से युक्त पीन-पयोधरवाली कामिनी—ये सभी शीतल (रमणीय) हैं और ग्रीष्म के दिनों की औषधियाँ हैं। [इनकी प्राप्ति] किसी भाग्यशाली को ही होती है ॥ ६ ॥[1]

१. पं० वासुदेव ने 'सहअसीअलं' (सहजशीतलम्) पाठ दिया है; तदनुसार अर्थ होगा 'ये तीनों स्वभाव से शीतल (रमणीय) हैं'। घोष एवं पोद्दार जी ने 'भण ण सीअलं कस्स वि' (भणतु न शीतलं कस्य अपि) पाठ दिया है, तदनुसार पोद्दार जी ने अर्थ किया है 'ग्रीष्म की ये

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अवि अ—
लीलुत्तंसे सिरीसं सिहिणपरिसरे सिंदुवाराण हारो
अंगे ओल्लं वरिल्लं रमणपणइणी मेहला उप्पलेहिं ।

अपि च—
लीलोत्तंसे शिरीषं स्तनपरिसरे सिन्दुवाराणां हारः
अङ्गे आर्द्रं वस्त्रं रमणप्रणयिनी मेखलोत्पलैः ।

और भी—
मधुमास (वसन्त) के बीत जाने पर (ग्रीष्म ऋतु में) कानों में शिरीष फूल, वक्षःस्थल पर (स्तन-परिसर में) सिन्दुवार के फूलों का हार, शरीर पर गीला वस्त्र, कूल्हों (श्रोणी) पर (शब्दानुसार —रमणप्रणयिनी जङ्घाओं से प्रेम करने वाली अथवा सुरतकाल में सुखदायी) नील-कमलों की मेखला, दोनों कलाइयों (भुजलताओं) पर नवीन मृणाल के कंगन पहिनना; यह कामवैद्य के द्वारा उपनीति अबलाओं (कामिनियों या बलहीनों)

औषधियां कहो किसके लिए शीतल नहीं हैं ?' 'सअणसीअला' के स्थान पर 'फरिससीअला' (स्पर्शशीतला) पाठ एन० जी० सुरु ने माना है, तदनुसार अर्थ होगा 'स्पर्श जिनका शीतल है' । व्यवहार में कामिनियाँ उष्णकाल में शीतल तथा शीतकाल में उष्ण मानी जाती हैं—

'कूपोदकं वटच्छाया श्यामास्त्री चेष्टिकागृहम् ।
शीतकाले भवेदुष्णम् उष्णकाले तु शीतलम् ॥"

कुए का जल, वट वृक्ष की छाया, श्यामा स्त्री (युवती) तथा ईंटों से बना मकान ये चारों शीतकाल में उष्ण तथा ग्रीष्मकाल में शीतल होते हैं ।

श्यामा के बारे में (भट्टिकाव्य टीका ५·१८; ८·१००) कहा है—

'या शीते सुखोष्णसर्वांगी ग्रीष्मे या सुखशीतला ।
तप्तकाञ्चनवर्णाभा सा स्त्री श्यामेति कथ्यते ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दोसुं दोकंदलीसुं णवबिसवलग्रा कामविज्जो मणोज्जो
तावातंकेक्कततं महुसमग्रगदे एस वेसो-बलाणं ।। ७ ।।

द्वयोर्दोःकन्दल्योर्नवविसवलयानि कामवैद्यो मनोज्ञ-
स्तापातङ्कैकतन्त्रं मधुसमये गते एष वेषोऽवलानाम् ।। ७ ।।

अन्वयः—महुसमअगदे लीलुत्तंसे सिरीसं, सिहिणपरिसरे सिंदुवाराण हारो, अंगे ओल्लं वरिल्लं, उप्पलेहिं रमणपणइणी मेहला, दोसुं दोकंदलीसुं णवविसवलआ कामवेज्जोवणिज्जो एस वेसो अवलाणं तावातंकेक्कततं [अस्ति] अथवा तावातंकक्खमाणं अबलाणं एस वेसो मणोज्जो कामविज्जो ।। ७ ।।

व्याख्या—मधुसमये गते = वसन्तकालस्य समाप्तौ प्राप्ते च ग्रीष्मकाले; लीलया उत्तंसे लीलोत्तंसे = विलासकृतकर्णालङ्कारे, शिरीषं = शिरीषपुष्प-धारणम् । स्तनयोः=पयोधरयोः परिसरे स्तनपरिसरे=वक्षःस्थले सिन्दुवाराणां हारः । अङ्गे = शरीरे, आर्द्रं = जलसिक्तं, वस्त्रं = परिधानम् । जघनस्थले उत्पलैः=नीलकमलैःविनिर्मिता रमणस्य=प्रियस्य सुरतस्य वा प्रणयिनी=प्रीति-करी रमणप्रणयिनी मेखला रशना, द्वयोः दोः कन्दल्योः=भुजलतयोः, नवानां =नूतनानां विसानां = मृणालतन्तूनां वलयानि = कङ्कणानि नवविसवलयानि, कामवैद्योपनेयः एषः=एतादृशः वेषः, अवलानां = कामिनीनां बलरहितानां वा, तापस्य = कामजन्यस्य रविजन्यस्य वा सन्तापस्य, आतङ्कः=पीडा तस्य निवारणाय एकं तन्त्रम्=एकमात्रमुपायोऽस्तीति । पाठान्तरे—तापस्य आतङ्कः तत्र क्षमाणां तापातङ्कक्षमाणाम् (तावातंकक्खमाणं) अवलानामेषः मनोज्ञः= मनोहरः, वेषः कामवैद्योऽस्ति । स्रग्धरावृत्तम् ।। ७ ।।

का सुन्दर वेष सन्ताप (गर्मी अथवा कामपीड़ा) से त्राण पाने के लिए एक [सफल] तन्त्र (उपाय) है । अथवा सन्ताप को सहन करनेवाली अबलाओं का यह वेष मनोज्ञ कामवैद्य है ।। ७ ।।[1]

---

१. 'कामवेज्जोवणिज्जो' (कामवैद्योपनेयः) यह पाठ होने पर अर्थ होगा—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदूषकः—अहं पुण (उण) भणामि—

मज्झण्हसण्हघणचंदणपंकिलाणं (सीअलाणं)
साअं णिसेविअणिरंतरमज्जणाणं ।
सामांसु (सज्जासु) वीअणअवारिकणुक्खिदाणं
दासत्तणं कुणदि पंचसरो वहूणं ॥ ८ ॥

विदूषकः —अहं पुनर्भणामि—

मध्याह्नश्लक्ष्णघनचन्दनपङ्किलानां (शीतलानाम्)
सायं निषेवितनिरन्तरमज्जनानाम् ।
श्यामासु (शय्यासु) व्यजनजवारिकणोक्षितानां
दासत्वं करोति पञ्चशरो वधूनाम् ॥ ८ ॥

अन्वयः—मज्झण्हसण्हघणचंदणपंकिलाणं, साअंणिसेविअणिरंतरमज्जणाणं, सामासु वीअणअवारिकणुक्खिदाणं वहूणं पंचसरो दासत्तणं कुणदि ॥८॥

विदूषक—मैं भी कहता हूँ—

मध्याह्न में चिकने और गाढे चन्दन के लेप से तर रहने वाली, सायंकाल में निरन्तर स्नान (जलक्रीड़ा) करने वाली तथा रात्रि में पंखे से निकलने वाले जलकणों से सिञ्चित वधुओं का कामदेव दास बन जाता है । ८ ॥[1]

'यह अबलाओं का वेप कामवैद्य का बतलाया गया ताप को दूर करने वाला एक तन्त्र है' अर्थात् जैसे तन्त्र-मन्त्र से कष्ट दूर किये जाते हैं वैसे ही इस वेषभूषा रूपी तन्त्र के प्रभाव से कामपीड़ा तथा ग्रीष्मपीड़ा शीघ्र ही दूर हो जाती हैं । 'तावातंकक्खमाणं' (तापातङ्कक्षमाणाम्) पाठ होने पर अर्थ होगा—'ताप के कष्ट को सहन करने वाली अबलाओं का यह सुन्दर वेष कामवैद्य है' अर्थात् वैद्य के समान यह वेषभूषा कामोन्माद को शान्त करनेवाली है; अतः यहाँ इसे कामवैद्य कहा गया है ।

१. 'सज्जासु' (शय्यासु) पाठ होने पर अर्थ होगा 'जब वधुयें शय्या पर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा—(स्मरणमभिनीय)
पच्चंगं णवरूवभंगिघडणारंमे जणे संगमो
जाणं ताणं खणं व रत्तिदिअहा गच्छंति दीहा अवि ।
जाणं ते अ मणं पि देंति ण रइं चित्तस्स संताविणो
ताणं जंति मणोरहेक्कजणणा मासोवमा वासरा ।। ९ ।।

राजा—[स्मरणमभिनीय]
प्रत्यङ्गं नवरूपभङ्गिघटनारम्ये जने संगमो
येषां तेषां क्षणमिव रात्रिदिवसा गच्छन्ति दीर्घा अपि ।
येषां ते च मनागपि (मनसि) ददति न रतिं चित्तस्य संतापिन-
स्तेषां यान्ति मनोरथैकजनना मासोपमा वासराः ।। ९ ।।

व्याख्या—मध्याह्ने=दिनमध्यभागे, श्लक्ष्णं=चिक्कणं घनञ्च सान्द्रञ्च यच्चन्दनं तैः पङ्किला=अनुलिप्ताः तासां मध्याह्नश्लक्ष्णघनचन्दनपङ्किलानां, सायं=सन्ध्याकाले, निषेवितं=कृतं, निरन्तरम्=अजस्रं मज्जनं=जलावगाहनं याभिः तासां निषेवितनिरन्तरमज्जनानां, श्यामासु=रात्रिषु, व्यजनाज्जाताः व्यजनजाः=व्यजनोत्पन्नाः तादृशाः ये वारीणां=जलानां कणाः=बिन्दवः तैः उक्षितानां=सिक्तानां व्यजनजवारिकणोक्षितानां, वधूनाम्=अबलानां, पञ्चशरः=कामदेवः, दासत्वं=सेवकत्वं सेवां वा करोति। एतासां भृत्यभूत इव कामः कामिनीनां कृते कामिनः वशीकरोति। वसन्ततिलकावृत्तम् ।। ८ ।।

अन्वयः—पच्चंगं णवरूवभंगिघडणारम्मे जणे जाणं संगमो ताणं दीहा अवि रत्तिदिअहा खणं व गच्छंति । जाणं अ ते मणं पि रइं ण देंति ताणं मणोरहेक्कजणणा चित्तस्स संताविणो मासोवमा वासरा जंति ।। ९ ।।

राजा—[स्मरण का अभिनय करते हुए]—

सोती हैं' । 'वहूणं' के स्थान पर 'वलाणं' (अबलानाम्) पाठ भी मिलता है । 'कामदेव उनका दास हो जाता है' से तात्पर्य है 'कामीजन उनके दास बन जाते हैं' ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(विदूषकं प्रति) वअस्स ! अत्थि तग्गदा का वि वत्ता ?

विदूषकः—अत्थि सुणादु पिअवअस्सो । कहेमि सुहासिदं दे । जा

[विदूषकं प्रति] वयस्य ! अस्ति तद्गता कापि वार्ता ?

विदूषकः—अस्ति, शृणोतु प्रियवयस्यः । कथयामि सुभाषितं ते । या

व्याख्या—अङ्गम् अङ्गं प्रति इति प्रत्यङ्गं=समस्तशरीरावयवेषु नवानाम्=अभिनवानां रूपभङ्गीनां=सौन्दर्यविलासानां घटनया=रचनया आरम्ये (रम्ये)=मनोहरे, नवरूपभङ्गिघटनारम्ये, जने=प्रियजनेन पत्न्या पत्या वा सह, सङ्गमः = संवासः, येषां=जनानां भवति तेषां दीर्घाः=विस्तृताः अपि, रात्रिदिवसाः=रजन्यः दिनानि च, क्षणमिव = शीघ्रं, गच्छन्ति=जायन्ते (पाठान्तरे क्षणमात्रस्थायिनः दिवसाः झटिति गच्छन्ति) । परन्तु ते जनाः, येषां प्रियजनाः मनागपि=स्वल्पमपि (पठान्तरे–मनसि=चित्ते) रतिं= रतिजन्यमानन्दं, न ददति=वितरन्ति तेषां जनानां मनोरथैकजननां=मनोरथ-मात्रजनकाः, चित्तस्य=हृदयस्य संतापिनः=दुःखदायिनः मासैः उपमा अस्ति येषां ते मासोपमाः=माससदृशाः दीर्घाः, दिवसाः=दिनानि, यान्ति=अपसरन्ति । प्रियविप्रयुक्ताः जनाः ग्रीष्मदिवसान् महता कष्टेन यापयन्तीति भावः । उपमा-लङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ ९ ॥

अंग-प्रत्यङ्ग में अभिनव सौन्दर्य की भङ्गिमाओं की रचना से रमणीय प्रियव्यक्ति के साथ जिनका समागम है उनके लम्बे-लम्बे भी रात्रि तथा दिन मानों क्षणभर में बीत जाते हैं किन्तु वे व्यक्ति जिनके प्रिय व्यक्ति थोड़ा भी (अथवा स्वप्न में भी) रति का सुख नहीं देते उनके लिए मनोरथों के जनक तथा चित्त को दुःखदायी ये दिन मासोपम (महीनों के सदृश लम्बे) होकर गुजरते हैं ॥ ९ ॥[1]

[विदूषक से] उसका (कर्पूरमञ्जरी का कोई) समाचार है ?

१. 'झत्ति दिअहा वट्टंति दीहा अवि' पाठ होने पर अर्थ होगा 'लम्बे होने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सा कप्पूरमंजरीए रक्खाभवणे सुरंगा दिण्णा सा देवीए दिट्ठा ! तदो तं सुरंगादुआरं देवीए पिहुलसिलासंचएण णीरंधं करिअ पिहिदं। अणंगसेणा, कलिंगसेणा, कामसेणा, वसंतसेणा, विब्भमसेण त्ति पंच सेणाणामधेआओ चामरधारिणीओ फरक्किदफरआ करवाल-हत्थपाइक्कसहस्सेण सह कारामंदिरस्स रक्खाणिमित्तं पुव्वदिसि णिउत्ताओ।

अणंगलेहा, चित्तलेहा, चंदलेहा, मिअंकलेहा, विब्भमलेहे त्ति लेहं

सा कर्पूरमञ्जर्या रक्षाभवने सुरङ्गा दत्ता सा देव्या दृष्टा, ततः तत्सुरङ्गाद्वारं देव्या बहुलशिलासंचयेन नीरन्ध्रं कृत्वा पिहितम्। अनङ्गसेना, कलिङ्गसेना कामसेना, वसन्त ना, विभ्रमसेनेति पञ्च सेनानामधेयाश्चामरधारिण्यः स्फारस्फुरत्फलकाकरवालहस्तपदातिसहस्रेण सह कारामन्दिरस्य रक्षानिमित्तं पूर्वदिशि नियुक्ताः।

चामरधारणियों को चमकते हुए फलक वाली तलवार को हाथ में लिए हुए हजारों पैदल (सैनकों) के साथ पूर्वदिशा में नियुक्त कर दिया है।

विदूषक—हाँ है। प्रियमित्र सुनें। आपसे शुभ समाचार कहता हूँ। कर्पूरमञ्जरी के रक्षागृह में जो सुरंग बनाई गई थी वह देवी के द्वारा देख ली गई है।[1] तब से देवी ने उस सुरंग के द्वार को बड़े-बड़े पत्थरों से छिद्र-रहित करके बन्द कर दिया है। कारागार की रक्षा के लिए अनंगसेना कलिंगसेना, कामसेना, वसन्तसेना और विभ्रमसेना इन पाँच सेना नामधारी

अनङ्गलेखा, चित्रलेखा, चन्द्रलेखा, मृगाङ्कलेखा, विभ्रमलेखेति लेखनाम-

---

पर भी दिन शीघ्र ही क्षण भर के समान हो जाते हैं'। 'मणम्मि' (मनसि) पाठ होने पर अर्थ होगा—'मनमें=स्वप्न में भी रति को नहीं देती हैं'। 'मणोरहेक्कजणणा' के स्थान पर 'जगम्मि दीहरतमा' (जगति दीर्घतमा) पाठ होने पर अर्थ होगा—'संसार में दीर्घ से दीर्घतम हो जाते हैं'।

१. घोष तथा पोद्दार जी के संस्करण में राजा के द्वारा 'तदो तदो' इतना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

णामधेआओ पंच सेरंधीओ पुंखिदसिलीमुहधणूहत्थेण णिविडणिवद्ध-तूणीरदुद्धरेण धाणुक्कसहस्सेण समं दक्खिणाए दिसाए णिवेसिदाओ ।

कुंदमाला, चंदणमाला, कुवलअमाला, कंचणमाला, बउलमाला, मंगलमाला, माणिक्कमाल त्ति सत्त मालंतणामधेआओ णवणिसिद-कुंतहत्थपाइक्कसहस्सेण समं तंबूलकरंकवाहिणीओ पच्छिमाए दिसाए णिवेसिदाओ ।

धेयाः पञ्च सैरन्ध्र्यः पुङ्खितशिलीमुखधनुर्हस्तेन निबिडनिबद्धतूणीरदुर्धरेण धानुष्कसहस्रेण समं दक्षिणस्यां दिशि निवेशिताः ।

कुन्दमाला, चन्दनमाला, कुवलयमाला, काञ्चनमाला, बकुलमाला, मङ्गलमाला, माणिक्यमालेति सप्त मालेति नामधेया नवनिशितकुन्तहस्त-पदातिसहस्रेण समं ताम्बूलकरङ्कवाहिन्यः पश्चिमायां दिशि निवेशिता

अनंगलेखा, चित्रलेखा, चन्द्रलेखा, मृगाङ्कलेखा और विभ्रमलेखा इन पाँच लेखा नामधारी सैरन्ध्रियों (दूसरे के घर रहकर शिल्पादि का कार्य करने वाली) को वाण चढ़े हुए धनुष को लिए हुए तथा खूब बाँधे हुए तरकस से भयंकर हजार धनुर्धारियों के साथ दक्षिण दिशा में नियुक्त कर दिया है ।

कुन्दमाला, चन्दनमाला, कुवलयमाला, कंचनमाला, बकुलमाला, मंगलमाला तथा माणिक्यमाला इन सात मालान्त नामधारिणी (माला शब्द जिनके नामों के अन्त में है) पानदान वाहिनियों को नवीन तथा तीक्ष्ण

अधिक पाठ दिया गया है । 'जा सा' के स्थान पर 'जदो पहुदि कप्पूरमंजरी रक्खाभवणादो सुंरगादुआरे देवीए दिट्ठा' (यतः प्रभृति कर्पूरमञ्जरी रक्षाभवनात् सुरङ्गाद्वारे देव्या दृष्टा) ऐसा पाठ होने पर अर्थ होगा—'जब से देवी ने कर्पूरमञ्जरी को रक्षाभवन से सुरंगद्वार पर [जाते हुए] देखा है' ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अणंगकेली, बक्करकेली, कंदप्पकेली, सुंदरकेली, कंदोट्ठकेलि त्ति पंच केलीअंतणामधेआओ मज्जणकारिणीओ फलअखग्गकंपविदुरिल्लेण पाइक्कसहस्सेण समं उत्तरदिसाए आढत्ताओ।

ताणं पि उण उवरि मदिरावदी, केलिवदि, कल्लोलवदी, तरंगवदी, अणंगवदी त्ति पंच वदीणामधेआओ परिचारिआकुमारीओ कणअवेत्तदंडहत्थाओ सुहासिअपढिआओ वंदीणामधेआओ सेणाए अज्झक्खीकदाओ।

अनङ्गकेलिः, परिहासकेलिः, कंदर्पकेलिः, सुन्दरकेलिः, उत्पलकेलिरिति पञ्च केलीतिनामधेया मज्जनकारिण्यः फलकखड्गकम्पविज्ञेन पदातिसहस्रेण सममुत्तरदिश्याज्ञप्ताः।

तासामपि पुनरुपरि मदिरावती, केलिवती, कल्लोलवती, तरङ्गवती, अनङ्गवतीति पञ्च वतीतिनामधेयाः परिचारिकाकुमार्यः कनकवेत्रदण्डहस्ताः सुभाषितपाठिका बन्दीनामधेयाः सेनाया अध्यक्षीकृताः।

भालों को हाथ में लिए हुए हजार पैदल सैनिकों के साथ पश्चिमदिशा में नियुक्त कर दिया है।

अनंगकेलि, परिहासकेलि (वक्कर=यह देशी शब्द है), कंदर्पकेलि, सुन्दरकेलि तथा नीलकमलकेलि (कंदोट्ठ=यह देशी शब्द है) इन पाँच केलि-अन्त नामधारिणी स्नान करानेवालियों को ढाल और तलवार चलाने में चतुर (विदुर=विज्ञ) हजार पैदल सैनिकों के साथ उत्तर दिशा में नियुक्त किया है।

उन सभी के ऊपर मदिरावती, केलिवती, कल्लोलवती, तरंगवती और अनङ्गवती इन पाँच वती नामधारिणी सुभाषित पढ़नेवाली कुमारी परिचारिकाओं को हाथ में सोने की छड़ी (वेत्र-दण्ड) देकर सेना का अध्यक्ष बना दिया है।[1]

---

१. इस फौज की सेविकाओं के नामों में विभिन्न संस्करणों में कुछ अन्तर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा—अहो देवीए सामग्गी (दासीसामग्गी) अंतेउरोचिदा।

विदूषकः—भो वअस्स ! एसा देवीए सारंगिआ णाम सही किं पि विण्णवेदुं पेसिदा।

(ततः प्रविशति सारङ्गिका)

सारङ्गिका—जअदु जअदु भट्टा। देव ! देवी विण्णवेदि—

राजा—अहो देव्याः सामग्र्यन्तःपुरोचिता।

विदूषकः—भो वयस्य ! एषा देव्या सारङ्गिका नाम सखी किमपि विज्ञापयितुं प्रेषिता।

[ततः प्रविशति सारङ्गिका]

सारङ्गिका—जयतु जयतु भर्ता। देव ! देवी विज्ञापयति—अद्य

राजा—वाह ! देवी की रक्षासामग्री (मोर्चाबन्दी) अन्तःपुर के अनुरूप है।

विदूषक—हे मित्र ! देवी ने इस सारङ्गिका नाम की सखी को [आपसे] कुछ निवेदन करने के लिए भेजा है।

[सारङ्गिका का प्रवेश होता है]

सारङ्गिका—महाराज की जय हो, जय हो। देव ! देवी कहती हैं—

मिलता है। एन० जी सुरु, घोष तथा पोद्दारजी के संस्करणों में सेविकाओं के ही हाथ में शस्त्र दे दिए गए हैं, सहयोगी हजार सैनिकों की चर्चा नहीं है। जैसे—'करवालहत्थाओ कारामंदिरस्स रक्खाणिमित्तं०'। पश्चिम दिशा में नियुक्त दासियों की संख्या अन्यत्र पाँच ही गिनाई गई है जो क्रम को ध्यान में रखते हुए उचित है। इसी तरह अन्त में 'परिचारिआ-कुमारीओ बंदीणामधेआओ सेणाए' इतना पाठ अन्यत्र नहीं मिलता है। मैंने यहाँ निर्णय-सागर के संस्करण के अनुसार पाठ तथा उसका अर्थ लिखा है। किञ्च, घोष तथा पोद्दार जी के संस्करण में उत्तर दिशा में नियुक्त स्नान कराने वालियों के हाथ में 'वेलन' भी पकड़ा दिया गया है—'फडअचक्कवेल्लणविज्जुरिल्ला मज्जणपालीओ'।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अज्ज चतुत्थदिअहे भविअवडसावित्तीमहूसवोवअरणाइं केलिविमाणं आरुहिअ देवेण पेक्खिदव्वाइं त्ति ।

राजा—जं आदिसदि देवी ।

(चेटी निष्क्रान्ता । उभौ प्रासादाधिरोहणं नाटयतः)

(ततः प्रविशति चर्चरी)

विदूषकः—

मुत्ताहलिल्लाहरणोच्चआओ लासावसाणे तलिणंसुआओ ।
सिंचंति अण्णोण्णमिमीउ पेच्छ जंतज्जलेणं मणिवारएहिं ॥ १० ॥

चतुर्थदिवसे भाविवटसावित्रीमहोत्सवोपकरणानि केलिविमानमारुह्य देवेन प्रेक्षितव्यानीति ।

राजा—यदादिशति देवी ।

(चेटी निष्क्रान्ता । उभौ प्रासादाधिरोहणं नाटयतः)

(ततः प्रविशति चर्चरी)

विदूषकः—

मुक्ताफलाभरणोच्चया लास्यावसाने तलिनांशुकाः ।
सिञ्चन्त्यन्योन्यमिमाः प्रेक्षस्व यन्त्रजलैर्मणिवारकैः ॥ १० ॥

अन्वयः—मुत्ताहलिल्लाहरणोच्चआओ तलिणंसुआओ इमीउ लासावसाणे मणिवारएहिं जंतज्जलेणं अण्णोण्णं सिंचंति, [इति] पेच्छ ॥ १० ॥

आज चौथे दिन होने वाले वटसावित्री—महोत्सव के कार्यक्रम को महाराज केलि-विमान पर आरूढ होकर (बैठकर) देखें ।

राजा—जैसी देवी की आज्ञा ।

[चेटी चली जाती है । दोनों राजमहल पर चढ़ने का अभिनय करते हैं]

[तब चर्चरी = चर्चरी[1] नर्तकियों का प्रवेश होता है]

---

[1] चर्चरी शब्द के कई अर्थ हैं । जैसे—गीतभेद, वाद्यविशेष, करशब्द, अनेक शब्दसंघात आदि ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इदो अ—

परिब्भमंतीउ विचित्तबंधं इमाउ दोसोलह णच्चणीओ ।
खेलंति तालाणुगदप्पआओ तुहंगणे दीसइ दंडरासो ॥ ११ ॥

इतश्च—

परिभ्रमन्त्यो विचित्रबन्धमिमा द्विषोडश नर्तक्यः ।
खेलन्ति तालानुगतपदास्तवाङ्गणे दृश्यते दण्डरासः ॥ ११ ॥

व्याख्या—मुक्ताफलानाम् आभरणोच्चयः यासां ताः मुक्ताफलाभरणोच्चयाः=मौक्तिकालङ्कारैरलङ्कृताः, तलिनांशुकाः=सूक्ष्मवसनाः (पाठान्तरे-चलितानि अंशुकानि यासां ताः चलितांशुकाः=स्रस्तदुकूलाः), इमाः नर्तक्यः लास्यं=कोमलनृत्यं तस्यावसाने=परिसमाप्तौ लास्यावसाने, मणिवारकैः (मणिभाजनैः)=माणिक्यपात्रैः, यन्त्रजलैः=यन्त्रनिर्गतनीरैः, अन्योन्यं=परस्परं सिञ्चन्ति (सिच् > क्षरणे, लट्, प्र० पु० बहुवचनम्)=अर्द्रीकुर्वन्ति, इति प्रेक्षस्व=दृश्यमेतत् पश्य त्वमिति शेषः । इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ १० ॥

अन्वयः—इमाउ दोसोलह णच्चणीओ विचित्तबंधं परिब्भमंतीउ तालाणुगदप्पआओ खेलंति । [एवम्] तुहंगणे दंडरासो दीसइ ॥ ११ ॥

विदूषक—मोतियों के आभूषणों से अलंकृत तथा महीन वस्त्रधारिणी ये नर्तकियाँ लास्य (नृत्य विशेष जो स्त्रियों के द्वारा किया जाता है) के अन्त में मणिमय आवरण वाले यन्त्रजल (पिचकारी के जल) से परस्पर एक दूसरे को भिगो रही हैं, यह देखें ॥ १० ॥[1]

और इधर—

ये बत्तीस नर्तकियाँ विचित्र बन्ध से (विभिन्न प्रकार की भंगिमाओं के साथ) घूमती हुई तथा ताल के अनुसार पैरों को रखती हुई नाच रही हैं। [इस तरह] आपके आंगन में दण्डरास (एक प्रकार का नृत्य विशेष जिसमें नर्तकियाँ दण्डाकार खड़ी होकर नाचती हैं) दिखलाई पड़ रहा है ॥११॥

१. 'मणि भाइणेहिं' (मणिभाजनैः) ऐसा पाठ होनेपर अर्थ होगा 'मणिमय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समंससीसा समबाहुहत्था रेहाविसुद्धा अवराउ देंति।
पंतीहिं दोहिं लअतालबंधं परोप्परं साहिमुहीउ चल्लिं।। १२ ।।

समांसशीर्षाः समबाहुहस्ता रेखाविशुद्धा अपराश्च ददति।
पङ्क्तिभ्यां द्वाभ्यां लयतालबन्धं परस्परं साभिमुख्यश्चल्लीम् ।।१२।।

व्याख्या—इमाः=पुरोदृश्यमानाः, द्विषोडश=द्वात्रिंशत् संख्याकाः नर्तक्यः =अभिनेत्र्यः, विचित्रेण=अद्भुतेन बन्धेन (बन्धं)=पादनिक्षेपेण विचित्रबन्धेन (विचित्रबन्धं), परिभ्रमन्त्यः=सञ्चरन्तः, तालैरनुगतम् = अनुकूलं पदं = चरणनिक्षेपं यासां ताः तालानुगतपदाः=तालानुकूलचरणाः, खेलन्ति=सोल्लासं नृत्यन्ति। एवं प्रकारेण तव=भवतः, अङ्गणे=चत्वरे, दण्ड एव रासः दण्डरासः =एकशृङ्खलायां दण्डाकारेण स्थित्वा क्रीडनविशेषः, दृश्यते=दृष्टिपथमायाति। उपजातिवृत्तम् ।। ११ ।।

अन्वयः—अवराउ समंससीसा समबाहुहत्था रेहाविसुद्धा लअतालवंधं दोहिं पंतीहिं परोप्परं साहिमुहीउ चल्लिं देंति ।। १२ ।।

ये दूसरी नर्तकियाँ स्कन्ध, सिर, भुजा और हाथों को समान किए हुईं, जरा भी विचलित न होती हुईं (रेखा-विशुद्ध), लय और ताल के अनुसार दो पंक्तियों में परस्पर अभिमुख होती हुईं चल्लि (नृत्य के समय की एक प्रकार की गति विशेष या नृत्य विशेष) को कर रही हैं ।। १२ ।।[१]

पात्रों से'; 'चलिणंसुआओ' (चलितांशुकाः) पाठ के अनुसार 'जिनके वस्त्र अपने स्थान से खिसक गये हैं' अर्थ होगा। मधुर और उद्धत के भेद से नृत्य दो प्रकार का होता है—स्त्रियों के द्वारा प्रयुक्त सुकुमार (मधुर) नृत्य 'लास्य' कहलाता है। पुरुषों के द्वारा प्रयुक्त उद्धत नृत्य 'ताण्डव' कहलाता है। जब ये दोनों ताल और लय पर आश्रित होते हैं तो 'नृत्त' (देशी नाच) कहलाते हैं तथा शास्त्रीय विधि पर आश्रित होने पर 'नृत्य' (मार्ग) कहलाते हैं। (दशरूपक १.९-१०)।

१. 'चल्लिं' के स्थान पर 'साहिमुही हुवंति' (साभिमुखा भवन्ति=एक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मोत्तूण अण्णा मणिवारआइं जंतेहि धारासलिलं खिवंति।
पडंति ताओ सहिआणमंगे मणोभुवो वारुणबाणचंगा (कप्पा) ॥ १३ ॥

मुक्त्वा अन्या मणिवारकाणि यन्त्रैर्धारासलिलं क्षिपन्ति।
पतन्ति ता सखीनामङ्गे मनोभुवो वारुणवाणसुन्दराः (कल्पाः) ॥१३॥

व्याख्या—अपराः=अन्याः नर्तक्यः, समम् अंसं शीर्षं च यासां ताः समांसशीर्षाः=तुल्यस्कन्धशिरसः, समं बाहुहस्तं यासां ताः समबाहुहस्ताः=तुल्यबाहुकराः, एवं स्कन्धौ, शिरांसि, बाहू करौ च समौ विधाय इत्यर्थः। रेखया विशुद्धाः रेखाविशुद्धाः=अणुमात्रमपि न स्खलिताः, लयस्य तालस्य च बन्धो यथा स्यात्तथा लयतालबन्धं=संगीतशास्त्रानुसारं लयतालादिभिः संयुक्तं, द्वाभ्यां पङ्क्तिभ्यां परस्परम्=अन्योन्यं साभिमुखाः सत्यः चल्लिं=नृत्यविशेषं ददति=प्रदर्शयन्ति (पाठान्तरे—द्वाभ्यां पंक्तिभ्यां लयतालबन्धं ददति=परस्परं साभिमुखा भवन्तीति)। उपजातिवृत्तम् ॥ १२ ।

अन्वयः—अण्णा मणिवारआइं मोत्तूण जंतेहि धारासलिलं खिवंति। ताओ सहिआणमंगे मणोभुवो वारुणबाणचंगा पडंति ॥ १३ ॥

व्याख्या—अन्याः=अपराः नर्तक्यः, मणिवारकाणि=मणिभिरलङ्कृतानि कञ्चुकानि मणिनिर्मितकवचानि वा, मुक्त्वा=परित्यज्य, यन्त्रैः=

अन्य नर्तकियाँ मणिवारकों (मणिजड़ित आवरणों) को अलगकर यन्त्रों से जलधारायें छोड़ रही हैं। वे [जलधारायें) सखियों के शरीर पर कामदेव के वरुणास्त्र के समान सुन्दर लग रही हैं ॥ १३ ॥[१]

दूसरे के सामने आती हैं) तथा 'साहिमुही चलंति' (साभिमुखा चलन्ती) भी पाठ मिलते हैं।

१. 'ताओ अ पिआणमंगे' (ताश्च प्रियाणामङ्गे) पाठानुसार अर्थ होगा 'और वे जलधारायें प्रेमियों के शरीर पर'। 'वारुणबाणचंगा' के स्थान पर 'वारुणबाणकप्पा' (वारुणवाणकल्पाः) भी पाठ मिलता है। कल्प का अर्थ है—सदृश।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इमा मसीकज्जलकालकाम्रा तिकंडचावाउ विलासिणीम्रो ।
पुलिंदरूवेण जणस्स हासं समोरपिच्छाहरणा कुणंति ॥ १४ ॥

इमा मषीकज्जलश्यामकायास्त्रिकाण्डचापाश्च विलासिन्यः ।
पुलिन्दरूपेण जनस्य हासं समयूरपिच्छाभरणाः कुर्वन्ति ॥ १४ ॥

जलसेचनयन्त्रविशेषैः, धारासलिलं = धारानुकारं जलं, क्षिपन्ति = अन्येषामुपरि पातयन्ति । ताः = जलधाराः च सखीनाम् = सहचरीणाम् (प्रियाणाम्) अङ्गे = शरीरे, मनोभुवः = कामदेवस्य, वरुणस्य इमे वारुणाः वारुणाश्च ते बाणाः वारुणबाणाः तद्वत् चङ्गा = मनोहराः वारुणबाणचङ्गाः यद्वा वारुणबाणैः कल्पा वारुणबाणकल्पाः = वारुणास्त्रसदृशाः, पतन्ति । उपमालङ्कारः । उपजातिवृत्तम् ॥ १३ ॥

अन्वयः—मसीकज्जलकालकाआ तिकंडचावाउ समोरपिच्छाहरणा इमा विलासिणीओ पुलिंदरूवेण जणस्स हासं कुणंति ॥ १४ ॥

व्याख्या—मसीवत् = कज्जलवच्च श्यामाः = कृष्णाः कायाः =शरीराणि यासां ताः मसीकज्जलश्यामकायाः, त्रिकाण्डैः युक्ता चापाः = धनूंषि यासां ताः त्रिकाण्डचापाः (पाठान्तरे – तीक्ष्णे अक्षिणी चापा इव यासां ताः तीक्ष्णाक्षिचापाः – तीक्ष्णकटाक्षकार्मुकाः), मयूरपिच्छानाम् आभरणानि = अलङ्काराः तैः सहिताः समयूरपिच्छाभरणाः = मयूरपिच्छैरलङ्कृताः इमाः, = पुरोदृश्यमानाः विलासिन्यः = कामिन्यः नर्तक्यः, पुलिन्दरूपेण = व्याध-

स्याही और काजल के समान काले शरीर वाली (वस्तुतः शरीर काला नहीं है । स्याही आदि पोतकर काला बनाया गया है), तीन काण्ड वाले धनुष को लिए हुए तथा मयूर के पंखों के आभूषणों से अलंकृत ये विलासिनियाँ शिकारी (पुलिन्द) का रूप धारण करके लोगों को हँसा रही हैं ॥ १४ ॥[१]

१. 'तिक्खच्छचावा अ' (तीक्ष्णाक्षिचापाश्च) पाठ के अनुसार अर्थ होगा—'धनुष की तरह तीक्ष्ण नेत्रों वाली ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हत्थे महामंसबलीधराश्रो हुंकारफेक्काररवा रउद्दा।
णिसाअरीणं पडिसीसएहिं अण्णा मसाणाहिणश्रं कुणंति ॥ १५ ॥
का वि वाइअकरालहुडुक्का रम्ममद्दलरवेण मअच्छी।

हस्ते महामांसबलिधारिण्यो हुंकारफेत्काररवा रौद्राः।
निशाचरीणां प्रतिशीर्षकैरन्याः श्मशानाभिनयं कुर्वन्ति ॥ १५ ॥
कापि वादितकरालहुडुक्का रम्यमर्दलरवेण मृगाक्षी।

रूपेण किरातवेषेण वा, जनस्य = दर्शकगणस्य, हासं = मनोरञ्जनं, कुर्वन्ति= नरान् हासयन्तीति। उपमालङ्कारः। उपेन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ १४ ॥

अन्वयः—अण्णा हत्थे महामंसबलीधराओ हुंकारफेक्काररवा रउद्दा णिसाअरीणं पडिसीसएहिं मसाणाहिणअं कुणंति ॥ १५ ॥

व्याख्या— हस्ते = करे, महामांसमेव बलिः तं धारयन्तीति महामांस-बलिधारिण्यः = नरमांसोपहारयुक्ताः, हुंकारा फेत्काराश्च रवाः यासां ताः हुंकारफेत्कारवाः = हुंकार-फेत्कारध्वनियुक्ताः अथवा हुंकारा एव फेत्कार-रवाः = शृगालशब्दाः शृगालवत् रौद्रध्वनिं कुर्वन्त्यः, अतएव रौद्राः = भयङ्कररूपाः, अन्याः नर्तक्यः, निशायां = रात्रौ चरन्तीति=गच्छन्तीति निशाचराः तेषां स्त्रीणां निशाचरीणां = राक्षसीनां, प्रतिशीर्षकैः = मुकुटैः प्रतिरूपैर्वा, श्मशानस्य अभिनयं श्मशानाभिनयं कुर्वन्ति = श्मशानस्य दृश्यं प्रकटयन्तीति। उपजातिवृत्तम् ॥ १५ ॥

अन्वयः—पांडवाडिचलाहिं दोल्लआहिं रम्ममद्दलरवेण वाइअकराल-

....

अन्य नर्तकियाँ नरमांस की बलि को लिए हुए हुंकार और फूत्कार (सियार आदि का शब्द) के शब्दों से रौद्ररूप धारण किए हुए तथा निशाचरियों के मुखौटे लगाये हुए श्मशान का अभिनय (झाँकी) कर रही हैं ॥ १५ ॥

क्रमशः चलाई गईं भुज-लताओं के द्वारा रमणीय मर्दल (एक प्रकार का ढोल) के शब्द के साथ बजाया है भयंकर हुडुक्क (घड़ी के आकार का बना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ढोल्लआहिं परिवाडिचलाहिं चल्लिकम्मकरणम्मि पअट्टा ।। १६ ।।
किंकिणीकअझणज्झणसद्दा कंठगीदलअजंतिदताला ।
जोइणी व लअणच्चणकेलिं (लीलं) तारणेउररवं विरअंति ।।१७।।

दोर्लताभ्यां परिपाटीचलाभ्यां चल्ली (चेटी) -कर्मकरणे प्रवृत्ता ।। १६ ।।
किङ्किणीकृतझणज्झणशब्दाः कण्ठगीतलययन्त्रितताला: ।
योगिनी वलयनर्तनकेलिं (लीलां) तार(ताल)-नूपुररवं विरचयन्ति ।।१७।।

हुडुक्का का वि मअच्छी चल्लिकम्मकरणम्मि पअट्टा ।। १६ ।।

व्याख्या—परिपाटया = क्रमेण चलाभ्यां = सञ्चालिताभ्यां परिपाटीचालाभ्यां, दोर्लताभ्यां = भुजलताभ्यां (पाठान्तरे—भ्रूलताभ्याम्) रम्यमर्दलरवेण = मनोहरमृदङ्गध्वनिना, वादितं = नादितं करालं = भीषणं हुडुक्कं = वाद्यविशेषो यया सा वादितकारलहुडुक्का, कापि मृगस्य अक्षिणी इव अक्षिणी यस्याः सा मृगाक्षी = मृगनयनी नर्तकी चल्लीकर्म करणे = चल्लीनामकनृत्ये (पाठान्तरे–चेटीकर्मणि) प्रवृत्ता = संलग्ना दृश्यते । स्वागतावृत्तम् ।। १६ ।।

अन्वय:—किंकणीकअझणज्झणसद्दा कंठगीदलअजंतिदवाला [काश्चन नर्तक्यः] जोइणीवलअणच्चकेलिं तारणेउररवं [कुर्वन्त्यः] विरअंति ।।१७।।

एक छोटा ढोल) जिसने ऐसी कोई मृगाक्षी चल्लि-कर्म (नृत्य विशेष) करने में प्रवृत्त हो रही है ।। १६ ।।[१]

[कोई नर्तकियाँ] योगिनी-वलय नामक नृत्य की क्रीड़ा को कर रही हैं जिसमें किंकणियों के झनझन शब्द हो रहे हैं, कण्ठ का गीत ताल और लय से नियन्त्रित है तथा नूपर का उच्च शब्द हो रहा है ।। १७ ।।[२]

१. 'भूलदाहिं चेटिकम्मकरणम्मि' (भ्रूलताभ्यां चेटीकर्मकरणे) पाठ का अर्थ होगा—'अपनी चञ्चल भौहों से चेटीकर्म करने में' ।
२. 'जोइणी व लअणच्चणलीलं' (जोगिनीव लयनर्तनलीलाम्) इस पाठ का अर्थ होगा—'योगिनी के समान लयपूर्वक नृत्य की लीला कर रही हैं' ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कोउँहल्लवसजंगम (चंचल)-वेसा वेणुवादणपरा अवराओ।
कालवेसवसहासिअलोआ ओसरंति पणमंति हसंति ॥ १८ ॥

कौतूहलवशजङ्गम (चञ्चल)-वेषा वेणुवादनपरा अपराः।
कालवेषवशहासितलोका अपसरन्ति प्रणमन्ति हसन्ति ॥ १८ ॥

व्याख्या—किङ्किणीभिः = क्षुद्रघंटिकाभिः कृताः = विहितः झणज्झण-शब्दाः (रणज्झणशब्दाः) याभिस्ता किंकणीकृतझणज्झणशब्दाः, कण्ठगीतैः लयैश्च नियन्त्रिताः तालाः याभिस्ताः कण्ठगीतलययन्त्रिततालाः, काश्चित् नर्तक्यः योगिनीनां = परिव्राजिकानां वलयेन = मण्डलाकारेण यन्नर्तनं = नृत्यं तदेव केलिः = क्रीडा तं योगिनीवलयनर्तनकेलिं = योगिनीवलयाख्य-नृत्यक्रीडाविशेषं कुर्वन्त्यः तारं = मनोहरमुन्नतं वा नूपुराणां रवं = शब्दं तारनूपुरवं विरचयन्ति = कुर्वन्ति। अथवा काश्चित् नर्तक्यः योगिनीव लयनर्तनलीलां विरचयन्ति यस्यां किङ्किणीकृतझणज्झणं कण्ठगीतिलययन्त्रित-तालं तारनूपुरवं च भवति। स्वागतावृत्तम् ॥ १७ ॥

अन्वयः—कोदुहल्लवसजंगमवेसा वेणुवादणपरा कालवेसवसहासिअलोआ अवराओ ओसरंति पणमंति [1]हसंति [च] ॥ १८ ॥

व्याख्या—कौतूहलवशेन जङ्गमः = चञ्चली वेषः यासां ताः कौतूहलवश-जंगमवेषाः = धृतविभिन्नवेषाः वेणोः वादने तत्पराः वेणुवादनपराः = वंशी-वादनसंलग्नाः, कालवेषस्य = कृष्णवेषस्य वशेन = धारणेन हासिताः = मनोरञ्जनं प्रापिताः लोकाः = जनाः याभिस्ताः कालवेषवशहासितलोकाः अपराः नर्तक्यः, अपसरन्ति = दूरं गच्छन्ति, प्रणमन्ति = नमस्कुर्वन्ति, स्वयं

कौतूहल के कारण चञ्चल वस्त्रवाली, वांसुरी बजाने में तल्लीन तथा कृष्णवेष धारण करने से लोगों को हँसाने वाली दूसरी नर्तकियाँ पीछे हटती हैं, प्रणाम करती हैं [और स्वयं भी] हँसती हैं ॥ १८ ॥

१. 'कालवेसवसभामिअलोआ' (कालवेषवशभ्रामितलोकाः) पाठ का अर्थ होगा—'कृष्णवेष धारण करने से लोग भ्रमित हो रहे हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(प्रविश्य)

सारङ्गिका—(पुरोऽवलोक्य) एसो महाराओ पुणो मरगअ-पुंजादो कअलीघरं अणुप्पविट्ठो। ता अग्गदो गदुअ देवीए विण्णाविदं णिवेदेमि। (उपसृत्य) जअदु जअदु भट्टा। देवी विण्णवेदि जधा साअंसमए तुम्हे मए परिणाइदव्व त्ति।

विदूषकः—भोदि ! किं एदं अकंडकुम्हंडपडणं ?

राजा—सारंगिए ! सव्वं वित्थरेण कहेसु (कधेसु)।

सारङ्गिका—एदं विण्णवीअदि—अणंतरादिक्कंतचउद्दसीदिअसे

(प्रविश्य)

सारङ्गिका—(पुरोऽवलोक्य) एष महाराजः पुनर्मरकतपुञ्जात् कदलीगृहमनुप्रविष्टः। तदग्रतो गत्वा देवीविज्ञापितं विज्ञापयामि। (उपसृत्य) जयतु जयतु भर्ता। देवी विज्ञापयति यथा संध्यासमये यूयं मया परिणेतव्या इति।

विदूषकः—भवति ! किमेतदकालकूष्माण्डपतनम् ?

राजा—सारङ्गिके ! सर्वं विस्तरेण कथय।

सारङ्गिका—इदं विज्ञाप्यते—अनन्तरातिक्रान्तचतुर्दशीदिवसे देव्या

हसन्ति च। विविधक्रीडाभिः सहृदयान् अनुरञ्जयन्तीति भावः। दीपका-लङ्कारः। स्वागतावृत्तम् ॥ १८ ॥

[प्रवेश करके]

सारङ्गिका—[सामने देखकर] महाराज मरकतकुञ्ज से कदलीगृह में अनुप्रविष्ट हो गये हैं। तब आगे बढ़कर देवी के निवेदन (संदेश) का निवेदन कर दूँ। [पास जाकर] देव की जय हो, जय हो। देवी का निवेदन है कि 'सायंकाल मैं तुम्हारा विवाह करूँगी'।

विदूषक—अरे ! यह असमय में कूष्माण्ड-पतन (अचानक किसी फल की प्राप्ति होना) कैसे हुआ ?

राजा—सारङ्गिके ! विस्तार से सब कुछ कहो।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देवीए पोम्मराअमाणिक्कमअं गोरिं कदुअ भइरवाणंदेण पडिट्ठाविदा सअं च दिक्खा गहिदा। तदा ताए विण्णत्तो जोईसरो गुरुदक्खिणा-णिमित्तं। भणिदं च तेण—जदि अवस्सं गुरुदक्खिणा दाअव्वा ता एसा दीअदु महाराअस्स। तदो देवीए विण्णत्तं जं आदिसदि भअवं तं काअव्वं। पुणो वि उल्लविदं तेण। अत्थि एत्थ लाडदेसम्मि चंडसेणो णाम राआ। तस्स दुहिदा घणसारमंजरि त्ति सा देव्वण्णेहिं आइट्ठा त्ति—एसा चक्कवट्टिघरिणी भविस्सदि त्ति। तदो सा महा-राएण परिणेदव्वा जेण गुरुदक्खिणा दिण्णा भविस्सदि, भट्टा

पद्मरागमणिमयी गौरी कृत्वा भैरवानन्देन, प्रतिष्ठापिता स्वयं च दीक्षा गृहीता। ततस्तया विज्ञप्तो योगीश्वरो गुरुदक्षिणानिमित्तम्। भणितं च तेन यद्यवश्यं गुरुदक्षिणा दातव्या तदेषा दीयतां महाराजस्य। ततो देव्या विज्ञप्तं यदादिशति भगवान् तत्कर्तव्यम्। पुनरप्युल्लपितं तेन। अस्त्यत्र लाटदेशे चण्डसेनो नाम राजा। तस्य दुहिता घनसारमञ्जरी इति। सा दैवज्ञैरादिष्टा एषा चक्रवर्तिगृहिणी भविष्यतीति। ततो महाराजेन परिणेतव्या, येन गुरुदक्षिणा दत्ता भविष्यति, भर्तापि चक्रवर्ती कृतो भवति। ततो देव्या विहस्य

सारङ्गिका—ऐसा कहा जाता है—पिछली चतुर्दशी के दिन देवी ने पद्मराग-मणिनिर्मित पार्वती (गौरी) की प्रतिमा बनवाकर भैरवानन्द से (उसकी) प्राणप्रतिष्ठा करवाई है तथा स्वयं भी दीक्षा ली है। फिर उसने (देवी ने) योगीश्वर से गुरुदक्षिणा लेने को कहा। उन्होंने (योगीश्वर ने) कहा—'यदि गुरुदक्षिणा अवश्य ही देना है तो यह महाराज को दे दो।' तब देवी ने कहा—'जैसा भगवन् का आदेश हो, वैसा ही किया जाए'। पुनः उन्होंने (योगीश्वर) ने कहा—'यहाँ लाटदेश में चण्डसेन नाम का एक राजा है। उसकी घनसारमञ्जरी नाम की पुत्री है। उसके (घनसारमञ्जरी के) बारे में ज्योतिषियों ने कहा है—'यह चक्रवर्ती राजा की पत्नी होगी' अतएव [इसका] विवाह महाराज से करा देना चाहिए। इसीसे गुरु-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वि चक्कवट्टी किदो होदि। तदो देवीए विहसिअ भणिदं जं आण-वेदि भअवं तं कीरदि। अहं च विण्णविदुं पेसिदा गुरुदक्खिणा-णिमित्तं।

विदूषकः—(विहस्स) एदं तं सीसे सप्पो देसंतरे वेज्जो। इध अज्ज विवाहो, लाडदेसे घणसारमंजरी।

राजा - किं ते भइरवाणंदस्स पहावो परोक्खो। (तां प्रति) कहिं संपदं भइरवाणंदो !

सारङ्गिका— देवीए कारिदे पमदुज्जाणस्स मज्झट्ठिदे वडतरुमूले

भणितं यदादिशति भगवान्। अहं च विज्ञापयितुं प्रेषिता गुरुदक्षिणानिमित्तम्।

विदूषकः - (विहस्य) एतत्तच्छीर्षे सर्पो देशान्तरे वैद्यः। इह अद्य विवाहो लाटदेशे घनसारमञ्जरी।

राजा—किं ते भैरवानन्दस्य प्रभावः परोक्षः? (तां प्रति) कुत्र सांप्रतं भैरवानन्दः ?

सारङ्गिका— देव्या कारिते प्रमदोद्याने मध्यस्थिते वटतरुमूले चामुण्डा-

---

दक्षिणा भी हो जायेगी। [आपके] पति भी चक्रवर्ती हो जायेंगे। तब देवी ने हँसकर कहा—जैसी आपकी आज्ञा है वैसा ही किया जायेगा। मुझे आपके पास गुरु की गुरुदक्षिणा के निमित्त निवेदनार्थ भेजा है (अर्थात् आपको चलकर घनसारमञ्जरी के साथ विवाह करना है)।

विदूषक —[हँसकर] यह जो 'सिर पर सर्प और देशान्तर में वैद्य' [वाला उपाख्यान है। अर्थात् यह असंभव है।[1]]। यहाँ आज विवाह है और लाटदेश में घनसारमञ्जरी है।

राजा—क्या तुमने भैरवानन्द का प्रभाव नहीं देखा है ? [सारङ्गिका से] वर्तमान में भैरवानन्द कहाँ हैं ?

---

१. 'ता उवक्खाणं' (एतदुपाख्यानम्) घोष और निर्णयसागर के संस्करण में यह पाठ अधिक है। इसका अर्थ है 'यह एक उपाख्यान मात्र है'।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चासुंडाअदणे भइरवाणंदो वि देवीए समं आगमिस्सदि। तां अज्ज दक्खिणाविहिदो कोऊहलपरो विवाहो। ता इह ज्जेव्व देवेण ठादव्वं। (इति परिक्रम्य निष्क्रान्ता)

राजा—वअस्स ! सव्वं एदं भइरवाणंदस्स विअंभिदं ति तक्केमि।

विदूषकः—एवं णेदं। ण हु मअलंछणमंतरेण अण्णो मिअंकमणि-पुत्तलिअं पज्झरावेदि। ण हु सरअसमीरमंतरेण सेहालिआकुसु-

---

यतने भैरवानन्दोऽपि देव्या सममागमिष्यति। तदद्य दक्षिणाविहितः कौतूहलपरो विवाहः। तदिहैव देवेन स्थातव्यम्। [इति परिक्रम्य निष्क्रान्ता]

राजा—वयस्य ! सर्वमेतद्भैरवानन्दस्य विजृम्भितमिति तर्कयामि।

विदूषकः—एवंन्विदम्। न खलु मृगलाञ्छनमन्तरेणान्यो मृगाङ्कमणि-पुत्तलीं प्रस्वेदयति। न खलु शरत्समीरमन्तरेण शेफालिकाकुसुमोत्करं

सारङ्गिका—देवी के द्वारा बनवाये गये प्रमदोद्यान के मध्य में मौजूद वटवृक्ष के मूल में [स्थित] चामुण्डा देवी के मन्दिर में देवी के साथ भैरवानन्द भी आयेंगे। तब आज दक्षिणा-निमित्तक कौतूहल-जनक विवाह होगा।[1] तो महाराज को यहीं आना है।

[इस तरह घूमकर चली जाती है]

राजा—मित्र ! यह सब भैरवानन्द का माया-जाल है, ऐसा मानता हूँ।

विदूषक—ऐसा ही है, चन्द्रमा के अतिरिक्त और कौन चन्द्रकान्त-मणिनिर्मित पुत्तलिका को पिघला सकता है। शारदीय वायु को छोड़कर और कौन शेफालिका के फूलों को विकसित कर सकता है ?

---

१. 'तग्गदे अ तक्खणविहिदे कोदुअघरे विवाहो भविस्सदि' (तद्गते च तत्क्षणविहिते कौतुकगृहे विवाहो भविष्यति) यह पाठ प्रो० सुरु ने माना है, तदनुसार अर्थ होगा—'और वहाँ तत्काल बनाये गये कौतूहल-जनकगृह में विवाह होगा'।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुक्करं विकासेदि ।

(ततः प्रविशति भैरवानन्दः)

भैरवानन्दः—इअं सा वडतरुमूले णिब्भिण्णस्स सुरंगादुआरस्स पिधाणे चामुंडा (तां हस्तेन प्रणम्य पठति)

कप्पंतकेलिभवणे कालस्य पुरो सुराण रुहिरसुरं ।
जअइ पिअंती चंडी (काली) परमेट्ठीकवालचसएण ।। १९ ।।

विकासयति ।

(ततः प्रविशति भैरवानन्दः)

भैरवानन्दः—इयं सा वटतरुमूले निर्भिन्नस्य सुरङ्गाद्वारस्य पिधाने चामुण्डा । (तां हस्तेन प्रणम्य पठति)

कल्पान्तकेलिभवने कालस्य पुरोऽसुराणां रुधिरसुराम् ।
जयति पिबन्ती चण्डी (काली) परमेष्ठिकपालचषकेण ।। १९ ।।

अन्वयः—कालस्स पुरो कप्पंतकेलिभवणे असुराण रुहिरसुरं परमेट्ठीकवालचसएण पिअंती चंडी जअइ ।। १९ ।।

व्याख्या—पुरः = प्राचीनकाले, कालस्य = महाकालरूपिणो रुद्रस्य, कल्पान्त एव केलिभवनं तस्मिन् कल्पान्तकेलिभवने = कल्पान्तप्रलय-क्रीडासदने, असुराणां = रक्षासानां (पाठान्तरे—पुराणानां = प्राचीन-नाराणाम्) रुधिरमेव = रक्तमेव सुरा = मदिरा तां रुधिरसुरां, परमेष्ठिनः = ब्रह्मणः कपालमेव चषकं = पानपात्रं तेन परमेष्ठिकपालचषकेण = ब्रह्मकपालपानपात्रेण, पिबन्ती = पानं कुर्वन्ती चण्डी = दुर्गा, जयति = सदा सर्वोत्कर्षेण वर्तते । आर्यावृत्तम् ।। १९ ।।

[इसके बाद भैरवानन्द का प्रवेश]

भैरवानन्द—वटवृक्ष के नीचे खुले हुए (निर्भिन्न) सुरङ्गद्वार पर आवरक स्वरूप यह चामुण्डा (देवी की मूर्ति) है । [हाथ जोड़कर एवं प्रणाम करके पढ़ता है]—महाकाल (रुद्र) के प्रलयकाल (कल्पान्त) रूपी केलि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(प्रविश्योपविश्य) अज्ज वि ण णिग्गच्छदि सुरंगादुवारेण कप्पूरमंजरी ।

(ततः प्रविशति सुरङ्गोद्घाटितकेन कर्पूरमंजरी)

कर्पूरमञ्जरी—भअवं ! पणमामि ।

भैरवानन्दः—उइदं वरं लहेसु । इह ज्जेव उवविस ।

(प्रविश्योपविश्य) अद्यापि न निर्गच्छति सुरङ्गाद्वारेण कर्पूरमञ्जरी ।

[ततः प्रविशति सुरङ्गोद्घाटितकेन कर्पूरमञ्जरी]

कर्पूरमञ्जरी—भगवन् ! प्रणमामि ।

भैरवानन्दः—उचितं वरं लभस्व । इहैवोपविश ।

भवन में ब्रह्मा (परमेष्ठी) के कपाल रूपी प्याले (चषक) से असुरों के रुधिर रूपी मदिरा को पीती हुई चण्डी देवी की जय हो ॥ १९ ॥[१]

[बैठकर] अभी तक सुरङ्गद्वार से कर्पूरमञ्जरी नहीं आई ।

[तब सुरङ्गद्वार का उद्घाटन करती हुई कर्पूरमञ्जरी का प्रवेश]

कर्पूरमञ्जरी—भगवन् ! प्रणाम करती हूँ ।

भैरवानन्द—उचित (स्वानुरूप) वर (पति) को प्राप्त करो। यहीं बैठो ।

[कर्पूरमञ्जरी वैसा ही करती है]

---

१. भगवान् रुद्र को मृत्यु का देवता माना जाता है। रुद्र को ही 'शिव' कहते हैं । चण्डी को ही 'काली' कहते हैं जिसका स्वरूप विकराल होता है । रुधिरपान उसका स्वभाव है । स्वरक्षार्थ उसकी स्तुति की जाती है । 'पुराणरुहिरसुरं' (पुराणरुधिरसुरां) पाठ का अर्थ होगा—'पुरातन पुरुषों के रुधिररूपी सुरा को' । घोष और पोद्दार जी के संस्करण में पाठ है 'असुराण रुहिरसुरपुरं' (असुराणां रुधिरसुरपुरं) और तदनुसार पोद्दारजी ने अर्थ किया है—'असुरों के रुधिर और सुरपुर को भी पीने वाली' ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(कर्पूरमञ्जरी तथा करोति)

भैरवानन्दः—(स्वगतम्) अज्ज वि ण एदि देवी ।

(प्रविस्य)

राज्ञी—(परिक्रम्य पुरोऽवलोक्य च) अए, इअं भअवदी चामुंडा । (प्रणम्यावलोक्य च) अध इअं कप्पूरमंजरी । ता किं णेदं (भैरवानन्दं प्रति) इदं विण्णवीअदि, णिअभवणे विवाहसामग्गिं कदुअ आअद म्हि । तदो गेण्हिअ आगमिस्सं ।

भैरवानन्दः—वच्छे ! एवं कीरदु ।

(राज्ञी व्यावृत्य परिक्रामति)

(कर्पूरमञ्जरी तथा करोति)

भैरवानन्दः—(स्वगतम्) अद्यापि नैति देवी ।

[प्रविश्य]

राज्ञी—(परिक्रम्य पुरोऽवलोक्य च) अये, इयं भगवती चामुण्डा । (प्रणम्य अवलोक्य च) अथ इयं कर्पूरमञ्जरी । तत्किं न्विदम् ? (भैरवानन्दं प्रति) इदं विज्ञाप्यते—निजभवने विवाहसामग्रीं कृत्वा आगतास्मि । तद् गृहीत्वाऽऽगमिष्यामि ।

भैरवानन्दः—वत्से ! एवं क्रियताम् ।

(राज्ञी व्यावृत्य परिक्रामति)

भैरवानन्द—[अपने मन में] अभी तक देवी नहीं आई ।

[प्रवेश करके]

रानी—[प्रवेशकर और देखकर] यह भगवती चामुण्डा है । [प्रणाम-कर और देखकर] अरे ! यह तो कर्पूरमञ्जरी है । यह सब क्या है ? [भैरवानन्द से] यह निवेदन करती हूँ—'अपने भवन में विवाह की सामग्री तैयार करके आई हूँ, अब उसे लेकर आती हूँ' ।

भैरवानन्द—पुत्रि ! ऐसा ही करो ।

[रानी लौटकर जाती है]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भैरवानन्दः—(विहस्य स्वगतम्) इअं कप्पूरमंजरीठाणं अण्णेसिदुं गदा। (प्रकाशम्) पुत्ति कप्पूरमंजरि ! सुरंगादुवारेण ज्जेव तुरिदपदं गदुअ सट्ठाणे चिट्ठ। देवीआगमणे पुणो आगंतव्वं।

(कर्पूरमञ्जरी तथा करोति)

राज्ञी—इदं रक्खाघरं (प्रविश्यावलोक्य च स्वगतम्) अए, इअं कप्पूरमंजरी। सा का वि सारक्खिआ मए दिट्ठा। (प्रकाशम्) वच्छे कप्पूरमंजरि ! कीदिसं दे सरीरं ? (आकाशे) किं भणसि—मह [सरीरे] सिरो वेअणा समुप्पण्ण त्ति ? (स्वगतम्) ता पुणो तहिं गमिस्सं। (प्रविश्य पार्श्वतोऽवलोक्य च) हला सहीओ ! विवाहोवकरणाइं लहु गेण्हिअ आअच्छध। (इति परिक्रामति)

भैरवानन्दः—(विहस्य स्वगतम्) इयं कर्पूरमञ्जरीस्थानमन्वेष्टुं गता। (प्रकाशम्) पुत्रि कर्पूरमञ्जरि ! सुरङ्गाद्वारेणैव त्वरितपदं गत्वा स्वस्थाने तिष्ठ। देव्यागमने पुनरागन्तव्यम्।

(कर्पूरमञ्जरी तथा करोति)

राज्ञी—इदं रक्षागृहम्। (प्रविश्यावलोक्य च स्वगतम्) अये, इयं कर्पूरमञ्जरी। सा कापि सदृशी मया दृष्टा। (प्रकाशम्) वत्से कर्पूरमञ्जरि ! कीदृशं ते शरीरम्। [आकाशे] किं भणसि मम [शरीरे] शिरोवेदना समुत्पन्नेति ? (स्वगतम्) तत्पुनस्तत्र गमिष्यामि। (प्रविश्य पार्श्वतोऽवलोक्य च) हला सख्यः ! विवाहोपकरणानि लघु गृहीत्वा आगच्छत। (इति परिक्रामति)।

भैरवानन्द—[हँसकर, मन में] यह कर्पूरमञ्जरी के स्थान की तलाशी लेने गई है। [प्रकाश में] बेटी कर्पूरमञ्जरी ! सुरंगद्वार से ही जल्दी-जल्दी कदम रखकर अपने स्थान पर जाओ। देवी के आने पर पुनः आ जाना।

[कर्पूरमञ्जरी वैसा ही करती है]

रानी—यह रक्षागृह है। [प्रवेशकर और देखकर] अरे ! यह कर्पूरमञ्जरी है। वह कोई इसके सदृश मैंने देखी होगी। [प्रकाश में] बेटी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(प्रविश्य कर्पूरमञ्जरी तथैवास्ते)

राज्ञी—(पुरोऽवलोक्य) इग्रं कप्पूरमंजरी।

भैरवानन्दः—वच्छे विब्भमलेहे ! ग्राणीदाइं विवाहोवग्ररणाइं ?

राज्ञी—ग्रध इं। किं पुण घणसारमंजरीसमुचिदाइं ग्राहरणाइं विसरिग्राइं (विसुमरिदाइं)। ता पुणो गमिस्सं।

भैरवानन्दः—एवं भोदु।

(प्रविश्य कर्पूरमञ्जरी तथैवास्ते)

राज्ञी—(पुरोऽवलोक्य) इयं कर्पूरमञ्जरी।

भैरवानन्दः—वत्से विभ्रमलेखे ! आनीतानि विवाहोपकरणानि।

राज्ञी—अथ किम्। किं पुनर्घनसारमञ्जरीसमुचितान्याभरणानि विस्मृतानि। तत्पुनर्गमिष्यामि।

भैरवानन्दः—एवं भवतु।

कर्पूरमंजरी कैसी हो ? [शब्दानुसार=तुम्हारा शरीर कैसा है ?, [आकाश में] क्या कह रही हो ? मेरे सिर में दर्द है।[1] [मन में] पुनः वहाँ जाऊँगी। [प्रवेशकर और बगल में देखकर] अरी सखियो ! विवाह की सामग्री शीघ्र लेकर आओ। [जाती है]

[कर्पूरमंजरी आकर पूर्ववत् बैठ जाती है]

रानी—[सामने देखकर] ये कर्पूरमञ्जरी है !!

भैरवानन्द—पुत्रि विभ्रमलेखा ! विवाह की सामग्री ले आई ?

रानी—ले आई। परन्तु घनसारमंजरी के योग्य आभूषण भूल आई हूँ। अतएव पुनः जाऊँगी।

---

१. यहाँ वाक्य अधूरा लगता है। अतएव 'सेरं सुप्पीअदु' (स्वैरं सुप्यताम्) ऐसा कुछ पाठ और होना चाहिए था। तदनुसार अर्थ होगा—'निश्चिन्त होकर सो जाओ। घोष और पोद्दारजी के संस्करण में यह पाठ नहीं है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(देवी नाटितकेन निष्क्रामति)

भैरवानन्दः—पुत्ति कप्पूरमंजरि ! तं ज्जेव कीरदु।

(कर्पूरमञ्जरी निष्क्रान्ता)

राज्ञी—(रक्षागृहं प्रविश्य कर्पूरमञ्जरीं दृष्ट्वा) अए, सारिक्खदाए विडंबि (विणडिद) म्हि। (स्वगतम्) झाणविमाणेण णिव्विग्घपरिसप्पिणा तं आणेदि महाजोई। (प्रकाशम्) सहीओ ! जं जं णिवेदिदं तां तां लहुअं गेण्हिअ आअच्छध। (चामुण्डायतनप्रवेशनाटितकेन तामवलोक्य) अहो सारिक्खदा।

(देवी नाटितकेन निष्क्रामति)

भैरवानन्दः—पुत्रि कर्पूरमञ्जरि ! तथैव क्रियताम्।

(कर्पूरमञ्जरी निष्क्रान्ता)

राज्ञी—(रक्षागृहं प्रविश्य कर्पूरमञ्जरीं दृष्ट्वा) अये, सादृश्येन विडम्बितास्मि (विनटिताऽस्मि)। (स्वगतम्) ध्यानविमानेन निर्विघ्नपरिसर्पिणा तामानयति महायोगी। (प्रकाशम) सख्यः ! यद्यन्निवेदितं तत्तद्गृहीत्वागच्छत। (चामुण्डायतनप्रवेशनाटितकेन तामवलोक्य) अहो सादृश्यम्।

भैरवानन्द—ऐसा ही करो।

[देवी=रानी नाटयपूर्वक जाती है]

भैरवानन्द—पुत्रि कर्पूरमंजरि ! वैसा ही करो। [कर्पूरमंजरी जाती है]

रानी—[रक्षागृह में प्रवेशकर और कर्पूरमंजरी को देखकर] अरे ! सादृश्य से मुझे भ्रम हो गया है। [मन में] महायोगी (भैरवानन्द) उसे (घनसारमंजरी को) निर्विघ्न रूप से चलने वाले ध्यानरूपी विमान से लाया है। [प्रकाश में] सखियो ! जो जो [सामान ले चलने को] कहा है उसे-उसे लेकर शीघ्र आओ। [चामुण्डा के मन्दिर में प्रवेशकर और उस घनसारमंजरी को देखकर] आश्चर्यजनक सादृश्य है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भैरवानन्दः—देवि ! उववित । महाराश्रो वि आअदो ज्जेव वट्टदि !

(ततः प्रविशति राजा विदूषकः कुरङ्गिका च)

भैरवानन्दः—आसणं आसणं महाराअस्स ।

(सर्वे यथोचितमुपविशन्ति)

राजा—(नायिकां प्रति) एसा सा कप्पूरमंजरी । सरीरिणी मअरद्धअपारिद्धिआ (पालित्तिआ) देहंतरसंठिदा सिंगाररसलच्छीव (सिंगार-सवरचावलट्ठी), दिवससंचारिणी पुण्णिमाचंदचंदिआ । अवि व गुणगणमाणिक्कमंजूसा, रअणामई अंजणसलाआ (पुत्तलिआ) । जधा अ एसा रअणकुसुमणिप्फण्णा (-णिब्भरा)

भैरवानन्दः—देवि ! उपविश । महाराजोऽप्यागत एव वर्तते ।

(ततः प्रविशति राजा विदूषकः कुरङ्गिका च)

भैरवानन्दः—आसनं आसनं महाराजस्य ।

(सर्वे यथोचितमुपविशन्ति)

राजा—(नायिकां प्रति) एषा शरीरिणी मकरध्वजपारिध्वजिका (पालयितृका) देहान्तरेण संस्थिता शृङ्गाररसलक्ष्मीव (शृङ्गारशवरचापयष्टिः) । दिवससंचारिणी पूर्णिमाचन्द्रचन्द्रिका । अपि च गुणगणमाणिक्यमञ्जूषा । रत्नमय्यञ्जनशलाका (पुत्तलिका) । तथा चैषा रत्नकुसुमनिष्पन्ना

भैरवानन्द—देवी ! बैठो । महाराज भी आ गये हैं ।

[तब राजा, विदूषक और सारंगिका का प्रवेश होता है]

भैरवानन्द—महाराज के लिए आसन [दो] ।

[सभी यथोचित स्थान पर बैठते हैं]

राजा—[नायिका से] यह वही कर्पूरमंजरी है । साक्षात् (शरीरिणी) कामदेव की पताका है । देहान्तर से उपस्थित मानो शृंगाररस की लक्ष्मी है । दिन में सञ्चरण करने वाली पूर्णिमा के चन्द्रमा की चाँदनी है । गुणसमुदाय-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महुलच्छी । किं च—

भुवणजअपडाआ रूअरेहा इमीए
जह तह णअणाणं गोअरं जस्स जादि ।

(-निर्भरा) मधुलक्ष्मीः । किं च—

भुवनजयपताका रूपरेखाऽस्या
यथा तथा नयनयोर्गोचरं यस्य याति ।

रूपी मोतियों की बनी मंजूषा है । रत्नमयी अंजनशलाका है । रत्नकुसुमों से बनी मधुमास की लक्ष्मी है ।[१] और भी—

१. घोष तथा पोद्दारजी के संस्करण में राजा का कथन जनान्तिक में दिया गया है । प्रो० सुरू ने 'सा कप्पूरमंजरी' पाठ नहीं दिया है । केवल 'एसा' पद का प्रयोग किया है जो कर्पूरमञ्जरी तथा घनसार-मञ्जरी दोनों में जोड़ा जा सकता है । कुछ अन्य पाठ भेदों के अनुसार अर्थ इस प्रकार है—'मअरद्धअ पालित्तिआ' (मकरध्वज पालयितृका) =कामदेव की यह शरीरधारिणी, निधि अथवा राजधानी है । 'पालित्तिआ' देशी शब्द है और अर्थ है—खजाना; राजधानी, पोषिका आदि । 'देहंतरसंठिदा सिंगारसवरचावलट्ठी' (देहान्तरसंस्थिता शृङ्गार-शबरचापयष्टिः =शृङ्गाररूपी किरात का देहान्तर से स्थित धनुष दण्ड है) । शृङ्गार को 'किरात' कहने से उसकी भयंकरता प्रतिपादित की गई है अर्थात् इसे देखकर कामपीड़ित हुए बिना कोई नहीं रह सकता है । 'गुणगणमाणिक्कसुत्तिआ' (गुणगणमाणिक्यसूत्रिका = गुण - रूपी मोतियों को पिरोने के लिए सूत्र के समान है) । 'रअणमई बाउल्लिआ' (रत्नमयी पुत्तलिका=रत्ननिर्मित पुतली है) । वाउल्लिआ अथवा बउल्ली देशी शब्द हैं । 'अरण्णकुसुमणिप्फण्णा (अरण्यकुसुम-निष्पन्ना=वन के फूलों से बनी)ऐसा कहने से प्रतिध्वनित होता है कि अब तक ये कहाँ थी ?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वसइ मश्चरकेऊ तस्स चित्ते विचित्ते
वलइअधणुदंडो पुंखिदेहिं सरेहिं ।। २० ।।

विदूषकः—(जनान्तिकम्) सच्चं किदं तए आहाणश्रं । तडं गदाए वि णावाए ण विस्ससीअदि । ता तुण्हीश्रो चिट्ठ ।

वसति मकरकेतुस्तस्य चित्ते विचित्रे
वलयितधनुर्दण्डः पुङ्खितैः शरैः ।। २० ।।

विदूषकः—(जनान्तिकम्) सत्यं कृतं त्वयाऽऽभाणकम् । तटं गताया अपि नौकाया न विश्वसितव्यम् । तत्तूष्णीकः तिष्ठ ।

अन्वयः—इमीए रूअरेहा भुवणजअपडाआ, जस्स जह तह णअणाण गोअरं जादि तस्य विचित्ते चित्ते पुंखिदेहिं सरेहिं वलइअधणुदंडो मअरकेऊ वसइ ।। २० ।।

व्याख्या—अस्याः = घनसारमञ्जरीत्वेन स्थितायाः कर्पूरमञ्जर्याः, रूपरेखा = रूपशोभा, भुवनजयस्य = त्रिभुवनविजयशीलस्य कामदेवस्य यद्वा भुवनस्य = लोकस्य जये पताका = ध्वजा इव भुवनजयपताका अस्ति । यस्य कामिपुरुषस्य यथा तथा = येन केनापि प्रकारेण, नयनयोः = नेत्रयोः गोचरं = विषयं प्रत्यक्षं वा याति अर्थात् यो अस्याः सौन्दर्यं विलोकयति तस्य पुरुषस्य विचित्रे = किं कर्तव्यविमूढतया विचारशून्ये, चित्ते = अन्तःकरणे, पुङ्खितैः = सज्जीकृतैः तीक्ष्णैर्वा, शरैः = बाणैः, वलयितः=मण्डलितः धनुर्दण्डः =कार्मुकयष्टिः येन सः वलयितधनुर्दण्डः मकरः, केतौ यस्य सः मकरकेतुः = कामदेवः, वसति । यूनाम् एषा अवलोकमात्रेणैव कामार्तं करोति । अतोऽस्याः अप्रतिमलावण्यं व्यज्यते । मालिनीवृत्तम् ।। २० ।।

इसकी यह सुन्दरता [कामदेव की] संसार की विजय-सूचक पताका है । जिस किसी प्रकार [यह] जिसके (कामीपुरुष के) दृष्टिगोचर होती हैं उसके चकित हृदय (अथवा किंकर्तव्यविमूढ अन्तःकरण) में कुण्डलाकार धनुषपर बाण चढ़ाकर कामदेव निवास करने लगता है ।। २० ।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भैरवानन्दः—वच्छे ! पत्तं विवाहमंगलमुहुत्तं । ता महाराअस्स-क्किज्जदु तए जधोचिदप्पडिवण्णं ।

राज्ञी—(कुरङ्गिकां प्रति) कुरंगिए ! तुमं महाराअस्स विवाहणेवच्छं कुरु (कुण)। सारंगिआ वि घणसारमंजरीए करेदु ।

(इत्युभे उभयोर्विवाहनेपथ्यकरणं नाटयतः)

भैरवानन्दः—उवज्झाओ हक्कारीअदु ।

भैरवानन्दः—वत्से ! प्राप्तं विवाहमङ्गलमुहूर्तम् । तस्मात् महाराजस्य क्रियतां त्वया यथोचितं प्रतिपन्नम् ।

राज्ञी—(कुरङ्गिकां प्रति) कुरङ्गिके ! त्वं महाराजस्य विवाहनेपथ्यं कुरु । सारङ्गिकाऽपि घनसारमञ्जर्याः करोतु ।

(इत्युभे उभयोर्विवाहनेपथ्यकरणं नाटयतः)

भैरवानन्दः —उपाध्याय आकार्यताम् ।

विदूषक—[जनान्तिक में] तुमने कथा को सत्य सिद्ध कर दिया। तट को प्राप्त हुई भी नौका का विश्वास नहीं करना चाहिए, अतएव चुपचाप रहें ।[१]

भैरवानन्द—पुत्रि ! विवाह का मङ्गलमुहूर्त आ गया है । अतएव तुम महाराज की यथोचित साजसज्जा करो ।

रानी—[कुरङ्गिका से] तुम महाराज का अलङ्करण करो । सारंगिका तुम घनसारमञ्जरी का [अलङ्करण] करो ।

---

१. प्रो० सुरु ने यहाँ इतना और पाठ जोड़ने का संकेत दिया है—'पिअवअस्स तुमं मअणसरप्पहारजज्जरिअहिअअं एवं कुरुकुराअंतं सुणिअ देवी तुह अहिप्पाअं मुणिस्सदि' [प्रियवयस्य ! त्वं मदनशरप्रहारजर्जरितहृदयम् एवं कुरुकुरायमाणं श्रुत्वा देवी तवाभिप्रायं ज्ञास्यसि)—प्रिय मित्र ! कामदेव के बाणों के प्रहार से जर्जरित हृदयवाले तुम्हारे ऐसे कथन को सुनकर देवी तुम्हारे अभिप्राय को जान जायेगी ।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राज्ञी—अज्जउत्त ! एसो सअलसोत्तिअमोलिमंडणं उवज्झाओ अज्जकविंजलओ चिट्ठदि। ता कीरदु अग्गिआरिअं।

विदूषकः—एस सज्जो म्हि। भो वअस्स ! उत्तरीए गंठि दाइस्सं दाव। हत्थेण हत्थं गेण्ह कप्पूरमंजरीए।

[इति हस्ते हस्तं ग्राहयति कर्पूरमञ्जर्याः]

राज्ञी—(सचमत्कारकं सविषादञ्च) कुदो कप्पूरमंजरी ?

भैरवानन्दः—(तां तस्या भावमुपलभ्य विदूषकं प्रति) तुमं

राज्ञी—आर्यपुत्र ! एष सकलश्रोत्रियमौलिमण्डनमार्यपुत्रस्य उपाध्याय आर्यकपिञ्जलस्तिष्ठति। तत्करोत्वग्न्याचार्यकम् (अग्निकारिकाम्)।

विदूषकः—एष सज्जोऽस्मि। भो वयस्य ! उत्तरीये ग्रन्थि दास्यामि तावत् हस्तेन हस्तं गृहाण कर्पूरमञ्जर्याः।

(इति हस्ते हस्तं ग्राहयति कर्पूरमञ्जर्याः)

राज्ञी—(सचमत्कारं सविषादञ्च) कुतः कर्पूरमञ्जरी ?

भैरवानन्दः—(तं तस्या भावमुपलभ्य विदूषकं प्रति) त्वं सुष्ठुतरं

[दोनों, दोनों का वैवाहिक अलङ्करण करती हैं]

भैरवानन्द—उपाध्याय (पुरोहित) बुलाया जाये।

रानी—आर्यपुत्र ! ये समस्त श्रोत्रियों (ब्राह्मणों) के शिरोभूषण आर्यपुत्र के उपाध्याय आर्य कपिञ्जल हैं। अतः अग्न्याचार्य (पुरोहित) का कार्य करें।

विदूषक—यह मैं तैयार हूँ। हे मित्र ! उत्तरीय (दुपट्टा) में गाँठ बांधता हूँ तबतक आप कर्पूरमंजरी का हाथ ग्रहण करें।

[कर्पूरमंजरी का हाथ राजा के हाथ में देता है]

रानी—[चौंककर और दुःख के साथ] कर्पूरमंजरी कहाँ है ?

भैरवानन्द—[उसके उस अभिप्राय को जानकर विदूषक से] तुम ठीक ही भूल गये हो क्योंकि कर्पूरमंजरी का घनसारमंजरी यह नामान्तर (दूसरा नाम) समझते हो।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुट्ठुतरं भुल्लो सि। जदो कप्पूरमंजरीए घणसारमंजरि त्ति णामंतरं जाणासि।

राजा—(करमादाय)

जे कंटआ तिउसमुद्धफलेसु (तिमिसमुद्धफलाण) संति
जे केअईकुसुमगब्भदलावलीसु।
फंसेण णूणमिह (तुह) मज्झ सरीरदिण्णा।
ते सुंदरीअ बहला पुलअंकुराली॥ २१॥

भ्रान्तोऽसि। यतः कर्पूरमञ्जर्या घनसारमञ्जरीति नामान्तरं जानासि।

राजा—(करमादाय)

ये कण्टकास्त्रपुष (तिमिष)-मुग्धफलेषु सन्ति
ये केतकीकुसुमगर्भदलावलीषु।
स्पर्शेन नूनमिह (तव) मम शरीरदत्ता-
स्ते सुन्दर्या बहलाः पुलकाङ्कुरालयः॥ २१॥

अन्वयः—तिउसमुद्धफलेसु जे कंटआ संति, केअईकुसुमगब्भदलावलीसु जे [कंटआ संति] ते णूणं इह सुंदरीअ फंसेण मज्झ शरीरदिण्णा बहला पुलअंकुराली॥ २१॥

राजा—[हाथ पकड़कर]—

त्रपुष के सुन्दर फलों में जो कांटे होते है और केतकी-फूल के गर्भदलों में (सम्पुटों) में जो (कांटे) होते हैं वे (कांटे) अवश्य ही इस सुन्दरी (कर्पूरमंजरी) के स्पर्श से मेरे शरीर में उत्पन्न हुए विपुल रोमाञ्च (पुलकांकुर) हैं॥ २१[1]॥

---

1. 'मज्झ सरीरतुल्ला पुलअंकुरिल्ला' (ममशरीरतुल्या पुलकाङ्कुराः) ऐसा पाठ होने पर अर्थ होगा—'वे कांटे मेरे शरीर के पुलकाङ्कुरों (रोमाञ्चों) के सदृश हैं। कहीं कहीं 'तिउसमुद्धफलेसु' सप्तम्यन्त प्रयोग न करके 'तिउसमुद्धफलाण' ऐसा षष्ठयन्त प्रयोग मिलता है। इससे अर्थ में कोई अन्तर नहीं आता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदूषकः—भो वअस्स ! भामरीओ दिज्जंतु । हुदवहे लाजंजलीओ खिप्पिज्जंतु ।

(राजा भ्रमणं नाटयति । नायिका धूमेन व्यावृतमुखी तिष्ठति । राजा परिणयति । राज्ञी सपरिवारा निष्क्रान्ता ।)

विदूषकः—भो वयस्य ! भ्रामर्यो दीयन्ताम् । हुतवहे लाजाञ्जलयः क्षिप्यन्ताम् ।

(राजा भ्रमणं नाटयति । नायिका धूमेन व्यावृतमुखी तिष्ठति । राजा परिणयति । राज्ञी सपरिवारा निष्क्रान्ता ।)

व्याख्या—त्रपुषाणां = त्रपुषाख्यलताविशेषाणां यानि मुग्धानि = मनोहराणि कोमलानि वा फलानि सन्ति तेषां त्रपुषमुग्धफलानां, ये कण्टकाः = सूक्ष्माग्रास्सन्ति, किञ्च केतकीनां कुसुमानि तेषां केतकीकुसुमानां केतकीपुष्पाणां, गर्भः तस्य दलानि तेषां गर्भदलानां = अन्तःकोमलपत्राणाम् आवलीषु = पङ्क्तिषु केतकीकुसुमगर्भदलावलीषु च ये कण्टकास्सन्ति ते कण्टकाः नूनं = निश्चयेन इह सुन्दर्याः = रूपवत्याः कर्पूरमञ्जर्याः, स्पर्शेन = करालिङ्गनेन मम राज्ञः शरीरे = अङ्गे दत्ताः = उत्पन्नाः शरीरदत्ताः, बहला = विपुलाः पुलकानां = रोमाञ्चानां निकराः = समूहाः पुलकाङ्कुरास्सन्ति । ये खलु कर्पूरमञ्जर्याः करस्पर्शेन संजाताः रोमाञ्चास्सन्ति ते त्रपुषादीनां कण्टकास्सन्तीति भावः । उत्प्रेक्षालङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ।। २१ ।।

विदूषक—हे मित्र ! भावरें करो (अग्नि-परिक्रमा करो) । अग्नि में लाजा छोड़े जायें ।[१]

---

१. प्रो० सुरु ने यहाँ टिप्पणी में निम्न पद की ओर संकेत दिया है—'तुवरिअपदं करीअदु सत्तपदीपरिक्कमो' (त्वरितपदं करोतु सप्तपदपरिक्रमः) = शीघ्रता से सात परिक्रमायें करो) । हिन्दू विवाह पद्धति में सात परिक्रमाओं के पूर्व तक विवाह अधूरा होता है । यहाँ विदूषक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भैरवानन्दः—विवाहे दक्खिणा दिज्जदु आचारिअस्स ।
राजा—दिज्जदु । वअस्स ! गामसअं ते दिण्णं ।

भैरवानन्दः—विवाहे दक्षिणा दीयते आचार्यस्य ।
राजा—दीयते । वयस्य ! ग्रामशतं ते दत्तम् ।

[राजा परिक्रमा करता है । नायिका धुएँ से मुख घुमा लेती है । राजा विवाह कर लेता है । रानी सपरिवार चली जाती है ।[1]]
भैरवानन्द—विवाह में आचार्य को दक्षिणा दो ।
राजा—दी जा रही है । मित्र ! सौ गाँव तुम्हें दिए ।

गड़बड़ होने की आशंका से शीघ्र परिक्रमा करने को कह रहा है ।
१. घोष तथा पोद्दार जी के संस्करण में यहीं सट्टक समाप्त हो जाता है । वहाँ निम्न वाक्य के द्वारा सट्टक-समाप्ति को दर्शाया है—[भ्रामर्यां नाटयति नायकः । धूमेन व्यावृत्तमुखी राज्ञी सपरिवारा निष्क्रान्ता]
प्रो० सुरु तथा कोनो के संस्करण में यहाँ से पाठ एकदम भिन्न है । जैसे—
[राजा सर्वं तथैव नाटयति । नायिका सलज्जा तिष्ठति । राजा विवाहं निर्वर्त्य सोत्साहं यथार्हं सर्वान् सम्भ्यर्च्य चक्रवर्ती भूत्वा आसाञ्चक्रे ।]

[नेपथ्ये]

वैतालिकः—सुहाअ भोदु विवाहमहूसवो देवस्स (सुखाय भवतु विवाहमहोत्सवो देवस्य) ।

जं मुद्धं तिमिसं णवं च पणसं जे पारिभद्ददुमा
　　जे दंडा कमलाण किं च कुसुमं जं केअईसंभवं ।
संके तुज्झ कलेवरे गुणगणं लद्धं बला तारिसा
　　रोमंचा फुडपुट्ठकंटअमिसा मेल्लंति णिच्चुल्लसा ॥२२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदूषकः—सोत्थि होदु । (इति नृत्यति)
भैरवानन्दः—महाराअ ! किं ते पुणो अ पिअं कुणोमि ?

विदूषकः—स्वस्ति भवतु । (इति नृत्यति)
भैरवानन्दः—महाराज ! किं ते पुनरपि प्रियं करोमि ?

विदूषक—कल्याण हो । (नाचता है)
भैरवानन्द—महाराज ! और आपका क्या प्रिय करूँ ।

(यन्मुग्धं तिमिषं नवं च पनसं ये परिभद्रद्रुमा
ये दण्डाः कमलानां किञ्च कुसुमं यत्केतकीसंभवम् ।
शङ्के तव कलेवरे गुणगणोलब्धो बलात्तादृशा
रोमाञ्चाः स्फुटपुष्टकण्टकमिषान्मुञ्चन्ति नित्योल्लासाः ॥ २२ ॥)

भैरवानन्दः—अण्णं किं दे पिअं करीअदु (अन्यत् किं ते प्रियं क्रियताम्) ।

राजाः—इदो वि परं किं पिअं, जदो (इतोऽपि परं किं प्रियम् । यतो)—

नोट—शेषांश के लिए मूल के कोष्ठक वाला अंश देखें ।

हिन्दी अर्थ—[राजा सब कुछ वैसे ही करता है । नायिका लजाती है । राजा विवाह करके, सभी का उचित सम्मान करके तथा चक्रवर्ती होकर आशा करता है] ।

[नेपथ्य में] वैतालिक-विवाहमहोत्सव महाराज के लिए सुखकर हो—कोमल तिमिष या कुम्हड़ा (Gourd melon) का फल, नवीन पनस (Jack fruit), पारिभद्र वृक्ष (Coral tree), कमलनाल और केतकी के फलों में जो गुणों के समुदाय हैं वे सब तुम्हारे शरीर में बलात् रोमाञ्च के रूप में आ गए हैं जो रोमाञ्च स्पष्ट तथा पुष्ट कण्टकों के बहाने निरन्तर उल्लास प्रकट कर रहे हैं ... [कलेवरे' में पञ्चमी विभक्ति (कलेवरात्) करने पर अर्थ होगा—उन त्रपुष आदि ने आपके शरीर से गुणगणों को प्राप्त किया है और रोमाञ्चित होकर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा—जोईसर ! कमवरं पिअं वट्टदि । जदो—
कुंतलेसरसुआकरफंसप्फारसोक्खसिढिलीकिदसग्गो ।
पालएमि वसुहातलरज्जं चक्कवट्टिपअवीरमणिज्जं ।। २२ ।।

राजा—योगीश्वर ! किमपरं प्रियं वर्तते ? यत:—
कुन्तलेश्वरसुताकरस्पर्शस्फारसौख्यशिथिलीकृतस्वर्गः ।
पालयामि वसुधातलराज्यं चक्रवर्तिपदवीरमणीयम् ।। २२ ।।

अन्वयः—कुंतलेसरसुआ-कर-फंस - प्फार - सोक्ख - सिढिलीकिद - सग्गो चक्कवट्टिपअवीरमणिज्जं वसुहातलरज्जं पालएमि ।। २२ ।।

राजा—योगीश्वर ! अब इससे बढ़कर और दूसरा क्या प्रिय हो सकता

प्रसन्नता प्रकट कर रहे हैं ।]

भैरवानन्द—और आपका क्या प्रिय करूँ ।

राजा—इससे बढ़कर और क्या प्रिय है, क्योंकि—

अन्वयः—जं मुद्धं तिमिसं, णवं च पणसं, जे पारिभद्ददुमा, जे कमलाण दंडा, किं च केअईसंभवं जं कुसुमं [एतेषाम्] गुणगणं तुज्झ कलेवरे बला लद्धं [इति] संके । [यतः] तारिसा रोमंचा फुडपुट्ठकंठअमिसा णिच्चुल्लसा मेल्लंति ।। २२ ।।

[व्याख्या—यत् मुग्धं=कोमलमविपक्वं, तिमिषं=कर्कटीफलं, नवं=नूतनोत्पन्नं पनसं=पनसाख्यफलं ('कटहल' इति हिन्दीभाषायाम्), ये पारिभद्रस्य द्रुमाः=तदाख्यवृक्षाः, ये कमलानां दण्डाः=कमलनालाः, किञ्च, केतकीसंभवं=केतक्युत्पन्नं यत् कुसुमं=पुष्पम् एतेषां सर्वेषां गुणगणः=गुणसमुदायः, बलात् तव=राज्ञः, कलेवरे=शरीरे, लब्धः=स्थानं प्राप्त इति शङ्के=संभावयामि । यतः स्फुटाः पुष्टाश्च ये कंटकाः तेषां मिषात् स्फुटपुष्टकण्टकमिषात्=प्रकटपुष्टकण्टकव्याजेन रोमाञ्चाः=पुलकाङ्कुराः, नित्योल्लासाः=सततहर्षाः मुञ्चन्ति=प्रकटीकुर्वन्ति । शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् । ।। २२ ।।]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

[देवी रोसकसाअमाणसवई णो होइ सावत्तए
लद्धापुण्णससंकमंडलमुही सिंगारसंजीविणी।
संजाआ अवि चक्कवट्टिपअवी किं अण्णमब्भत्थणं
सव्वं तुज्झ अणुग्गहेण भरिअं जं माणुसे लब्भइ ॥ २३ ॥]

[देवी रोषकषायमानसवती न भवति सापत्न्ये
लब्धा पूर्णशशाङ्कमण्डलमुखीश्रृङ्गारसञ्जीवनी।
संजाताऽपि चक्रवर्तीपदवी किमन्यदभ्यर्थनं
सर्वं तवानुग्रहेण भृतं यन्मानुषे लभ्यते ॥२३॥]

व्याख्या—कुन्तलेश्वरस्य=कुन्तलदेशाधिपस्य सुता=दुहिता कर्पूरमञ्जरी तस्याः करस्य स्पर्शः=पाणिपीडनं तेन स्फारं=निरतिशयं यत् सौख्यम्=आनन्दस्तेन शिथिलीकृतः=तिरस्कृतः मन्दीकृतः स्वर्गः=देवलोको येन सः कुन्तलेश्वरसुताकरस्पर्शस्फारसौख्यशिथिलीकृतस्वर्गः चक्रवर्तिनः=सार्वभौमस्य पदव्या=उपाधिना रमणीयं=मनोहरं चक्रवर्तिपदवीरमणीयं वसुधायाः तलं तस्य वसुधातलस्य=भूमण्डलस्य राज्यं वसुधातलराज्यं, पालयामि=राज्यसुखम् अनुभवामि प्रजापालनं वा करोमि। 'यल्लब्धव्यं तल्लब्धम्' अतो नास्ति कापि वाञ्छा इति ध्वनिः। स्वागतावृत्तम् ॥ २२ ॥

अन्वयः—सावत्तए देवी रोसकसाअमाणसवई णो होइ। पुण्णससंकमंडलमुही सिंगारसंजीविणी लद्धा। चक्कवट्टिपअवी अवि संजाआ। अण्णं अब्भत्थणं किं। तुज्झ अणुग्गहेण जं माणुसे लब्भइ [तं] सव्वं भरिअं [॥ २३ ॥]

है ? क्योंकि कुन्तलदेश के राजा की पुत्री (कर्पूरमंजरी) के हस्त-स्पर्श के परम आनन्द से स्वर्ग का भी सुख तुच्छ हो गया है तथा रमणीय चक्रवर्ती पद (उपाधि) के साथ समस्त भूमण्डल का राज्य कर रहा हूँ ॥ २२ ॥

[सपत्नी के आने पर भी देवी क्रोध से मलिन अन्तःकरण वाली नहीं है। पूर्ण चन्द्रमण्डल के समान मुखवाली तथा श्रृंगार की संजीवनी (कर्पूरमंजरी)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तधा वि इदं होदु, दाव—

[भरतवाक्यम्]

सत्थो (सच्चे) णंददु सज्जणाण सअलो वग्गो खलाणं पुणो।

तथापीदं भवतु, तावत्—

(भरतवाक्यम्)

सार्थो (सत्ये) नन्दतु सज्जनानां सकलो वर्गः खलानां पुन-

व्याख्या—सापत्न्ये = सपत्न्यां कर्पूरमञ्जर्याम् अपि देवी = पट्टराज्ञी, रोषेण = क्रुधा कषायः=कषाययुक्तं मलिनं मानसम् = अन्तःकरणं यस्याः सा रोषकषायमानसा, न भवति = नास्तीति किमन्यदभ्यर्थनीयम् ? अनेन शान्त्यतिशयो व्यज्यते। पूर्णं यत् शशाङ्कस्य=चन्द्रस्य मण्डलवत्=बिम्बवत् मुखं=वदनं यस्याः सा पूर्णशशाङ्कमण्डलमुखी, शृङ्गारस्य=मदनस्य सौन्दर्यस्य वा सञ्जीवनी = जीवनौषधिः कर्पूरमञ्जरी शृङ्गारसञ्जीवनी लब्धा= पत्नीत्वेन प्राप्ता। अनेन सुखातिशयो व्यज्यते। चक्रवर्तिनः=सार्वभौमस्य पदवी=उपाधिरपि संजाता = प्राप्ता। अनेन वैभवातिशयो व्यज्यते। अधुना अभ्यर्थनीयं = प्राप्त्यर्थं प्रार्थनीयमन्यम्=अपरं, किम् = नास्ति किमपि वस्तु इति। यद् वस्तु मानुषे=नरजन्मनि लभ्यते=प्राप्यते, तत्सर्वं मया=राज्ञा, तव = भैरवानन्दस्य अनुग्रहेण = कृपया, भृतं=लब्धम्। प्रार्थनीयवस्त्वभावात् किं प्रार्थयामि ? न किमपि। तव मयि या महती कृपा अस्ति सा अग्रेऽपि स्यादिति शेषः। शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् [॥ २३ ॥]

प्राप्त हो गई है। चक्रवर्ती का पद भी प्राप्त हो गया है। अब क्या अभ्यर्थना (इच्छा) है ? जो मनुष्यों को प्राप्तव्य है वह सब आप के अनुग्रह से प्राप्त हो गया है ॥ २३ ॥]

फिर भी ऐसा होवे—[भरत वाक्य][1]

---

१. दृश्यकाव्य के अन्त में मंगल-कामना रूप भरतवाक्य देने की परम्परा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

णिच्चं खिज्जदु भोदु वंभणजणो सच्चासिहो सव्वदा ।
मेहो मुंचदु संचि ं पि सलिलं सस्सोचिग्रं भूग्रले
लोग्रो लोहपरम्मुहो णुदिग्रहं धम्मे मदि भोदु ग्र ॥ २४ ॥

नित्यं खिद्यतु भवतु ब्राह्मणजनः सत्याशीः सर्वदा ।
मेघो मुञ्चतु संचितमपि सलिलं सस्योचितं भूतले
लोको लोभपराङ्मुखोऽनुदिवसं धर्मे मतिर्भवतु च ॥ २४ ॥

अन्वयः—सज्जणाण सअलो वग्गो सत्थो णंददु । पुणो खलाणं [सकलः वर्गः] णिच्चं खिज्जदु । बंभणजणा सव्वदा सच्चासिहो भोदु । भूअले मेहो संचिदं पि सलिलं सस्सोचिअं मुंचदु । लोओ अणुदिअहं लोहपरम्मुहो अ धम्मे मदि भोदु ॥ २४ ॥

व्याख्या—सज्जनानां = सत्पुरुषाणां, सकलः=निखिलः, वर्गः=गणः, अर्थेन सहितः सार्थः (पाठान्तरे—सत्ये), नन्दतु=सुखमनुभवतु । सज्जनाः कदापि दरिद्रतां न प्राप्नुवन्तु इति भावः । पुनः, खलानां=दुष्टानां सकलः वर्गः नित्यं = सर्वदा खिद्यतु=कष्टमनुभवतु । यतः दुष्टतायाः परित्यागो भवेत् । ताडनीयाः खलु दुष्टाः । ब्राह्मणजनः=विप्रवर्गः, सर्वदा=नित्यं, सत्याः आशिषः यस्य सः सत्याशीः=सफलाशीर्वादः भवतु । विप्राणां विदुषां वा

सभी सज्जन लोग वैभव के साथ आनन्दित हों तथा दुर्जन लोग हमेशा दुःखी रहें । ब्राह्मण लोग हमेशा सत्य-आशीर्वाद वाले हों । मेघ सञ्चित भी जल को भूतल पर कृषि के अनुकूल बरसावें । सामान्य जनता प्रतिदिन लोभ से पराङ्गुख हो तथा [उसका] धर्म में विश्वास हो ॥ २४ ॥[१]

है । तदनुसार यहां मंगल कामना की गई है । प्रो० सुरु ने टिप्पणी में एक पाठ और दिया है—

'अणुपमगुणं कईणं परिमलमहिअं मुहेसु विअरंति
कप्पूरमंजरीअं तिभुवणतिलअं पुणो जलइ ॥'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

[अणुदिअहं विप्फुरंतो मणीसिजणसअलगुणविणासअरो ।
रित्तत्तणद्दावग्गी विरमउ विमलाकडक्खवरिसेण ।। २५ ।।]

[अनुदिवसं विस्फुरन् मनीषिजनसकलगुणविनाशकरः ।
रिक्तत्वदावाग्निर्विरमतु कमलाकटाक्षवर्षेण ।। २५ ।।]

वचनं कदापि मिथ्या न भवेत् । भूतले=लोके, मेघः=पयोधरः सञ्चितमपि=एकत्रीकृतमपि वृष्टयनन्तरमवशिष्टमपि सलिलं=जलं, शस्याय=धान्याय, उचितम्=अनुकूलं यथा स्यात्तथा शस्योचितं, मुञ्चतु=वर्षतु । कदापि जनाः अतिवृष्टया अनावृष्टया च न पीडिताः भवन्तु । लोकः=जनसमुदायः, अनुदिवसं=प्रतिदिनं लोभात् पराङ्मुखः लोभपराङ्मुख=धनधान्यादेरतिसञ्चयाद् विमुखः भवतु । लोभरहिताः भवेयुः जनाः । किञ्च, मतिः=विश्वासः धर्मे भवतु=उत्पद्येत । जनाः धर्मपरायणाः भवन्तु । यतः आहारनिद्राभयमैथुनञ्च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् । धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ।।' शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ।। २४ ।।

अन्वयः—अणुदिअहं विप्फुरंतो मणीसिजण-सअलगुणविणासअरो । रित्तत्तणदावग्गी कमलाकडक्खवरिसेण विरमउ [।। २५ ।।]

मनीषिजनानां=बुद्धिमतां सकलानां=सम्पूर्णानां गुणानां=दयाप्रभृतिगुणानां विनाशस्य=प्रध्वंसस्य करः=उत्पादकः मनीषिजनसकलगुणविनाशकरः, दिवसं दिवसमनु अनुदिवसं=प्रतिदिनं, विस्फुरन्=विकसन्, यः सः रिक्तत्वरूपः=धनाभावरूपः अग्निः=दावाग्निः दारिद्र्याग्निः कमलायाः=लक्ष्म्याः कटाक्षवर्षेण=दृष्टिपातेन, विरमतु=शान्तिमियात् । विद्वांसः खलु धनधान्यादिभिः सम्पन्नाः भवेयुरिति कामये । गीतिवृत्तम् [।। २५ ।।]

[प्रतिदिन वर्धनशील तथा बुद्धिमानों के समस्त गुणों को विनाश करने वाली दरिद्रता रूपी दावाग्नी लक्ष्मी देवी के कृपा-कटाक्ष से दूर हो ।। २५ ।।]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इति निष्क्रान्ताः सर्वे)
इति चतुर्थं जवनिकान्तरम् ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)
समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

[सभी चले जाते हैं]
[चतुर्थं जवनिकान्तर समाप्त]

इति सुदर्शनलालविनिर्मिता ललित-सट्टक-दिव्य-मनोरमा ।
बुधजनेष्विव शिष्यजनेष्वपि प्रचुरमोदरमोदयमुद्गिरेत् ॥
व्योम - वेदाभ्र - नेत्राङ्के गते विक्रमवत्सरे ।
श्रीमहावीर - निर्वाणतिथौ पूर्त्तिमगादसौ ॥

मुमुक्षु भवन वेद वेदांग विद्यालय
ग्रन्थालय
आगत क्रमांक............
दिनांक............

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परिशिष्ट

[१] छन्द-सूची

आर्या (१) ३, ५, ७, ८, ९, १०, (२) १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९, २०, २१, २२, ३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४२, ४३, ४८, ४९, (३) ८, (४) १, १९

इन्द्रवज्रा (१) २२, (३) ५, ६, (४) १०.

उपगीतिः (२) ४५.

उपजातिः (१) २८, ३१; (२) २५, (४) ११, १२, १५.

उपेन्द्रवज्रा (४) १४.

गीतिः (१) ६: (४) २५.

चउरंसा (३) २९, ३०

पुष्पिताग्रा (१) २, (४) १.

पृथ्वी (१) ३४, (२) ३२, ४७, (३) २०, २६, (४) ३, ६.

मन्दाक्रान्ता (१) ३०, ३३, (२) २, २३, ३०.

मालिनी (२) ९, २४, ४४, (३) २, ७; १८, (४) २०.

रथोद्धता (१) ११, (२) ७, (३) २१, २३, २४, ३१, ३२, ३३, ३४.

वंशस्थम् (३) ४.

वसन्ततिलका (१) १४, १९ २१, २४; २५, २७, (२) ४, ५, ६, २६; (३) ९, १०, ११, १२, १३, १४; १५, १६, १७, २२, (४) ५, ८, २१.

शशिवदना (३) ३० (?)

शार्दूलविक्रीडितम् (१) १, १३; १६; १७, १८, २०, २६, २९, ३२; ३५, (२) १, ३; ८, २७, २९; ४६, (३) १, ३, २५, २७, (४) ४, ९, २३ २४, पृ० २५७ [२२]

शालिनी (१) २३.

शिखरिणी (२) ११.

स्रग्धरा (१) ४, १५, ३६, (२) १०, २८, ३१, ४१, ५०, (३) १९; २८, (४) ७.

स्वागता (१) १२, (४) १६, १७; १८, २२.

नोट—(१) आर्या, वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित तथा स्रग्धरा छन्दों का अधिक प्रयोग है।

(२) कोष्ठक में दी गई संख्या जवनिकान्तर की तथा अन्य संख्यायें श्लोक की सूचक हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

[२] श्लोक-सूची

	जव०	श्लो०
अ		
अगं चंगं णिअगुणगणालंकि	१	३३
अंगं लावण्णपुण्णं	३	१९
अणुदिअहं	४	२५
अंतो णिविट्ठमण०	३	१२
अकलिअपरिरंभविब्भमाइं	१	२
अकुंकुमसचंदणं	३	२६
अग्गम्मि भिंगसरणी	२	६
अत्थणिवेसा ते	१	७
असोअतरुताडणं	२	४७
आ		
आत्थाणीजणलोअणाण	२	३
इ		
इअ एआइ विलासुज्जलाइँ	२	४०
इअ देवीअ जहिच्छं	२	२२
इमा मसीकज्जलकालकाआ	४	१४
इह कुसुमसरेक्कगोअराणं	४	२
इह जइ वि कामिणीणं	२	४८
ई		
ईसारोसप्पसाअप्पणइसु	१	४
उ		
उग्घाडिज्जंति	१	३६
उच्चेहिं गोउरेहिं	२	३१
उट्ठिऊण थणभारभंगुरं	३	२१
उवरिट्ठिअथणप्पब्भार०	१	३३
उहएसु वि सवणेसु०	२	१८

	जव०	श्लो०
ए		
एक्के दाव (पृ० २१५)	४	[१]
एक्केण पाणिणलिणेण	१	२७
एदं वासरजीवपिंडसरिसं	१	३५
क		
कंठम्मि तीअ ठविदो	२	१७
कप्पंतकेलिभवणे	४	१९
कावि वादिदकराल	४	१६
किं कज्जं कित्तिमेण	२	२८
किंकिणीकदरणज्झणसद्दा	४	१७
किं गेअणट्टविहिणा	३	१४
किं मेहलावलअ	३	१३
किं लोअणेहिं	३	१६
किसलअकरचरणा वि	२	४२
कीए वि संघडइ	३	९
कुंतलेसरसुआ	४	२२
कुडिलालआण माला	२	२०
कुरवअतिलअअसोआ	२	४३
केदईकुसुमपत्तसंपुडं	२	७
कोउहल्लवसचंचलवेसा	४	१८
ग		
गाअंतगोवअवहूपअपेंखि	१	२१
गाढअरुम्हो गिम्हो	४	१
घ		
घणमुव्वट्टिदमंगं	२	१२
घणसारतारणअणाइ	२	२१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

	जव०	श्लो०
च		
चंडवालधरणीहरिणंको	१	१२
चाहुआणकुलमोलिमालिआ	१	११
चित्ते विहुट्टदि ण खुट्टदि	२	४
छ		
छोल्लंति दंतरअणाइ	१	१४
ज		
जं धोअंजणसोणलोअण	१	२६
जं मुक्का सवणंतरेण सहसा	१	२९
जं मुद्धं (पृ० २५७)	४	[२२]
जच्चंजणजणिदपसाहणाइँ	२	१९
जस्सिं विअप्पघडणाइ	३	१०
जाअं कुंकुमपंकलीढमरडी	१	१६
जा चक्कवट्टिघरिणी	३	१५
जाणं सहाअपसरंत	३	११
जाणे पंकरुहाणणा	३	३
जिस्सा दिट्ठी सरलधवला	२	२३
जिस्सा पुरो हरदि	३	२२
जे कंटआ तिउस	४	२१
जे णवस्स तिउसस्स	३	२४
जे तीअ तिक्खचलचक्खु	२	५
जे लंकागिरिमेहलाहिं	१	२०
ड		
डज्झंतागुरु	३	२७
ण		
णअणाइं पसइसरिसाइं	२	३८
ण ट्ठाणाहिं तिलंतरं पि	२	१
णवकुरवअरुक्खो	२	४४
णहबहलिदजोण्हाणिब्भरे	३	७
णिसग्गचंगस्स वि	२	२५
णिसा तलिणवित्थरा	४	३
णीसासा हारजट्ठीसरिस	२	१०
णूणं दुवे इह	३	१७
ण्हाणावमुक्काहरीच्चआए	१	२८
त		
तदो चउस्सट्ठिसु सुत्तिसु	३	४
तहा रमणवित्थरो जह ण	१	३४
ताडंकजुअं गंडेसु	२	३५
तारंदोलणहेलासरंत	२	३५
तिक्खाणं तरलाणँ	२	४६
तिवलिवलिअणाही	२	२४
तिस्सा तावपरिक्खिणाअ	२	२९
तीए णिअंबफलए	२	१५
तेणं च मुत्ताहलमंडलेणं	३	५
थ		
थोराणं थणआण	२	२७
द		
दंसेमि तं पि ससिणं	१	२५
दट्ठूण थोरत्थणतुंगिमाणं	३	६
दिण्णा वलआवलीउ	२	१६
दिसवहुतंसो	३	२९
दूरे किज्जदु चंपअस्स	३	१
दंता कप्पूरपूरच्छुरणमिव	३	२८
देवी रोसकसाय	४	२३
दोलांदोलणलीला	२	३५
दोलारअविच्छेओ कहं	२	३९
प		
पंडीणं गंडवालीपुलअण	१	१५
पंडुच्छविच्छुरिद	४	५
पंडुरेण जइ रज्जए	३	३३
परं जोण्हा उण्हा गरल	२	११
पच्चंगं णवरूअभंगिघडणा	४	९
परिब्भमंतीअ	४	११
परुसा सक्कअबंधा	१	८

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

... वेदांग विद्यालय

	जव०	श्लो०
फ		
फुल्लुक्करं कलमकूरसमं	१	१९
ब		
बालकई कइराओ	१	९
बालाओ होंति	२	४६
बालो वि कुरवअतरू	२	४५
बिंबोट्ठे बहलं ण देंति	१	१३
भ		
भद्दं होउ सरस्सईअ	१	१
भाव ! कहिज्जदु	१	५
भुअणजअवडाआ	४	२०
भूगोले तिमिराणुबंधमलिणे	३	२५
म		
मंडले ससहरस्स	३	३१
मंतो ण तंतो ण अ	१	२२
मंजिट्ठी ओट्ठमुद्दा	२	४१
मज्झण्णसण्हघणचंदन०	४	८
मज्झण्णे सिरिखंडपंक	४	४
मज्झ हत्थट्ठिदपाणिपल्लवा	३	२३
मण्णे मज्झं तिवलिवलिअं	१	३०
मरगअमंजीरजुअं चरणा	२	१३
मरगअमणिगुच्छा	३	२
मा कहिं पि	३	३२
माणं मुंचध देह वल्लहजणे	१	१८
मुक्कसंक हरिणंक	३	३४
मुत्ति भणंति हरिबम्हमुहा	१	२४
मुद्धाण णाम हिअआइं	२	२६
मूलाहितो परहुअबहूकंठमुद्दं	२	२
मोत्ताहलिल्लाहरणुच्चआओ	४	१०
मोत्तूण अण्णा	४	१३

	जव०	श्लो०
र		
रंडा चंडा दिक्खिदा	१	२३
रणंतमणिणेउरं	२	३२
राअसूअपिच्छणीलं	२	१४
रूवेण मुक्का वि विभूसअंति	१	२१
ल		
लंकातोरणमालिआतरलिणो	१	१७
लावण्णं णवजच्चकंचणणिहं	१	३२
लीलुत्तंसो सिरीसं	४	७
लोआणं लोअणेहिं	२	५०
व		
विच्छाअंतो	२	३०
विस व्व विसकंदली	३	२०
स		
संमुहपवणपणोल्लि०	२	३६
सत्थो णंददु सज्जणाणं	४	२४
समणिबलअकंचीणेउरा	३	१८
समांससीसा	४	१२
ससहररइअमरट्टो	३	३०
ससिहंडमंडणाणं	१	३
सह दिवसणिसाहिं	२	६
सिविणअमेणमसच्चं	३	८
सो अस्स कई	१	१०
सो सट्टओ त्ति	१	६
सपंचमतरंगिणो	४	६
ह		
हंसि कुंकुमपंकपिंजरतणुं	२	८
हत्थे महामंसबलीघराओ	४	१५
हिंदोलणलीलालणलंपडं	२	३४

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हमारे महत्वपूर्ण प्रकाशन :—

1. The New Vedic Selection–*K. N. Shastri Telang & B. B. Choubey,* Part I for B. A. Student 16.00
Part II for M. A. " 35.00

2. सरल अनुवाद चन्द्रिका–डॉ० शिवशंकर गुप्ता 15.00

3. वैदिक साहित्य का इतिहास–कुंवरलाल जैन 8.00

4 Introduction to Pali–*A. D. Barua* 7.50

5. वेदान्तसार (मयूख संस्कृत हिन्दी व्याख्या सहित) –पं० रामगोविन्द शुक्ल 5.00

6 Tarkasangrah of Anambhatt–Text with English Transalation with its own gloss 'Dipika' –*K. P. Parab* 15.00

7. Meghaduta of Kalidas–With English Transalation and Notes–*Ed. Prof. G. R. Nandargikar.* 50.00

8. Introduction to Prakrit–A. C. Woolner 30.00

9 सेतूबन्ध (प्रवरसेन कृत) –श्री रामदासभूपतिप्रणीतया टीकया समेतम् 50.00

10. वैदिक देवता उद्भव और विकास–२ भाग में –गयाचरण त्रिपाठी 150.00

11. वैष्णव शैव और अन्य धार्मिक मत–आर० जी० भण्डारकर अनु०–माहेश्वरी प्रसाद 12.00

भारतीय विद्या प्रकाशन

कचौड़ी गली
वाराणसी-१

१, यू० बी० जवाहर नगर
बंग्लो रोड, दिल्ली-७

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri